❀ श्री रामाय नमः ❀

श्री मानस—

हृदय मर्म प्रकाशिका

(सटीक)

संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशक :—

महान्त श्री गंगादासजी महाराज

छोटाछत्ता, मठ पुरी (उड़ीसा)

संशोधक तथा अनुमोदक :—

पं० श्री अवधेशकुमार दास "शास्त्री"

बाबा श्री मणिराम दास जी महाराज की छावनी

श्री अयोध्या जी

रथ यात्रा
प्रथम संस्करण
२००० प्रति

श्री रामानन्दाब्द–६६१
सं० २०२७ वि०
२६–६–६० ई०

मूल्य
सप्रेम पाठ

समर्पण

पूज्यपाद श्री ....

भैय्या बालक वृन्द ....

प्रिय सज्जनों! प्रिय मित्रों! प्रिय पाठक गण! भैय्या आप सब तो बड़े ही उदार हैं, बड़े ही दयालु हैं और श्रीराम जी के परम प्रिय भक्त हैं, श्रीराम जी आपके हृदय कमल में सदा निवास करते हैं और हमारे परम प्रिय एवं हितैषी हैं भैय्या! यह हमारी "श्री सौमित्र हृदय-मर्म-प्रकाशिका" को कृपा करके अक्षरशः पढ़कर अपने आत्म जीवन के लिए सहायक रूप में ग्रहण करेंगे तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

चौ०—सुजन समाज सकल गुण खानी। करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी॥
सीताराम चरण रति मोरे। अनुदिन बढ़ै अनुग्रह तोरे॥

प्रार्थी—महन्त गंगादास

छोटाछत्ता, पुरी।

भैय्या—प्यारे रामभद्र ?

मेरी इच्छा ना थी कि यह मर्म भरी वेदना आप ही तक रहती तो अच्छा था, परन्तु आपने तो सारे संसार मे बाँट कर मेरे को निर्लज्ज बना देना चाहा। अस्तु मैं तो निर्लज्ज बेशरम होकर पहले ही कह चुका हूँ कि "शिष्य नेह तब पद रति होई" तो आपकी इच्छा पूर्ण होने में भी क्या हानि है, यह बात तो मैं पूर्व ही स्वीकार कर चुका हूँ कि "मोहि सठ मूढ़ कहै किन कोई" फिर सबसे निर्लज्ज होकर अपने मर्म का प्रकाश कराके कहाना आपको पसन्द है तो ठीक है। यदि प्यारे तुम्हें सुनने मे आनन्द हुआ तो लीजिए मैं बिलकुल निर्लज्ज बेशरम होकर हजारों मुखों से खूब रो-रो कर और चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा हूँ।

पद ॥ १ ॥

रामजी तुम्हरे लिए हम कीन्ह साधु का वेश ॥टेक॥
सुख ऐश्वर्य सबहि कुछ त्यागा फिरत विराने देश।
शान शौक भूषण सब त्यागे जटा बनाये केश ॥
वन वन में तुम्हें खोजत डालूँ सबसे पूछूँ सन्देश।
दिन नहिं भूख राति नहिं निंदिया सहत हीं कठिन कलेश ॥
"गंगादास" ढूँढ सब हारे पावत नाहि-सुरेश।
रामजी तुम्हरे लिए हम कीन्ह साधु का वेश ॥

पद ॥ २ ॥

मेरे राम हृदय से लगालो मुझे।
अपने विरह से जलते बचा लो मुझे॥

हम तुम्हें देख श्रीराम जिया करते हैं।
धन प्राण दान चरणों पै किया करते हैं॥
जिस तरह मत्त गजराज चुआ करते हैं।
उसी तरह हमारे नयन बहा करते हैं॥

जरा नाम की लाज बचालो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगा लो मुझे॥

नित प्रेम वेलि पै पानी दिया करते हैं।
कब फूलैगी यह बाग तका करते हैं॥
चरण कमल मुख कमल दलनि दरशे हैं।
कर कमलन ऋतुराज सदा परशे हैं॥

श्री राम चरणियाँ धरा लो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगालो मुझे॥

कोई पूछे क्या गुरुदेव किया करते हैं।
आगे की रास्ता सफा किया करते हैं॥

कर कमल वरद की छाँह यही चहते हैं।
पद कमल स्वाद मकरन्द तृपित रहते हैं।।
अपने चरणों की शरण लगालो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगालो मुझे।।
नयन कमल रतनार चहनि चहते हैं।
मुख कमल भरे मकरन्द मधुप रहते हैं।।
"गंगादास" की प्यास तपन सहते हैं।
शोभा अमित अपार मदन शतकोटि जहाँ रहते हैं।।
गुरु के प्यारे कपोल चुमालो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगालो मुझे।।

॥ ॐ नमो भगवते रामानन्दाय ॥

भूमिका

भाष्यं येन सुभाषितं मतिमता वेदान्त विद्या विदा,
ब्रह्माम्भोधिरवातार त्रिभुवनाचार्य्येण येनात्र सः ।
मिथ्या ब्रह्मवदप्रहार विकलः श्रुत्यङ्गरक्षापटु,
रामानन्द यतिः सदा विजयते योगीन्द्र चूड़ामणिः ॥

प्रिय सज्जनों !

सांसारिक त्रिविध तापों से सन्तप्त प्राणियों को अनन्त सुख शान्ति प्राप्ति हेतु श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीमन्मानस महौषधि प्रकट की, जिसके प्रयोग मात्र (नित्य पठन पाठन) से प्राणियों के बाह्य तथा आभ्यन्तरिक आधिदैहिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक प्रबलतम त्रिताप स्वयं ही शान्त हो जाते हैं एवं प्राणी शुद्ध, बुद्ध, परमानन्द स्वरूप होकर भक्त वत्सल भगवान् आनन्दकन्द श्री राघवेन्द्र के पाद पद्मों का चञ्चरीक बन जाता है ।

यह मानस जितना ही सरल एवं सुपाठ्य है उतना ही भावगाम्भीर्य तथा काव्य गुरुता से पूर्ण है । यद्यपि सम्वत् १६३१ सोलह सौ इकतीस से आज तक अनेक व्याख्याताओं ने अपनी जिह्वा तथा लेखनी पवित्र करने के लिए अनेक टीका टिप्पणियाँ की हैं पर इसके यथार्थ आशय को व्यक्त करने में कोई भी पूर्ण सफलता प्राप्त न कर सके । यह तो महार्णव की

भाँति अनेकानेक उत्तम रत्नों से परिपूर्ण है। जो जितनी गहराई तक जायगा वह उतने ही रत्न प्राप्त कर सकेगा।

यह मानस अत्यन्त अगाध एवं पाण्डित्य पूर्ण होने के कारण परम पूज्य सन्तशिरोमणि महान्त श्री गंगादास जी महाराज ने अपने तपः पूत अमूल्य समय को लगाकर "स्वान्तः सुखाय" एवं मुमुक्षु जनों के हित के लिये मधुकरी वृत्ति द्वारा अनेक धार्मिक ग्रन्थों से सार भूत संग्रहीतकर मानस के अनेक मार्मिक स्थलों की ग्रन्थियों का अनेक मतमतान्तरों तथा अनेक विशिष्ट पुरुषों द्वारा उद्घोषित सिद्धान्तों के आधार पर सुलझाने का पूर्ण प्रयत्न किया है।

"श्री मानस हृदय मर्म प्रकाशिका" के सम्बोधन भैय्या बालकवृन्द ! कितने हृदय ग्राही एवं सरस तथा वात्सल्य रस से ओत प्रोत हैं। भैय्या शब्द अत्यन्त स्नेह सूचक है जैसे—"*भैय्या कहहु कुशल दोउ बारे*"। सम्बोधन से ही ज्ञात होता है कि इस पुस्तक का संकलन मुक्ति मार्ग के बालक (अबोध) जनों के लिये हुआ है। जब तक प्राणियों की सांसारिक पदार्थों में आसक्ति रहेगी तब तक वह प्रभु का भक्त नहीं बन सकता है इसी लिये प्रभु श्रीराम जी स्वयं कह रहे हैं कि—

"जननी जनक बन्धु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥
सबकर ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बट डोरी॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे"

जो प्राणी मेरा प्रिय बनना चाहे वह माता, पिता, बन्धु, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, गृह, मित्र आदिकों में फैले हुए ममता रूपी तागों को बटकर एक मोटी रस्सी बनावे उससे अपने मन को मेरे चरणों में बाँध दे। ऐसा

सज्जन मुझे प्रिय है और मेरे हृदय में वास करता है। उपरोक्त ममत्व मूलक पदार्थों में जीवों के अधः पतन करने में मुख्य स्त्री ही है। "*द्वारं किमेकं नरकस्य नारी*" यह ऐसी दुरत्यय माया स्वरूपिणी है कि—"*शिव विरञ्चि कहँ मोहई को है बपुरा आन*"। रावण स्त्री लम्पट होते हुए भी स्त्रियों में आठ अवगुण देखता है। सती के रामजी के विषय में सन्देह करने पर भोले बाबा सती जैसी देवी के विषय में कहते हैं—"*सुनहि सती तव नारि स्वभाऊ*" श्रीराम जी की परीक्षा के पश्चात् शिवजी के पूछने पर झूठ बोलीं। तुलसीदासजी लिखते हैं कि—"*सती कीन्ह चह तहँउ दुराऊ। देखहु नारि स्वभाव प्रभाऊ*"। जब देवियों के विषय में यह हाल तब साधारण स्त्रियों की क्या बात है। अतः मुमुक्षु जनों को इनसे बचना परमावश्यक है। जब तक जिसमें घृणा नहीं होती तब तक किसी मनोरम वस्तु से वैराग्य होना उतना ही असम्भव है जितना कि बरपते हुए जल की बूँद को पकड़कर आकाश पर चढ़ना।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि सभी स्त्रियाँ निन्दनीया एवं हेय हैं। हमारी इसी पवित्र भरत भूमि को श्री महारानी जगज्जननी जानकी, अनुसुइया, सावित्री आदि देवियों ने अपने जन्म द्वारा पवित्र किया था तथा जिनका महान आदर्श आज भी हमारी माताओं एवं बहिनों को अपने कर्त्तव्य का पथ पदर्शन करता है।

ज्ञान निरूपण प्रसंग में "शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, तत्त्वोत्पत्ति, असंशक्ति, पदार्थाविभावनी, तुर्यगा" इन सप्त सोपानों का विवेचन शास्त्र सिद्धान्तों एवं लौकिक दृष्टान्तों द्वारा बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है जो अत्यन्त शिक्षाप्रद तथा अपने जीवन में ढालने योग्य है। इसी प्रसंग में "अष्टाङ्गयोग" को पढ़ने से लेखक की महानता का अनुमान लगता है कि आपकी पहुँच कहाँ तक है।

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः, स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

इस नवधा भक्ति को मानस के विविध दृष्टान्तों द्वारा अत्यन्त सुन्दर ढंग से समझाया गया है जिससे जीव अपने परमप्रभु के साथ किसी भक्ति अथवा किसी सम्बन्ध को स्थापित कर अपने को आवागमन रूपी सांसारिक क्लेशों से छुटकारा प्राप्तकर प्रभु का परमप्रिय बन सकता है जैसा कि प्रभु ने स्वयं परम भक्ता शबरी के प्रति कहा है—

नव महँ जिनके एकौ होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥
सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ॥

परन्तु यह स्मरण रहे कि सब मे हार्दिक स्नेह की प्रधानता है "*मम गुन गावत पुलक शरीरा । गद्गद गिरा नयन बह नीरा*" न हुआ तो सर्व व्यर्थ है दोहावली मे तुलसी दास जी कहते हैं—

हिय फाटहु फूटहु नयन, जरहु सो तनु केहि काम ।
द्रवहि स्रवहिं पुलकहि नही, तुलसी सुमिरत राम ॥

"*जीव गति वर्णन*" में "क्षीणे पुण्ये मर्त्त्यलोके विशन्ति" के अनुसार जीव का जब वैकुण्ठादि लोकों से अधः पतन होता है तब जीव क्रमशः चन्द्रलोक में आकर चन्द्ररश्मियों द्वारा पृथिवी पर अन्न में आता है पुनः उसी अन्न को जीव भक्षण करते हैं जिससे वीर्य बनता है पुनः वीर्य रूप से गर्भ में पहुंच कर वहां वह कालक्रान्तात करता हुआ पूर्ण होने पर गर्भ के कष्ट असह्य होने पर अपने सहस्त्रों पूर्व जन्मों के कर्मों का स्मरण कर दुःखित होता है तब वहीं उसे अकारण करुणाकरण भक्तवत्सल भगवान् के दर्शन होते हैं जीव प्रार्थना करता कि

अब मैं बाहर जाकर निरन्तर आपका भजन करूँगा। पुनः दशमास के पश्चात् प्रसव वायु द्वारा बाहर आने पर अनेक बाल यातनायें सहनी पड़ती हैं और मायाबद्ध होकर भगवान् का भजन भूल जाता है जिससे जीवन में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है मरने पर कूकर शूकर की योनियों को प्राप्त होता है। इसी विषय को भागवत में श्री कपिल देव जी ने देवहूति से तथा अध्यात्म रामायण में चन्द्रमा मुनि द्वारा प्राप्त उपदेश को सम्पाती ने वानरों से बताया एवं श्री माता कौशल्या के प्रश्न करने पर श्री राम जी के द्वारा दिये गये आध्यात्मिक उपदेश, यह सब अपने पूर्व कर्मों तथा आगामी क्लेशों का स्मरण दिलाकर जीवों की वृत्तियों को पलट कर प्रभु का परम भक्त बना देते हैं।

स्त्री, पुत्र, धन, गृह आदि त्याग कर आये हुए भक्तों के हाथों प्रभु स्वयं बिक जाते हैं यह प्रभु की उदारता है अतः यह सब प्रभु की उदारता प्रसङ्ग में प्रभु स्वयं दुर्वासा से कह रहे हैं कि—

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

हमारे प्रभु कितने उदार हैं यदि उनका भजन न करके जो प्राणी संसारिक विषयों में लिप्त हैं उनसे अभागा और कौन है। उसी प्रकार श्री लक्ष्मणजी के प्रश्न करने पर "श्री रामगीता" में प्रभु ने बताया है कि—जो मेरी सेवा, मेरे भक्तों का संग तथा उनकी सेवा, एकादशी आदि उपवास, मेरी कथा सुनने में अनुराग रखता है मैं उसके सदा के लिये आधीन हो जाता हूँ।

श्री मानस-मर्म प्रसंग में मनोकामना सिद्ध ५१ चौपाइयों का संग्रह

अत्यन्त उपादेय है। इनके द्वारा मानव अलभ्य वस्तु को भी सुगमता पूर्वक शीघ्र प्राप्त कर सकता है। श्री मानस के सातों काण्डों में किये गये प्रभु के चरित्रों का सुन्दर शैली द्वारा सप्त सोपानों के रूप में वर्णन किया गया है जो अत्यन्त अनुकरणीय है।

समाप्ति में कई सुन्दर स्तोत्रों तथा स्वरचित हिन्दी पदों का एवं संकलित पद्यों का संग्रह तथा संक्षिप्त रामायण, भावुक भक्तों को अमूल्य निधि है।

इस पुस्तक के सभी विषय ग्रन्थों से प्रतिलिपि मात्र ही नहीं किये गये किन्तु लेखक ने अपनी अनुभव रूपी कसौटी में कसकर खरे उतरने पर ही लिखे हैं अतएव विशेष महत्व की वस्तु हैं। इसको पढ़ें, गुने और इसके अनुसार अपने चरित्र को ढालें तभी पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

इत्यलम्

बाबा श्रीहरिरामदासजी महाराज
की छावनी
श्रीअयोध्याजी जि.-फैजाबाद (उ.प्र.)

सन्तजन सेवक—
अवधेशकुमार दास "शास्त्री"
श्री सीतारामजी का मन्दिर
मु० पो० अछल्दा जि० इटावा (उ०प्र०)

श्री गुरुचरण कमलेभ्यो नमः

श्री सीतारामचन्द्राभ्यॉ नमः

चौ०—मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवहु सो दशरथ अजिर विहारी ॥

दो०—बन्दौं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोय ॥

अंजलि गत शुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोय ॥

लेखक का नम्र निवेदन

माननीय परम भागवतों, विद्वज्जनों तथा सज्जन वृन्द एवं हमारे प्रिय मित्रगण बालक वृन्दो! इस असार संसार सागर की दुःख तरंगों में अनादि काल से भटकते हुए दीन प्राणियों के कल्याण के लिए जहाँ शास्त्रों में अनेक उपाय बताए हैं। वहाँ श्रुतियाँ स्मृतियाँ तथा स्मृतिकार महानपुरुषों ने इस कठिन कलिकाल में केवल श्रीराम भक्ति एवं श्रीराम नाम को ही एकमात्र जीवों के उद्धार का अन्यतम साधन कहा है। सो०—*कठिन काल मल कोष योग न यज्ञ न ज्ञान तप ॥ परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर ॥* अतः जितने भी मनुष्य तथा जितने भी प्राणी हैं वह सभी श्रीराम नाम जप एवं श्रीराम भक्ति के समान रूप से अधिकारी हैं। कहा भी गया है।

"बैठत सभा सबहि हरि जू की कौन बड़ो को छोट । सूरदास पारस के परसे मिटत लोह की खोट" ॥

"जाति पाँति पूछै ना कोई। हरि का भजे सो हरि का होई"॥ अतः श्रीराम

जी कृपाकर यह देवदुर्लभ नरतन संसार समुद्र से तरने के लिए नौकारू प्रदान किए हैं। इसे पाकर भी सामान्य पशुओं की तरह इस शरीर के भरा पोषण ही में उसे व्यर्थ बिताकर इसी संसृति चक्र में *"पुनरपि जननं पुनर मरणं। पुनरपि जननी जठरे शयनम्"* की दशा को प्राप्त हो, इससे अधि खेद का विषय मनुष्य के लिए और क्या हो सकता है। *"साधन धाम मो कर द्वारा। पाइ न जो परलोक सँवारा"* ।

भैय्या बालक वृन्द ! तथा सज्जन वृन्द ! आप सबों के सम मैं अबोध बालक क्या लिखूँ और क्या बताऊँ। जितना कुछ लिखन और बताना चाहिए, वह तो श्री श्री अनन्त श्रीविभूषित, भक्त शिरोमणि अनन्य श्रीरामनामोपासक एवं अखंड श्रीरामनाम के विश्वासी कवि सम्राट श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने, श्री मन्मानस रामायण में जे श्री रामनाम का परत्व कहा है।

प्रिय सज्जनों ! उसी के मर्म को मैं मानस में से जहाँ तहाँ से खोज कर आपके सामने रक्खूँगा और बारम्बार यह कहूँगा कि भैया बालक वृन्द ! आप बारम्बार मानस पढ़ें और मनन करें तो जितना आपके लिए आवश्यक है वह सभी मानस में मिलेगा उसको पढ़कर समझें और करें।

भैय्या सज्जनवृन्द ! *"भलो भली भाँति है जो मोरे कहे लागि हौ"* यदि यह मेरी बालक की तोतरी बात पर आप ध्यान देंगे तो भैय्या *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"* परन्तु भैया मित्रवर ! यह कहीं ख्याल न कर लेना कि *"आपु सरिस सबहिं चह कीन्हा"* किन्तु ऐसा होना भी अहोभाग्य की बात है। देखिए सब आपयों के अन्दर से ही तो वाल्मीकि आदि कवि बने और *"बाल्मीक भे ब्रह्म समाना"* इनका पूर्व चरित तो आपको ज्ञात ही है

परन्तु यह सतयुग का इतिहास है। विल्वमंगल जिनको सूरदास करके ख्याति हैं। रामबोला जो तुलसीदास करके जगत पूज्य हो रहे हैं। इन सबों का भी चरित्र आप सबों को मालुम ही है परन्तु राम भजन से ही सुखी और जगत मान्य हुए हैं। किन्तु यह भी प्रायः चार सौ वर्ष का इतिहास हो चुका है।

भैय्या मित्रवर! मैं तो आपके सामने वर्तमान हूँ। मैं यह धर्मतः कहता हूँ कि *"सुखी न भयौं अबहि की नाई"* इसके पूर्व में मैं सब प्रकार नाना दुःखों से संतप्त था परन्तु जब से *"रघुनायक अपनाया"* तब से मैं भी सुखी हूँ *"जिमि हरि शरण न एकौ बाधा"* यह मेरे लिए सम्पूर्ण चरितार्थ होगा मैं सब प्रकार से सुखी हूँ। तभी तो आपको कह रहा हूँ कि भैय्या, *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"* राम भजन से ही आपका कल्याण है इसलिये आप भी राम नाम भजन करें *"तब लगि कुशल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन विश्राम। जब लगि भजन न राम के, शोक धाम तजि काम"* ॥

मित्रवर! यह बिलकुल अकाट्य सिद्धान्त है मानस पढने से आप को मालुम पड़ेगा। इसलिए मानस नियम करके पढ़ें। "राम भजे *हित होइ तुम्हारा, रामहि भजहि तातशिवधाता। नर पामर कर केतिक बाता"* ॥

प्रिय सज्जनों! पाठक महानुभावों से मैं बारम्बार विशेष रूप से प्रार्थना पूर्वक नम्र निवेदन करता हूं कि न तो मैं कोई विद्वान हूँ, न लेखक हूँ, न ग्रन्थकार बनने का दावा ही करता हूँ। मुझ पर यह चौपाई *"कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू"* पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। यह संग्रह त्रुटियों का कोष कहा जाय तो मेरी समझ से अत्युक्ति न होगी, क्योंकि मुझे व्याकरण के कर्ता क्रिया, उपमा,

उपमेय आदि का बिल्कुल ज्ञान नहीं है, सिद्धान्त सम्बन्धी बातें भी जैसी जहाँ पर समझ में और अनुभव में आई वैसी की वैसी ही लिखी गई हैं इस लिये इनके सम्बन्ध मे केवल इतना ही निवेदन है कि आप लोग अर्थ अनर्थ की त्रुटियों पर बिलकुल ख्याल न करेंगे, जहाँ भी कहीं बुद्धि के भ्रम से कर्ता क्रिया, उपमा उपमेय में अर्थ का अनर्थ प्रतीत हो अनर्गल अथवा द्वैताद्वैत का उचित सिद्धान्त एवं अर्थ हो वैसा सुधार कर लेंगे।

मैं तो केवल *"करन पुनीत हेतु निज वाणी"* के न्याय से ही लिखा हूँ. मैं संप्रदाय के आचार्यों के सिद्धान्त से कभी भी प्रतिकूल नहीं हूँ जहाँ मत विरोध होता हो मतान्तरों से वहाँ मेरी भूल समझ कर क्षमा करें और मुझे सूचित करने की कृपा भी करें।

भैय्या बालक वृन्द ! इस ग्रन्थ का नाम "मानस हृदय मर्म प्रकाशिका" इसलिए कहा गया है कि मानस, मनसि अर्थात् मन में रहने वाली वस्तु है। अर्थात् मानस भक्ति है तो मन में भक्ति रहती है—यह है मानस का हृदय,—*"बिन हरि भक्ति हृदय नहि आनी। जीवत शव समान ते प्रानी"* ॥ और भक्ति का मर्म है रामनाम। अतएव *"अस प्रभु हृदय अछत अविकारी"* परन्तु *"नाम निरूपण नाम यतन ते। सो प्रगटत जिमि मोल रतन ते"* अतः यहाँ रामनाम का परत्व इसमें वर्णन करके प्रकाशित किया गया है। इसलिए इसका नाम है "मानस हृदय मर्म प्रकाशिका"। *"जो नहिं करहिं राम गुण गाना। जीह सो दादुर जीह समाना"* अथवा *"तुलसी जीहा वह भली, जो सुमिरै हरि नाम। नातरु काटि वहाइये मुख में भलो न चाम"* ॥ अतएव मन में भक्ति रखते हुए भक्ति के अहंकार से ना" अर्थात् वही रामनाम जिह्वा द्वारा रामनाम रटु (सोरठ) अर्थात् उस रामनाम को रटो, जिस राम नाम को कहा जाता है—*"रामराम रामराम रामनाम जपत, मंगल मुद उदित*

होत कलिमल छल छम्त। उपसंहार में यह कहा जाता है—*"रामनाम सों प्रतीत हृदय सुस्थिर थपत—पावन किए रावण रिपु तुलसिहूँ सो अपत"* ॥ अर्थात् रामनाम कहने से अशान्त हृदय संतोष एवं शान्ति पाता है—*"संतोषो नन्दन वनं शान्ति एव हि कामधुक्"*। संतोष ही आनन्द वन, शान्ति ही कामधेनु है सो रामनाम जपते ही हृदय संतोष और शान्ति पाता है। देखिए तुलसीदास जी कहते हैं कि रामनाम के बल से ही तुलसी से भी पापी एवं रावण भी पावन हो गया है। *"तासु तेज समान प्रभु आनन"* अर्थात् श्रीराम जी के मुखारविन्द में सायुज्य मुक्ति पाया। कारण क्या था कि—*"रामाकार भए तिनके मन मुक्त भए छूटे भवबंधन"* अर्थात् रामनाम से ही मुक्ति पाए, रावण अंत में कहता है—कहाँ राम अर्थात् हा राम! तूँ कहाँ है—बस राम तो सामने थे ही—*"आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करैंगे तोहि"*—सो ठीक वैसा ही हुआ। हा राम! तूँ कहाँ है—आरत वाणी सुनते ही प्रभु ने बुला लिया, आओ—*"तासु तेज समान प्रभु आनन"* राम अवतार रावण के लिये ही हुआ था और रामनाम परत्त्व का रावण से ही पूर्णरूप से प्रकाशित हुआ है—*"वारेक नाम कहत नर जेऊ। होत तरण तारण नर तेऊ"*। अर्थात् एक ही बार जो राम कहता है वह स्वयं तो तर हो जाता है परन्तु औरों को भी तारता है। रावण एक ही बार राम कहा था, फिर भी अपने तो तर ही गया परन्तु अपने चरित्र द्वारा सारे जगत के प्राणियों को तार रहा है—*"यह रावणारि चरित्र पावन राम पद रति प्रद सदा। कामादि हर विज्ञान कर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा"* अर्थात् *"सोइ नर गाइ गाइ भव तरहीं"* अतः हे भैय्या बालक गण! आप सब भी मन में भक्ति के सहकार से रामनाम भजन करें—*"राम भजे हित होइ तुम्हारा"*।

भैय्या बालक वृन्द! आप यह शंका कर सकते हैं कि बाबा, मानस में तो कहा जाता है कि—"*जाना मर्म न मातु पिताहू*" अथवा "*लक्ष्मणहूँ यह मम न जाना*" पुनः "*पालन सुर धरणी अद्भुत करणी मर्म न जानै काई*" इत्यादि कहा गया है तो आप कैसे मर्म कह रहे हैं। भैय्या! वहाँ मानस ही यह भी कह रहा है कि—"*सोइ जानै जेहि देहु जनाई*" अथवा "*जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ, नाम जीह जपि जानै तेऊ*" अर्थात "*तुम्हरे भजन प्रभाव अघारी, जानौं महिमा कछुक तुम्हारी*" इत्यादि भी कहा गया है तो भैय्या मैं यह मर्मतः कह रहा हूँ कि मैं ११ वर्ष की अवस्था से रामनाम ही पढ़ा हूँ अतएव रामनाम भजन कर रहा हूँ—"*प्रौढ़ भये मोहिं पिता पढ़ावा, समुझौं सुनौं गुनौं नहिं भावा*" ॥ "*मन ते सकल वासना भागी, केवल राम चरण लव लागी*" ॥ दूसरा उपाय—"*श्री गुरुपद नख मणि गण ज्योती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती*" ॥ तो मैं ० वर्ष अखण्ड सेवा श्री गुरु चरणों की किया हूँ और तीसरा उपाय यह है कि—"*मति कीरति गति भूति भलाई, जब जेहि यतन जहाँ जेहि पाई*" ॥ *सो जानब सत्संग प्रभाऊ*" इत्यादि तीनों उपाय मुझे सुगम थे इसलिए इस मर्म को प्रकाशित करने को मैं इच्छुक हो रहा हूँ मङ्गलाचरण में कहा गया है कि—"*निज बुद्धी का बल नहीं ज्ञान दीन्ह जगदीश, तेहि बल मैं वर्णन करूँ चरित कोशलाधीश*"।

भैय्या बालक वृन्द! यह हमारे प्रभु हमारे सरकार श्रीराघवेन्द्र भगवान् श्रीरामभद्र जू की देन है उन्हीं की कृपा से प्रकाशित कर सकता हूँ—"*जनि आश्चर्य करहु मन माहीं*" प्रभु की कृपा से सब कुछ हो सकता है "*श्री रघुनाथ प्रताप ते सिन्धु तरे पाषाण*" "*तुलसी कृपा रघुवंश मणि की लोह लै नौका तिरा*। तो यह मर्म प्रकाश करना क्या बड़ी बात है।

पुस्तक छपाने वाले का नाम पता

विनीत—

महन्त गंगादास

प्रिय सज्जनों ! मुझे तो कोई कुछ भी कहे परन्तु मैं आप लोगों के अनुग्रह से श्री रामजी के चरण कमलों का प्रतिदिन वर्धनशील प्रेम ही चाहता हूँ।

सन्त सरल चित जगत हित, जानि स्वभाव सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु॥

सज्जनों ! वर्तमान महाकराल कलिकाल जिसमें "*कलिमल ग्रसेउ धर्म सब, लोभ ग्रसेउ शुभ कर्म*" होते हुए भी सन्तसेवी का कलियुग कुछ भी नहीं कर सकता अपितु कलियुग के समान दूसरा युग ही नहीं है। यथा—"*कलियुग सम युग आन नहिं, जस नर करि विश्वास*" तथा—"*तुलसी रघुवर-सेवकहिं, सकहि कि कलियुग धूत*" ऐसे कठिन समय में भी सन्त सेवा करते हैं।

प्रिय सज्जनों ! यह—"मानस-हृदय-मर्मप्रकाशिका" नामक ग्रन्थ की छपाई का समस्त अर्थ व्यय सन्तसेवी गुरु भक्ति परायण कलकत्ता निवासी बाबू श्री **लक्ष्मीनारायण पञ्चानन साहु** ने करके छपवाया है। मैं उनके पुत्र पौत्रों कल्याणार्थ एवं श्री भगवान् तथा श्री गुरु चरण कमलों में भक्ति प्राप्ति हेतु आशीर्वाद देता हूँ। और आप सब पाठक गणों से भी प्रार्थना करता हूँ कि आप सब भी उनको आशीर्वाद करें और भक्ति प्रदान करें अर्थात् उनके पुत्र पौत्रों की मङ्गल कामना करें।

रथयात्रा
सम्वत् २०१७
श्री रामनन्दाब्द—६६१
२६—६—६०

विनीत—
महन्त गंगादास
छोटाछत्ता, पुरी

विद्वज्जनों का विवेचन तथा अनुमोदनः—

"पण्डित श्री शिवराम दास जी "शास्त्री" व्याकरण, आयुर्वेद, साहित्याचार्य्य, साहित्यरत्न, न्याय, वेदान्त, शास्त्री" राजादरवाजा, वाराणसी ।

श्री सीतापतिपादपद्मयुगलं यस्यास्तिचिन्तास्पदम्,
यद्भक्त्या जनकात्मजा स्वयमदात्पुण्ड्रेतु विन्दुश्रियम् ।
यत्कीर्तिर्विमलाभवच्च भुवने गंगेव सम्पावनी,
तं शान्त्यादि गुणाकरं गुरुवरं रामप्रसादं भजे ॥१॥

"श्री मानस-हृदय-मर्मप्रकाशिका" की अनुपम देन जगत के लिए है। श्री कवि सम्राट् गोस्वामीजी के छिपे हुए मार्मिक स्थलों के भावों को आपने स्पष्ट किया है और लघु शिशुओं के चरित्र निर्माण में सहायक बनाया है। काव्यों के गुण गरिमा को इस पुस्तक में स्थान दिया है। श्री सीताराम जी के सम्बन्ध में सांसारिक जीवों के तरह एवं नारद मोह, नारद के प्रति भक्ति भावना का उपदेश आपने करवाया जिससे जगत पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। यह सत् शिक्षा का प्रचार स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालयों में समावेश करना चाहिए, जिससे देश गौरवान्वित हो उठे। सात सोपानों का वर्णन इस पुस्तक में हुआ है। छोटे बालकों को सुरम्य शैली से समझाया गया है। योगियों को अष्टाङ्ग योग का अच्छा सुमार्मिक ढंग से *"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"* इस योग सूत्र पर यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि को समझाया गया है। "जीव गति वर्णन" का संमिश्रण बहुत ही अच्छा हुआ

है। यथा—"भव कूप अगाध परे नर ते"। श्री मद्भागवत तृतीय स्कन्ध अ० ३१ में श्री कपिलदेव जी ने अपनी माता देवहूति को संसार से ममत्व को हटाने के लिए उपदेश दिया है इससे पुस्तक में और भी चमत्कार आगया है। नवधा भक्ति वर्णन के प्रसङ्ग में—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

श्री तुलसीकृत रामायण के उदाहरणों द्वारा नवधा भक्ति का संश्लेषण इस पुस्तक में अधिक उचित ढंग से हुआ है।

इस पुस्तक को लिखकर श्री महान्त जी महाराज ने अज्ञानी सब बाल जगत का बड़ा ही उपकार किया है। मानस के विषय में जो भ्रम पैदा हो गया है। आशा है कि उसकी निवृत्ति इसके अध्ययन से हो जावेगी। मेरा ऐसा विश्वास है कि नव जगत एवं व्यास समाज के लिए यह एक अच्छा एवं भावपूर्ण संग्रह होगा। जिस प्रकार से श्री तुलसी दल के बिना श्री राघवेन्द्र प्रसन्न नहीं होते उसी प्रकार से जनता तुलसी कृत मानस रामायण के उदाहरणों के बिना प्रसन्न नहीं होती है अतएव जनता जनार्दन के प्रसन्नार्थ एक एक प्रति सब सज्जनों को अपने पास रखना चाहिए।

इति शम्

पं० शिवरामदास "शास्त्री"

पण्डित श्री हरिवल्लभ दासजी "शास्त्री"

"नव्य व्याकरण, नव्य न्यायाचार्य" कृष्ण गङ्गा, मथुरा।

"मानस हृदय मर्म प्रकाशिका" नामक पुस्तक का मैंने अवलोकन किया। वस्तुतः गोस्वामी तुलसीदासजी के आगाध मानस के हृदय का प्रकाशन इस पुस्तक में श्रीमहाराजजी ने अपने दीर्घकाल के अनुभव से किया है, ऐसा प्रकाशन आज तक के किसी टीका में दृष्टि गोचर नहीं होता है। इस पुस्तक में केवल संकलन ही नहीं है अपितु श्री महाराजजी ने अपने योग बल से, जीवों के लिए इस लोक तथा परलोक में सुख प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग भी प्रदर्शित कराया है। जिस मार्ग का आश्रयण करने से जीवात्मा सीधा अपने लक्ष्य पर निर्विघ्न पहुँच सकता है। इस पुस्तक में पद पद पर जीवात्मा के कल्याण की ही चर्चा की गई है। इस पुस्तक में—

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य॥
पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।

इस सिद्धान्त का विशेषतः प्रतिपादन है। वह ग्रन्थ ऐसी भाव भंगियों से भरा हुआ है जो साधारण पढ़ा-लिखा भी आनन्द प्राप्त कर सकता है।

इस ग्रन्थ में प्रतिपादित मार्ग का जो भी जीवात्मा अनुसरण करेगा वह निश्चय ही इस लोक में आत्म सुख का अनुभव कर अन्त में भगवच्चरणारविन्द को प्राप्त होगा यह दृढ़ विश्वास है।

इत्यलम्

पं० हरिवल्लभ दास शास्त्री
प्रधानाचार्य
उपदेशक महाविद्यालय
श्री भारत धर्म-महामण्डल, जगतगंज, वाराणसी।

विषय-सूची

भैय्या बालक वृन्द !

(राम भजे हित होय तुम्हारा)

श्रीरामः शरणं मम

श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये

मङ्गलाचरणम्

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसंपदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥

मङ्गलं कौशलेन्द्राय महनीय गुणाब्धये ।
चक्रवर्त्ति तनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥

वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामल मूर्त्तये ।
पुंसां मोहन रूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥

हे मैथिली हृदय पंकज भृंगराज !,
हे स्वीयभक्तजनमानसराजहंस ! ।
हे सूर्यवंशविभवैभव रामचन्द्र !,
त्वत्पादपंकजरजः शरणं ममास्तु ॥

मङ्गलानां च कर्त्तारौ हर्त्तारौ च अमङ्गलम् ।
जीवानां च सनिस्तारौ सीताराम नमामिवम् ॥

इष्टदेव मम बालक रामा । शोभा वपुप कोटि शत कामा ॥
वन्दौ बालरूप सोइ रामू । सब विधि सुलभ जपत जेहि नामू ॥
मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवौ सो दशरथ अजिर विहारी ॥
अब प्रभु कृपा करौ यहिभाँती । सब तजि भजन करौं दिनराती ॥

मानस हृदय मर्मप्रकाशिका

अथ बाल-बोध

बालकानां बोधनार्थाय, शिशूनां शिक्षणाय च।
जीवानां निस्तारणाय, शृणुतां वक्ष्याम्यहम्॥

भैय्या बालक गण! वा प्राणी वृन्द! इसको बारम्बार पढ़ो, समझो और करो। "*राम भजे हित होइ तुम्हारा*"। मैं बालकों को आत्म बोध, शिशुओं को शिक्षाप्रद, और जीवों के निस्तार पाने का मार्ग कहता हूँ सुनो—भइया, आप सब कल्याण का बालकांक तो पढ़े ही होंगे और इस वर्ष में कल्याण का मानवता अंक तो पढ़ते ही होंगे, उसमें बड़े-बड़े विद्वानों का आत्मभाव, शास्त्रसिद्धान्त प्रगट किया गया है। बालकों के आदर्श राम, कृष्णादि तथा ध्रुव, प्रह्लादादि के आचरण द्वारा दिखाये गए हैं, जो जगत पूज्य हैं और मानवतांक में भी आचरण व्यवहार से ही मानवता बताई गई है यदि सदाचरण, सद्व्यवहार शास्त्र के अनुकूल है तब तो मानवता है और शास्त्र से प्रतिकूल है तो वही दानवता हो जाती है।

आचारः परमो धर्मः, आचारः परमं तपः।
आचारः परमं ज्ञानं, आचारात् किं न साध्यते॥

भैय्या बालक वृन्द! शुद्ध आचार ही परम धर्म है, आचार ही परम तप है और आचार ही परम ज्ञान है। पवित्र आचार होने से मनुष्य

क्या नहीं कर सकता अर्थात् सब कुछ कर सकता है साकेत वैकुण्ठादि आचार से ही प्राप्त होते हैं।

हरिभक्ति परोवापि, हरिध्यानरतोऽपि वा।
भ्रष्टो यः स्वयमाचारात् पतितः सोऽभिधीयते ॥

भैय्या! प्राणी का आचार शुद्ध न होने से कितना भी हरि भक्ति परायण हो, कितना भी हरि ध्यानरत हो फिर भी पतन हो जायगा अतएव आचारवान होना नितान्त आवश्यक है। परन्तु आचार भ्रष्ट होने के लिये एक मात्र स्त्री ही नरक का द्वार खोल कर बैठी है, स्त्री की स्मृति होते ही प्राणी आचार भ्रष्ट हो जाता है यथा—"*द्वारं किमेकं नरकस्य नारी*" भैय्या! देखिए मानस पढ़िए तो आप को पूरा पता लगजायगा जो श्री राम सरीखा धर्म परायण, धैर्यवान् सर्व समर्थ भगवान् होने पर भी अपने मर्त्यलोक की लीला विभूति में दर्शाया है कि हे जीवों! स्त्री के पीछे में कैसा आचार भ्रष्ट हुआ हूं ऐसा ही सांसारिक जीव स्त्री के पीछे अपने आचार से गिर जाता है। यथा—

विगत दिवस गुरु आयसुपाई। संध्या करन चले दोउ भाई ॥
प्राचीदिशि शशि उयेउ सुहावा। सियमुखसरिस देखि सुखपावा ॥
बहुरि विचार कीन्ह मनमाहीं। सीय वदन सम हिमकर नाहीं ॥
दो०—जन्मसिंधु पुनि बन्धुविष, दिन मलीन सकलंक।
सियमुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक ॥
घटै बढ़ै विरहिन दुःखदाई। ग्रसै राहु निज संधिहिं पाई।

कोक शोक प्रद पंकज द्रोही । अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही ॥
वैदेही मुख पटतर दीन्हे । होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हें ।
करि मुनि चरण सरोज प्रणामा । आयसु पाइ कीन्ह विश्रामा ॥

बस, संध्या करना बन्द हो गया श्रीसीता जी के मुख मंडल चन्द्रमा को देखते ही और नाना प्रकार से मुख शोभा की हृदय में आलोचना करते करते संध्या तर्पण न करके वापस चले आए और श्रीगुरु की आज्ञा पाकर सो गए। त्रिकाल संध्या तर्पण जो प्राणी का नियमित सर्व श्रेष्ठ आचार है वह सम्यक् प्रकार से बन्द हो गया। जिसको श्रीरामजी अरण्य कांड के अंत में स्त्री की स्मृति का दोष कारण नारद के प्रति प्रगट किये हैं। *"काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धार । तिन महँ अति दारुण दुखद, माया रूपी नार"* ॥ से लेकर। *"धर्म सकल सरसीरुह वृन्दा । होइ हिम तिनहिं देत दुःख मन्दा"* ॥

अतएव मनुष्य का कल्याणमय जो नाना प्रकार का सन्ध्या तर्पण होम यज्ञानुष्ठानादि धर्म है वह कमल रूपी परम कोमल है, उसको नाश करने के लिए स्त्री हिमकर अर्थात् परम शीतल हाव-भाव सम्पन्न मधुर हास्य युक्त मुख मण्डल चन्द्रमा के सदृश्य कमलरूपी धर्म को गला देती है। शेष में यह कहा जाता है।

अवगुण मूल शूल प्रद, प्रमदा सब दुःख खानि।

मैय्या स्त्री सब दुःखों की खानि, सारे अवगुणों की जड़, जीव को सदा दुःख देनेवाली, हमारे सब आचार-विचार को भ्रष्ट करने हारी इसके

सदा बचने की चेष्टा करते रहना चाहिए। देखो रावण राक्षस है, स्त्री लंपट, कामी है, फिर भी कहता है।

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं। अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥
साहस, अनृत, चपलता, माया। भय, अविवेक, अशौच, अदाया॥

यदि मन्दोदरी, तारा, द्रौपदी इत्यादिकों में यह आठ महान् अवगुण भरे हैं तो साधारण स्त्रियों में वो हजार-हजार महान् अवगुण होंगे। शंकर भगवान् भी यही कहे हैं।

सुनहु सती तव नारि स्वभाऊ। संशय उर न धरिय अस काऊ॥

हे सती! तुम्हारा स्त्री का स्वभाव है। जो अविवेकी होता है न जान कर किसी के प्रति सन्देह नहीं करना चाहिए। तुलसीदास जी भी कहे हैं—

सती कीन्ह चह तहौं दुराऊ। देखहु नारि स्वभाव प्रभाऊ॥

कि स्त्रियों की स्वभाव की प्रभुता को देखो, सर्व अन्तर्यामी जगन्नियन्ता भगवान् श्रीशंकर जी से भी दुराव करना चाहती है। पुनः—

उतर न देइ सो लेइ उसाँस। नारि चरित करि ढारत आँसू॥

मंथरा ने कैकेई के प्रति नारि चरित्र करके क्या कर डाला, दशरथजी भी कह रहे हैं—"*कौने औसर का भयो, गयो नारि विश्वास*"। स्त्री के प्रति विश्वास नहीं करना चाहिए। "*यद्यपि नीति निपुण नर नाहू*"। परन्तु "*नारि चरित जलनिधि अवगाहू*"॥ कितना ही नीतिज्ञ, कितना ही विचारशील क्यों न हो पर स्त्री का चरित्र अगाध समुद्र है कोई अन्त नहीं पा

सकता, नीति कहती है—*"त्रिया चरित्र पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्याः"*। स्त्रियों का चरित्र विधाता भी जब नहीं जानता तो मनुष्य क्या जान सकता है। भरत लाल भी कह रहे हैं।

विधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुण खानी॥
सकल सुशील धर्मरत राऊ। सो किमि जाने तीय स्वभाऊ॥

स्त्री सकल कपट, अघ, अवगुण की खानि है। इनके हृदय की गति को ब्रह्मा भी नहीं जानते हैं, सो पिता तो अति ही सरल स्वभाव, शीलवान्, धर्मप्राण, सो कैसे स्त्री के कटु स्वभाव को जान सकते हैं। भैय्या बालक वृन्द ! रंभाशुक संवाद तो आप सुने ही होंगे। शुक जी कहते हैं—

श्लो०—कदाचिदपि मुच्येत् लौह काष्ठादि यंत्रतः।
पुत्र दारा निबद्धैस्तु न विमुच्येत् कर्हिचित्॥

भैय्या लोहा की जंजीर में अथवा बड़े-बड़े काष्ठ यन्त्र में बँधा हुआ जीव कभी मुक्त हो भी सकता है, परन्तु स्त्री पुत्र की ममता माया में बँधा जीव कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। अतएव—*"नारि विश्व माया प्रबल"*। भैय्या स्त्रियों की माया बहुत प्रबल है।

जो ज्ञानिन कर चित अपहरई। बरियाई विमोह वश करई॥

जो बड़े-बड़े ज्ञानियों के चित्त को अपहरण कर लेती हैं और बलात्कार से अपने आधीन करके दुःख देती हैं।

मृग नयनी के नयन शर को, अस लागु न जाहिं।

मृगा के से विशाल नेत्र वाली जो स्त्री है उनके नेत्र रूपी बाण

किसको नहीं लगे हैं। अर्थात् सबको लगे हैं। इससे बचने के लिए गोस्वामी जी अपने मन को समझाते हैं।

दीप शिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मंद, करहिं सदा सत्संग॥

हे मन! हमको पतंग की तरह जला देने के लिए स्त्री का तन दीपक की शिखा के समान है, उसमें तुम मत जलो, काम मदान्ध नशा को त्याग कर सन्त संग करो। जहाँ स्त्रियों के सारे दुर्गुणों की आलोचना होती है और स्त्री का त्याग बताया जाता है। उस सत्संग से अपनी चित्तवृत्ति स्त्रियों से हटाकर राम-राम भजन करो। अपने कल्याण का मार्ग खोजना है तो एकमात्र साधन साधु संग है और दूसरा रामनाम भजन है। यथा—

नर विविध कर्म अधर्म बहु मत, सोक प्रद सब त्यागहू।
विश्वास करि कह दास तुलसी, रामपद अनुरागहू॥

गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी अनुभव की हुई हार्दिक भावना को कहते हैं। कि हे भैय्या प्राणी वृन्द! नाना प्रकार कर्म, धर्म, अधर्म सब शोकप्रद अर्थात् दुःख देने वाले ही हैं, इन सबको त्यागो। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारी बात का विश्वास करके राम पद अनुरागहु, श्रीराम-जी के चरण कमलों में प्रेम करो। भैय्या, *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"* राम नाम का भजन करने से ही तुम्हारा कल्याण होगा, गोस्वामी तुलसी दास जी अपने इह लोक की यात्रा समाप्त करके परम पद, परम धाम जाते समय प्राणियों के कल्याण के लिए अपना अन्तिम मन्तव्य में यही कह गये हैं कि भैय्या!

अल्प तो अवधि जीव तामें बहु शोच पोच,
करिवे कहे बहुत है पै काह काह कीजिए।
पार ना पुराणन को वेदहू को अन्त नाहिं,
वाणी तो अनेक मन कहाँ कहाँ दीजिए।
काव्य की कला अनन्त छंद को प्रबंध बहु,
राग तो रसीले रस कहाँ कहाँ पीजिए।
सब बावन की एक बात तुलसी बताए जात,
जन्म जो सुधारा चाहो तो, श्रीराम नाम लीजिए।

भैय्या बालक गण! वा प्राणी वृन्द! अब तो आप अच्छी तरह से समझ लिए होंगे। *"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज"* भैय्या, गीता में कहा हुआ यह सिद्धान्त भगवान श्री कृष्णचन्द्र की श्री मुखवाणी है। इसी को गोस्वामी जी हम सबों को समझा कर कहे हैं। कि भैय्या मन तो एक ही है और सिद्धान्त मार्ग अनन्त है, मन कहाँ कहाँ लगायोगे, बस एक राम नाम लीजिए *"श्रीरामनामाऽखिल मंत्र बीजम्"*। श्री राम नाम ही सब मन्त्रों का बीज है, बस, *"केवल नामैव नामैव"* शुद्ध केवल नाम, *"राम रामेति रामेति"* राम राम राम, इसी में मन लगायो।

तीरथ अमित कोटि शत पावन। नाम अखिल अघ पुञ्ज नशावन।

भैय्या! राम नाम सारे पापों के समूह को नाश करके शत कोटि तीर्थों के समान जीव को पवित्र करने वाला है। इसी को तो वेद व्यासजी ने अपने अठारह पुराणों का सारांश राम नाम ही बताया है। यथा—

शतकोटि महामंत्र चित्तविश्रान्त कारकः ।
एक एव · परोमन्त्रो रामेत्यक्षर द्वयम् ॥

मैं अपने रचे हुए अठारह पुराणों में महा महाविशाल प्रभाव शाली सात करोड़ मंत्र लिखा हूँ परन्तु सब मंत्रों में परम परात्पर मंत्रराज वा महामन्त्र, नाम ही मात्र सार है। इसलिए *"राम नाम जप सब विधि ही को राज रे"* गोस्वामी जी के बताए हुये केवल रामनाम जपने ही से सारा वेद, पुराण, इतिहास, तीर्थ, व्रत, योग, यज्ञ, तपस्या सभी हो जायगा, गोस्वामी जी बारम्बार यही कर रहे हैं।

यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु विचार।
श्री रघुनायक नाम तजि, नाहिन आन अधार॥

भैय्या ! मन में विचार कर देखो, यह कलिकाल मल अर्थात् पाप का ही घर है, इस काल में जीवों का रक्षक एक मात्र राम नाम को छोड़कर दूसरा आधार कुछ भी नहीं है। *"जगज्जैत्रेक मंत्रेण रामनाम्नाभि रक्षितम्"*। यह सारा संसार प्राणी मात्र एक रामनाम के द्वारा ही रक्षित है।

भैय्या बालक वृन्द ! आप मानस रामायण नित्य नियम करके पढ़ें। वह आपको अपने कल्याण का सब रास्ता बतायेगी, परन्तु आप उसको बारम्बार पढ़ो समझो और मानस के अनुकूल आचरण करो, आचार बिना फल दायक नहीं होगी। आचार का विषय पूर्व में आप पढ़ चुके हैं। रामायण में सब कुछ तुम्हें मिलेगा। मानस रामायण वर्तमान काल में कल्पतरु कही गयी है।

श्लो०—यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सु कविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्,
श्रीमद्रामपदाब्ज भक्ति मनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथ नामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये,
भाषाबद्ध मिदंचकार तुलसी दासस्तथा मानसम्॥
पुण्यं पाप हरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्ति प्रदं,
माया मोह मलापहं सुविमलं प्रेमाम्बु पूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्र मानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये,
ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

भैय्या बालक वृन्द! जिस मानस रामायण को जगत प्रभु श्री शंकर भगवान् तथा कवि शिरोमणि आदि में दुर्गम अर्थात् संस्कृत में वर्णन किये थे, और जो मानस पढ़ने से श्री मद्रामचन्द्र के चरण कमलों की भक्ति प्राप्ति होती है। गोस्वामी श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं भी अपने अन्तः-करण की शान्ति के लिए एवं राम नाम में रत होने के लिए इस मानस को भाषा में कर रहा हूँ। क्योंकि संस्कृत समझना वर्तमान काल में बहुत कठिन होगा, इसलिए भाषाबद्ध कर रहा हूँ। यह मानस पुण्य को बढ़ाने वाला, पाप समूह का नाशकारी, सदा कल्याण करने वाला, विज्ञान और भक्ति का मार्ग प्रदान करने वाला एवं माया जनित मोह के कारण किए हुए सर्व पाप का नाशकारी, परम शुभ, परम पवित्र, प्रेम जल से परिपूर्ण है। जो भक्त जन इस राम चरित्र मानस में प्रेम एवं भक्ति से अवगाहन करेंगे, सो संसार रूपी सूर्य की घोर किरण अर्थात् दैहिक, दैविक, भौतिक त्रिताप से नहीं जलेंगे।

मन करि विषय अनल वन जरई। होइ सुखी जो यहि सर परई॥

भैय्या बालक वृन्द! मनरूपी हाथी, विषय रूपी वन में जल रहा है, यदि यह मानस सरोवर में आकर प्रवेश हो जाय तो सुखी हो जायगा।

जो फल कोटिन यज्ञ किये, अरु जो फल मकर प्रयाग नहाए।
जो फल धामन के परसे, अरु जो फल चेत्रन वास वसाए॥
जो फल योग अखंड किए, अरु जो फल पूरण नेम निवाहे।
जो फल दान अमान किए पर सो फल तुलसी की मानस गाए॥

तुलसीदास जी कहते हैं भैय्या प्राणी वृन्द! ऊपर में कहे हुए तीर्थ व्रतादि सब का फल केवल मानस रामायण पारायण करने से होगा।

मन कामना सिद्धि नर पावै। जो यह कथा कपट तजि गावै।

निर्मल हृदय से जो प्राणी यह मानस रामायण का पारायण गान करेंगे, उनकी सब मनोकामना पूर्ण होंगी।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी मानस रामायण की रचना करके हम सब अनभिज्ञ जीवों को संसार से निस्तार पाने के लिए कितना सुगम और कितना सरल मार्ग बनाए हैं, कितने परिश्रम से वेद पुराण इतिहासों को खोज-खोज भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, प्रेम का संग्रह करके हम सबों का परम उपकार किया है, जिसका अवगाहन करके हजार-हजार प्राणी नित्य मुक्त हो रहे हैं। अन्यान्य कवि आज जिनकी कविताओं के द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं। देखिये—

वैदिक प्रमाण जाको वेद को वदत त्यों,
पौराणिक प्रमाण में प्रमाण जासु गावैं हैं।
सभी देश वासी निज-निज अक्षरन माहिं,
लियो है उतार वृद्ध बालकन पढ़ावैं हैं॥
कहाँ लगि कहौं जासो यमहूँ डराय जात,
ऐसो को न जाकी चौपाई चार गावैं हैं॥
तुलसी रचित राम चरित को रघुराज,
मानस वदत रामरूप उर आवैं हैं॥

भैय्या मित्र गण! इस कविता से *"नाना पुराण निगमागम संमतम्"* आप समझ लिए होंगे। देखिये इसके रचयिता श्री रघुराज कवि हैं। और भी आगे देखिए :—

वेद सब सोधि सोधि, सोधि कै पुराण सबै,
सन्त और असन्तन के भेद को बतावतो।
कपटी कुराही क्रूर कलि के कुचाली लोग,
कौन राम नामहूँ की चरचा चलावतो॥
"वेणी" कवि कहैं मानो मानो हो प्रतीति यह,
पाहन हिए में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार,
जो पै यह श्री रामायण तुलसी न गावतो।

भैय्या बालकवृन्द ! इस कविता के रचयिता श्री वेणी नामक कवि हैं, जो कह रहे हैं कि यदि तुलसीदास जी नाना प्रकार वेद, शास्त्र, पुराणों को खोज-खोज यह रामायण न बनाए होते तो सन्त और असन्त का भेद कौन बताता, यह कलियुग के कपटी, कुटिल, क्रूर, कुचाली, दुष्टों से राम-नाम की चरचा कौन चलाता, कवि हम सबों को पूरी दृढ़ता और विश्वास दिलाते हैं कि भैय्या, इस बात को विश्वास मानों कि यदि यह मानस रचना न हुई होती तो हम लोगों के यह पाषाण हृदय में प्रेम कौन उत्पन्न करता, यदि यह मानस भूतल पर नहीं होता तो यह महा भयंकर और अति भारी भव सागर से पार कौन लगाता।

भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ताकहँ दृढ़ नावा॥

भैय्या ! यदि आप सब भवसागर से पार जाने की इच्छा रखते हों तो यह राम चरित्र मानस राम कथा आपके लिए एक मजबूत नौका मिली है, इस पर बैठ करके निश्चिन्त होकर भवसार पार हो जाइए, सुगम उपाय मिला है। देखिए:—

अंग्रेजी फारसी फ्रेंच जर्मनीहूँ में सियाराम,
सियाराम नाम की कहानी दर्शात है।
सब पाठशालन में शालन के बालन में,
पोथी के अटालन में राम ही दिखात है॥
राजदरबारन में दुकान अलमारिन में,
बाग की बहारन में होत सोई बात है।

मूरख हजारन सों राम को लिवायो नाम,

तुलसीदास चरण ही की यह करामात है ॥

भारत वर्ष के अंतर्गत तो हिन्दी, वंगला, उड़िया, तैलगू, मरहठा, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं में तो है ही परन्तु अन्यान्य देश की फारसी, फ्रैंच, जर्मनी, रूसी, चीनी, जापानी आदि भाषाओं में भी मानस के प्रभाव से सीताराम सीताराम की ध्वनि सुनी जाती है। जहाँ देखिए वहाँ, पाठशालाओं में, पाठशालाओं के बालकों में, पुस्तकों की लाइब्रेरियों में, राम-नाम ही देखा जाता है। राज दरबारों में, दूकानों की आलमारियों में, बगीचों में, फुलवारियों में, हवा खाते, उठते-बैठते, सर्वत्र राम नाम तथा मानस की ही चर्चा चल रही है। हजार-हजार मूर्ख दुराचारियों से राम नाम कहला रहे हैं। यह सब तो तुलसीदास के चरण ही की करामात कही जायगी अथवा पुरुषार्थ तो उन्हीं का है।

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भव निधि तरहीं ॥

भैय्या मित्रगण! जो कोई इस तुलसीदास की रचित कविता मानस रामायण को कहेंगे, वा सुनेंगे और अनुमोदन करेंगे वो अति अपार इतने बड़े संसार समुद्र को गोपद की तरह बिना प्रयास के सहज में ही पार उतर जायेंगे।

भैय्या बालकवृन्द! देखिए, वर्तमान काल के कवियों ने मानस पर बड़ा-बड़ा विचार दर्शाया है, जिनके नामों को गिनाता हूँ।

हाल के द्विवेदी चतुर्वेदी शुक्ल मिश्र बंधु,

गुप्तदीन रामहित सनेही रत्नाकर जू।

रंग औ अनंग रसरंग मणि पाठक जू,

नवलबिहारी शर्मा जू नवनागर जू ॥

इन्दु श्री बिन्दु अरविन्दु नेहलता श्री गाँधी जी,

गद्य-पद्य लेखक मलिन्द शक्ति चामर जू ।

निज-निज भाव सो गोसाईं गुण गान कियो,

छिपे नाहिं छपे पत्रिकान बीच सादर जू ॥

द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, शुक्ल, मिश्र, बन्धु, गुप्त, दीन, रामहित, रामसनेही, रत्नाकर, रंगजी, अनंगजी, रसरंगमणि जी, पाठक जी, नवलबिहारी, शर्मा, नवनागर जी, इन्दु जी, बिन्दु जी, अरविन्दु जी, नेहलता, श्री गाँधी जी और गद्य-पद्य लेखक, मलिन्द जी, शक्तिचामर जी, इन सबों ने अपने-अपने भावों को भिन्न-भिन्न रूप से गोस्वामी जी की गुणावली का गान किया है, वह छिपी हुई नहीं है, इन सबों ने बड़े आदर से पत्रिकाओं में, समाचार पत्रों में छपाया है, परन्तु इसकी गहराई कहाँ तक है, यह किसी को पता नहीं लगा।

तुमहिं आदि खग मसक पर्यन्ता । नभ उड़ाहि नहिं पावहिं अन्ता ॥

काक जी गरुड़ जी से कह रहे हैं कि हे गरुड़ तुम्हारे सहित मसा पर्यन्त खग आकाश में उड़ते हैं, परन्तु आकाश कितना लम्बा चौड़ा है, जब तुम्हीं को अन्त नहीं मिला तो मसा विचारे की तो क्या गणना है।

भैय्या ! इसी प्रकार जब ऊपर कहे हुए बड़े-बड़े वेगवान गरुड़ के समान रामायण के प्रवचनकारों को मानस का पता नहीं लगा तो

मसा मक्खी रूपी मेरे सरीखे अनभिज्ञों को मानस का पता लगाना एक परिहास मात्र ही है। अतएव मानस ही मन में रहने की वस्तु है यह वाणी की गति से दूर है। *"अनमिल आखर अर्थ न जापू"*।

मैय्या बालकवृन्द! मैं तो अपनी अल्प बुद्धि से मानस का अर्थ इतना ही समझा हूँ कि—

यहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुराण श्रुति सारा॥

रघुकुल के रघुपति जो श्रीराम जी हैं, उन्हीं का परम उदार नाम अर्थात् राम इस मानस में गोस्वामी जी रक्खे हैं। जो *"पावनानां पावनम्"* पावन को भी पावन करने वाला अति पावन है और वेद पुराण का सार है अर्थात् यही राम नाम ही की कीर्त्ति वेद पुराण गान करते हैं।

शेष शारदा वेद पुराणा। सकल करहिं रघुपति गुण गाना॥

शेष सरस्वती वेद पुराण इत्यादि रघुपति अर्थात् रघुकुल के पति श्रीरामनाम का ही गुणानुवाद सब गान करते हैं। यथा—

राम रामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञिकम्।
ब्रह्महत्यादि पापघ्नमिति वेदविदो विदुः॥

राम राम इति अर्थात् केवल राम राम ही परं जप है जो ब्रह्ममय एवं जीव को संसार सागर से तैराने वाला राम तारक मंत्र है, जिसको देव देवेश शंकर भगवान सदा सर्वदा *"महा मन्त्र जेहि जपत महेशू"*। जिसके लिए पार्वती कह रही हैं कि हे प्राणनाथ, *"तुम पुनि राम नाम दिन राती। सादर जपहु अनङ्ग अराती"*। आप सदा सर्वदा दिन रात बड़े आदर से, बड़े प्रेम से, जपते रहते हैं वह राम नाम क्या है।

राम कौन प्रभु पूँछौं तोहीं । कहहु बुझाइ कृपानिधि मोहीं ॥

राम कौन हैं हे प्रभु ! मुझको समझाकर कहिए, मैं भी राम नाम जप करूँगी कैसे जप किया जाता है ? शंकर भगवान ने कहा—*"राम रामेति रामेति रमेरामे मनोरमे"* । हे प्रिये इसकी विधि है राम राम इति अर्थात् शुद्ध राम राम, का ही जाप करना परन्तु जैसे जल में मिश्री मिलाने पर जल में मिश्री तदाकार हो जाती है, अपना अस्तित्व मिटा देती है और जल मिश्री का स्वरूप धारण करके मीठा हो जाता है । ऐसे ही *"रामे रमे मनोरमे"* अपना मन को राम में रमण करके अपना अपनत्व नष्ट कर दे जैसा कि *"को मैं चलेउँ कहाँ नहि बूझा"* । मैं कौन हूँ कहाँ हूँ, क्या करता हूँ, क्या हूँ ऐसी स्मृति न हो केवल राम राम ही हो, *"तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्य इव समाधी"* । जैसे योग समाधी में केवल तेजोमय प्रकाश ही दीखता है अपना सर्वांग शून्य हो जाता है अपने स्वरूप का ज्ञान नष्ट हो जाता है ।

ऐसे ही केवल राम राम ही दीखे अपना अपनत्व वही राम राम में लय हो जाय, और राम राम की अपने में रमा लेवे अर्थात् अपने भी रामाकार हो जाय *"राम राम रटु, राम राम जपु, राम रामें रमु"* उच्च स्वर से राम नामरटो, मौन होकर राम राम जपो और मन में मनन करके राम राम में रमो अर्थात् मन वचन कर्म से राम राम करो । तब *"ब्रह्म हत्यादि पापघ्न"* ब्रह्म हत्या इत्यादि जीव का सर्व पाप नाश हो जाता है *"तब यह जीव कृतारथ होई"* यही मन में रखना होता है इसी से इसका नाम मानस हुआ है म, और न, मन कहा जाता है रहा अकार और सकार, अकार को सकार के आगे

इसिए वो हो जायगा सा, अर्थात् वही, राम, सा को मन के सामने योग कर देने से मनसा बन जायगा, मनसा राम राम जपु।

भैय्या बालक वृन्द! वा प्राणी वृन्द! यह रामनाम का पूर्ण प्रकार से मर्त्यलोक में . वाल्मीक के द्वारा प्रचार हुआ है। *"उलटा नाम जपत जग जाना"* वाल्मीक ने यह उल्टा नाम को बहुत प्रयास करके सीधा नाम बनाया मरा का राम बनाया, इसके पूर्व में यह नाम मरा ही के स्वरूप में था।

भैय्या बालक वृन्द! तथा प्राणी गण! श्री वाल्मीक जब सर्व प्रथम मरा मरा उचारण किए हैं तब यह मरा रूप में इस प्रकार था "रां" अनुसार ऊपर और रा, नीचे अनुसार ही आगे म, कहा जायगा इसलिए प्रथम म, और पीछे रा कहने से मरा हुआ परन्तु यह मरा योगियों के अनुभव की वस्तु है। यह केवल प्रकाश मात्र है और त्रिगुणरूप से परा, पश्यन्ति, मध्यमा, शरीर में ही अर्थात् परा से मध्यमा तक इतनी दूर तक व्यवहार करती है, बैखरी अथवा मन, *"वा मनसि गोचरं"*। वाणी में नहीं आता, मन वाणी से अग्राह्य है, केवल अनुभव मात्र है। *"अनुभव गम्य भजहि जेहि सन्ता"*।

श्री वाल्मीक जी साठ हजार वर्ष तक समाधिस्थ होकर अनुभव करते-करते इसके यथार्थ स्वरूप को देखते हैं तो *"अर्द्ध मात्राक्षरो"* अर्धा मात्र, अक्षर है हलन्त र् और ऊपर में एक अनुस्वार है। अर्थात् र् वही आगे *"अर्ध मात्राक्षरो रामः"* पुनः *"रकारार्थो रामः"* कहा जायगा और जो अनुसार मकार स्थानी है वह *"मकारार्थो जीवः"* जो दोनों मिला है *"मन जीव इव सहज संघाती"*। एक आत्मारूप और दूसरा परमात्मा रूप ये दोनों सम्मिलित आनन्द मग्न है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी ॥

इस प्रकार वाल्मीक अनुभव करते हुए केवल प्रकाश मात्र हैं। जब परा वाणी से पश्यन्ति वाणी में अनुभव किए तो एक अक्षर की अर्धमात्रा अर्थात् हलन्त र् पुनः अर्द्ध मात्रा अ् युक्त हुआ। तब शुद्ध "र" बन गया। "अ" माया का स्वरूप है वह दो भेद युक्त है—"एक रचै *जग गुण वश जाके*" और "एक दुष्ट *अतिशय दुख रूपा*"। तब दूसरी माया जो दुष्टा है। वह सामने खड़ी हो गई तब "*रा*" हो गया पुनः वह दुष्ट माया अति मायावी होने से त्रिगुण रूपी दूसरा रूप धारण करके जो हलन्त रूपी रकार था और रकार के ऊपर जो अनुस्वार रूपी जीव था। वह जीव और ब्रह्म में अन्तर डालने के लिए चन्द्राकार आवर्त डाल दिया, तब वह जीवरूपी अनुसार ब्रह्म रूपी रकार, को न देखकर भ्रम में पड़कर निज माया को ग्रहण करके रूपान्तर होता है और मकार बन कर ऊपर से नीचे आकर "*रा*" के सामने आता है तब "*राम*" बन जाता है और रकार ब्रह्म अकार माया, मकार जीव, इस प्रकार भिन्न-भिन्न रूप बन जाता है। तभी से यह जीव को कहा जाता है—"*सो मायावश भयो गुसाईं*"। "*तब यह जीव विविधि विधि, पावै संसृति क्लेश*" ॥ विनय में तुलसीदासजी कहते हैं कि—"*तबही ते न भयो हरि थिर जब ते जिव नाम परो*"। हे हरि तभी से यह स्थिरता या शान्ति नहीं पाया, जब से जीव ऐसा नाम हुआ, पुनः अन्यत्र पद में कहा गया—

जिव जब ते हरि ते बिलगान्यो। तब ते देह गेह निज जान्यो ॥
माया वश स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रमते दारुण दुःख पायो ॥

इस प्रकार जो ब्रह्म, माया, जीव पूर्व में हलन्त रकार रूप निर्गुण था वही त्रिगुण रूप होकर "राम" हो गया, वही त्रिगुण को द्विगुणा करने से छः हो गया, जिसका षडाक्षर "राम मन्त्र" बना, पुनः षडाक्षर की व्याख्या करने से छै काण्ड रामायण बनी, पुनः षडाक्षर को द्विगुणा करने से बारह हो गया, जिसका द्वादशाक्षर वासुदेव मन्त्र बना, जिससे बारह स्कन्ध श्री मद्भागवत बना, पुनः यही षडाक्षर को त्रिगुणा करने से अठारह हुआ, जिसका अष्टादशाक्षर गोपाल मन्त्र बना, जिसकी व्याख्या करने से अठारह पर्व महाभारत का निर्माण हुआ, पुनः षडाक्षर को चतुर्गुणा करने से चौबीश हुआ, जिस चौबीश अक्षर से ब्रह्म गायत्री अर्थात् ब्रह्म का स्वरूप बना, वह चौबीश अक्षर चौबीश तत्त्व है। चौबीश तत्त्वों का शरीर होता है तो वह चौबीश तत्त्वयुक्त ब्रह्म का शरीर बना, जो चौबीश अवतार में विभक्त है। इसीलिए कहा गया है—"*श्रीरामनामाखिल मन्त्र बीजम्*"। जिसकी व्याख्या चौबीश हजार श्लोक वाल्मीक रामायण का निर्माण हुआ जो ब्रह्म स्वरूप एवं पञ्चम वेद कहा जाता है। यह चौबीश हजार, श्लोक चौबीश अक्षर, चौबीश, तत्त्व, चौबीश अवतार का सारांश षडाक्षर राम मन्त्र और षडाक्षर राम मन्त्र का सारांश तथा निर्गुण का सगुण राम हैं, जिसको कहा जाता है—"*एते चांश कला सर्वे रामस्तु भगवान् स्वयम्*"। मानसकार कहते हैं—"*राम ब्रह्म चिन्मय अविनाशी*"। यही राम दो प्रकार से कहे गए हैं एक नामी और दूसरा नाम, "*नाम रूप दोइ ईश उपाधी*"। अर्थात् ब्रह्म की दो संज्ञायें हैं। एक नामी जो राम रूप से मूर्तिमान् हैं और दूसरा नाम ब्रह्म जो व्यापक रूप से व्यवहार करता है। जो वाणी का

विषय है वही सतयुग में अनुभव गम्य था, जो कर्म योग अर्थात् समाधिस्थ होकर अनुभव किया जाता था। योगीजन मरा कहेंगे, अतएव मकार जो जीवरूपी है वह योगवस्था में अपने को कहता है कि हे म! हे जीव! तूँ ब्रह्मरूपी "रा", में "जा", योगी लोग समाधिस्थ होकर अपनी आत्मा को अपान से प्राण पर्यन्त उठाकर ब्रह्म में प्रेरित करते हैं। यथा—

भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विलीयते।
ज्ञातव्य तत्पदं तुर्यं तत्र कालो न विद्यते॥

भ्रू के मध्य में कल्याण रूपी आत्मा का स्थान है, वह शिव वा परमात्मा ब्रह्म में मन प्राण लीन हो जाता है, अतएव आत्मा अपनी पराशक्ति परमात्मा ब्रह्म में लीन हो जाता है तब वह म रूपी जीव, ब्रह्म रूपी रा, में जाकर लीन हो जाता है इस प्रकार कर्म योगी कहेंगे, म, रा, हे म, रा, में जा, यह कर्म उपासना योग समाधी ध्यान सतयुग में था वही रा जो रूप ब्रह्म अनुभव गम्य था *"योगिनामाव गम्यम्"* वही रकार त्रेता में *"रकारार्थो रामः"* दाशरथी राम होकर लीला रूप से प्राणियों का कल्याण किया और द्वापर में कृष्ण रूप *"माया मनुष्यो हरिः"* नाना लीला करके जीवों का उद्धार किया उस समय भक्ति और प्रेम से नाना प्रकार सेवा करके ब्रह्म की उपासना की जाती थी। इस प्रकार दूसरी उपासना भक्ति योग से की जाती है तो भक्ति योगी भक्तजन ब्रह्म रूपी रा अर्थात् राम का अपने हृदय में आवाहन करते हैं *"हृदय श्यामलं रूपम्"* अतएव—

जो कोशल पति राजिव नयना। करौ सो राम हृदय मम अयना॥

वे भक्ति योगी भक्त जन कहते हैं कि हे राम ! म, में आओ अर्थात् हे रा रूपी ब्रह्म में जो म, रूपी जीव हैं हमारे हृदय में आओ। भक्त कहते हैं, "*करो सो राम हृदय मम अयना*" इस प्रकार मरा और राम शब्द की व्याख्या है। कर्म योगी मरा कहते हैं और भक्ति योगी राम कहते हैं। मरा निर्गुण ब्रह्म है और राम सगुण ब्रह्म है परन्तु विचार करने से "*सगुणहि अगुणहि नहि कछु भेदा*" सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है "*अगुण अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बश सगुन सो होई*" जैसे "*उर अभिलाष निरन्तर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई।* अभिलाषा होती है की मैं परम परात्पर परमात्मा ब्रह्म को देखूँ। जो "*अगुण अखंड अनन्त अनादी*" है परन्तु ऐसा निर्गुण निराकार होने से भी "*भक्त हेतु लीला तनु गहहीं*"। भक्तों के लिए लीला मात्र से "*माया मनुष्यो हरिः*" शरीर धारण करता है आखिर "*माँगु माँगु वर भै नभ बानी*" आकाश में एक माँगु माँगु शब्द सुनाई पड़ा, अन्त में "*विश्व बास प्रकटे भगवाना*" विश्व व्यापी निराकार निर्गुण प्रत्यक्ष में मूर्त्तिमान हो गये। "*नील सरोरुह नीलमणि, नील नीरधर श्याम*"। नील कमल के समान कोमल एवं सुवासित, नील मणि की तरह प्रकाशमान, नील नीर भरे हुए बादल के समान, अर्थात् करुणा भरे हुए करुणामय, श्यामसुन्दर एवं—

दूर्वादलं द्युति तनुं तरुणाब्ज नेत्रं हेमाम्बरं वर विभूषण भूषिताङ्गम्।
कन्दर्प कोटि कमनीय किशोरमूर्त्ति पूर्त्तं मनोरथ भवं भजु जानकीशम्॥

भक्ति योगी के लिये निराकार ही साकार ब्रह्म होता है।

सो केवल भगतन हित लागी। तर तनु धरेउ प्रणत अनुरागी॥

इत्यादि त्रेता द्वापर में भगवान् राम कृष्णादि रूप से सकार अर्थात् नामी ब्रह्म होकर कल्याण किए।

वही कर्म योगियों का ध्येय निदिध्यासन जो परा निर्गुण ब्रह्म था उसीको कलियुग के प्राणियों के उद्धार के लिए वाल्मीक, राम नाम निर्माण किए —

कूजंतं राम रमेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविता शाखां वन्दे वाल्मीक कोकिलम्॥

ऐसे वाल्मीक की मैं वन्दना करता हूँ जो कोकिला की तरह कविता रूपी डार पर बैठकर मधुर से मधुर वाणी से मधुर से अक्षर रकार मकार अर्थात् राम राम-की *"कुहूँ कुहूँ कोकिल धुन कर हो"* ध्वनि लगाई जो सारे ब्रह्माण्ड में गुञ्जरित हो गई।

राम भक्त अब अमिय अघाहू। कीन्हेउ सुलभ सुधा वसुधाहू॥

जिस राम नामामृत को पी-पी कर राम नाम के भक्त सन्तुष्ट हो जाँय पूर्ण हो जाँय, वह रामनामामृत वसुन्धरा पृथ्वी पर सबके लिए सुलभ कर दिए।

सबहिं सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेशा॥

प्राणीमात्र के लिए सर्वकाल में, सर्वदिन में, सर्वदेश में सुलभ कर दिए, जिसमें शौचाशौच की आवश्यकता नहीं, समय, काल, देश की आवश्यकता नहीं, किसी उपचार सामग्री की आवश्यकता नहीं *"प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू"* केवल मात्र *"जपात् सिद्धिः"* यथा—*"राम नाम जप सब विधि* ही

को रजरे" राम नाम जपना ही सारी विधि बन जाती है। षोडशोपचार पंचोपचार, दशोपचार, गंगा स्नान, संध्यातर्पण आदि सारी विधि बन जाती है। प्रथम सतयुग में *"सतयुग सब योगी विज्ञानी"* थे, *"करि हरि ध्यान तरहि भव प्रानी"* और त्रेतायुग में सभी प्राणी—

त्रेता विविधयज्ञ नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं ॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा ॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
राम नाम कलि काल कराला। सुमिरत शमन सकल जग जाला ॥

भैय्या बालक वृन्द! सतयुग में सभी योगी विज्ञानी थे तो वे योग नियम से कहे हुए निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करके संसार से उत्तीर्ण होते थे। त्रेता में यज्ञ करके उद्धार होते थे। द्वापर में पूजा करिके मुक्त होते थे। परन्तु कराल कलिकाल में तो एक राम नाम का ही स्मरण करके वा जप करके अथवा उच्चस्वर से कीर्तन करके जीव संसार से मुक्ति पाते हैं।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजा, और कलियुग में केवल नाम कीर्तन।

भैय्या मित्रगण! कलियुग में जीव के निस्तार के लिए श्री वाल्मीक जी मरा को राम बनाने के बहुत परिश्रम से शतकोटि बार लिखलिख कर घोषणा किए और सुगम्य किए। पुनः लिखे हुए शतकोटि श्लोक को

परीक्षा देने के लिए शंकर भगवान् के पास गए। शंकर वाल्मीक जी के शतकोटि वार घोषणा किए हुए राम-राम का अनुमोदन करते हुए उस शतकोटि श्लोक लिखित राम नाम महिमा को संकोच करके केवल तत्त्व मात्र चौवीश हजार एकत्रित ग्रंथाकार करके नामकरण किए, वाल्मीकीय रामअयन अर्थात् वाल्मीकीय रामायण। इस रामायण में से शंकर भगवान् कलिकाल के प्राणियों के लिए राम नाम का परत्व मन ही मन जानकर—

ब्रह्म रामते नाम बड़, वरदायक वरदान।
रामायण शत कोटि महँ, लिय महेश जिय जान॥

अर्थात् सतयुग में हलन्त र्, निर्गुण ब्रह्म था, जो *"योगिनां ध्यान गम्यं"*। वही त्रेता और द्वापर में मूर्तिमान राम कृष्णादि नामी ब्रह्म था जो यज्ञ और पूजा से प्राप्त होता था। परन्तु कलिकाल में—

रामेति वर्ण द्वयमादरेण सदा स्मरण मुक्तिमुपैति जन्तून्।
कलौयुगे कल्मष मानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः॥

केवल राम नाम के शिवाय अन्यत्र कोई उपाय नहीं है। यही केवल राम नाम ही प्राणियों को सर्व प्रकार कल्याण कारी होगा।

कल्याणानां निधानं कलिमल मथनं पावनं पावनानां,
पाथेयं जन मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवर वचसां जीवनं सज्जनानाम्,
वीजंधर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥

सर्व कल्याणों का निधि, कलि के पापों का नाशकारी, पावनों को भी पावन करने वाला, मुमुक्षुओं को मार्ग सम्बल रूप, भक्तों को शीघ्र एवं बिना प्रयास ही परमपद प्राप्त कराने वाला और सर्व जीवों के लिए एक मात्र विश्राम अर्थात् सुख का स्थान, श्रेष्ठ कवियों की वाणी का भूषण, सज्जनजनों का जीवन, और धर्म रूपी वृक्ष का बीज, "श्रीराम-नामाखिल मंत्र बीजम्" अतएव "एवं भूतो श्रीराम नाम" इस प्रकार जो राम नाम सो प्राणियों के लिए सर्व प्रकार की विभूति अर्थात् सुख ऐश्वर्य देने के लिए सर्व समर्थ है।

न तत्पुराणं नहि यत्र रामो, यस्यां न रामो नहि संहितासा।
स नेतिहासो नहि यत्र रामः काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः॥
शास्त्रं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः तीर्थं न तद्यत्र नहि रामचन्द्रः।
यागः स यागो नहि यत्र रामः योगः स रोगो नहियत्र रामः॥

भैय्या बालक वृन्द, जिस पुराण में राम नाम नहीं है वह पुराण ही नहीं है, वह संहिता ही नहीं है, वह इतिहास ही नहीं है, वह काव्य ही नहीं है, वह शास्त्र ही नहीं है, वह तीर्थ ही नहीं है, वह योग भी रोग है, जिसमें राम नाम नहीं। अर्थात् जिस वस्तु में राम नहीं है वह निरर्थक वस्तु है।

भणित विचित्र सुकवि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
सब गुण रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम यश अंकित जानी॥

"सादर कहहिं सुनहिं बुधताही" अच्छे कवि के द्वारा विचित्र कविता

श्री रामनाम कल्पवृक्ष
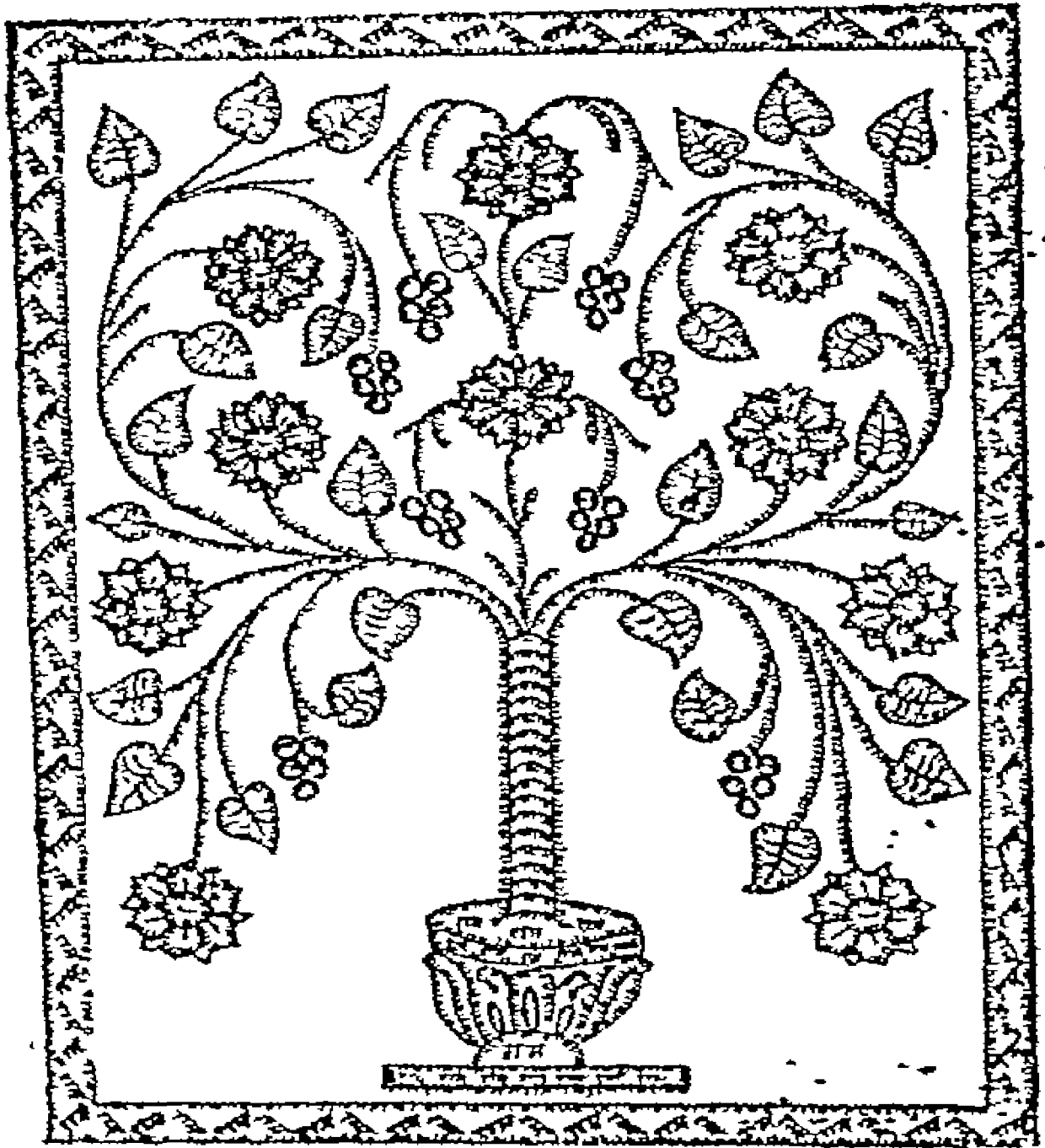
रामनाम को कल्पतरु, कलि कल्याण निवास ।

होने से भी राम नाम बिना असुन्दर ही रहती है और साधारण ही कवि के द्वारा रचित उपमा उपमेय ध्वनि अवरेव अलंकार कुछ भी नहीं है परन्तु राम नाम की महिमा वर्णित है तो विद्वान लोग उसी को आदर पूर्वक कहते वा सुनते हैं। *"रामनाम बिनु गिरा न सोहा"* राम नाम बिना वाणी ही की शोभा नहीं है। *"राम नाम कलि अभिमत दाता"* कलिकाल में राम-नाम ही मनोवाँछित पूर्ण करने वाला है।

भैया बालक वृन्द! उसी रामनाम को शंकर भगवान् *"रामायण शत कोटि महँ लिय महेश जियजानि"* शत कोटि रामायण में से कलिकाल के लिए राम नाम की महिमा मन ही मन जानकर कलि के जीवों के उद्धार के लिए। *"रचि महेश निज मानस राखा"*। जो रामनामामृत महा-रूपी पंचम वेद, श्री वाल्मीकीय रामायण रूपी समुद्र से मंथन करके संभूत-हुआ है और कलिकाल के सब पाप रूपी राक्षसों को ध्वंस करने वाला, अक्षय अव्यय है। *"घटहि न जग नम दिन दिन दूना"* जो कभी कम नहीं होता संसार में दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। वह रामनामामृत श्री शंकर भगवान् अपने सुन्दर मुखरूपी चन्द्रमा में रक्खे हुए सदा सर्वदा।

रामराम रामराम रामराम राम

रामराम रामराम रामराम राम।

शोभा पाता रहता है। अर्थात् सदा जपते रहते हैं।

तुम पुनि राम नाम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती॥

यह श्रीरामनामामृत, शंकर के मुख रूपी चन्द्रमा में *"उदय सदा अथइय कबहूँ ना"* और संसारासक्त जीव दैहिक, दैविक, भौतिक, त्रिताप,

अथवा काम, क्रोध, लोभादि रोगों से ग्रसित प्राणियों के लिए श्रेष्ठ औषध है। *"रघुपति भक्ति सजीवनि मूरी"*। भक्ति जीव की संजीवनी है पुनः यही राम नाम *"जगज्जैत्रेक मंत्रेण राम नमामि रक्षितम्"*। लंका में जानकी का रक्षक हुआ। *"नाम पाहरू दिवस निशि"* इस प्रकार रामनामामृत के जापक कलिकाल के उन प्राणियों को धन्यवाद है जो सर्वदा राम नामामृत को पीते रहते हैं। अर्थात् जपते रहते हैं। यथा—

ब्रह्माम्भोधि समुद्भवं कलिमल प्रध्वंसनं चाव्ययम्।
श्री मच्छंभु मुखेन्दु सुन्दर वरे संशोभितं सर्वदा॥
संसारामय भेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं।
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥

जो राम नाम साक्षात् ब्रह्म का ही एक रूप है। *"नाम रूप दोउ ईश उपाधी"*। त्रेता में ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी नामी रूप मूर्तिमान् होकर जीवों का कल्याण किये, द्वापर में कृष्ण रूप से जीवों का उद्धार किया। और कलियुग में नाम ही जीवों का कल्याण करने में समर्थ हैं।

येन दत्तं हुतं तप्तं सदा विष्णु समर्चितम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य रामेत्यक्षर द्वयम्॥

जे प्राणी दो अक्षर राम नाम जिह्वा से कह रहे हैं। वे दान, यज्ञ, पूजा, तप सब पूर्ण कर रहे हैं।

बारेक नाम लेत नर जेऊ। होत तरण तारण सम तेऊ॥

भैय्या बालक वृन्द! यह राम नाम की महान् महिमा को शंकर भगवान् अपने मन में विचार करके रक्खे थे कि कलिकाल के प्राणियों के उद्धार का यह एक ही उपाय है। वही राम नाम को *"पाय सुसमय शिवा सन भाषा"*। समय पाकर अर्थात् कलिकाल का आगमन देखकर पार्वती को कहा। पार्वती ने जब प्रश्न किया तो शंकर कहे—*"कीन्हेउ प्रश्न जगत हित लागी"*। प्रिये आपका प्रश्न तो संसार के कल्याण के हेतु है। *"पूँछेउ राम कथा अति पावनि"*। आपने जो राम नाम की महिमा पूँछी यह परम पावनी है। *"सकल लोक जग पावनि गंगा"*। यह कथा प्राणियों को पावन करने के लिए गंगा के समान है।

भैय्या बालक वृन्द वा मित्र गण! वही कथा यही राम नाम आज हम सबों के लिये अर्थात् कलिकाल ग्रसित प्राणियों के लिये। *"सोइ वसुधा तल सुधा तरंगिनि"*। वसुधा पर अमृत की लहरें उमड़ती हुई। *"चली सुभग कविता सरिता सो"*। कविता रूपी सुन्दर नदी बह रही है। *"राम चरित मानस यह नामा"*। जो कविता का नाम है रामचरित मानस जिसको, *"सुनत श्रवण पाइय विश्रामा"*। कान में सुनते ही हम सबों को सुख शान्ति मिल रही है। जिस तुलसीदास तथा जिनकी कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा कवि चारों तरफ कर रहे हैं। अहा! गोस्वामी तुलसीदास जी—

मथि पुराण श्रुति वेद निर्माई स्वर्ग निसेनी,
भक्ति प्रेम साहित्य मई बनि गई त्रिवेनी।
यह जल जो जन न्हात सुखद सद्गति सो पावत,
तुलसी के उपकार मानि गुण गरिमा गावत

नित इसके आश्रयण से मिलती कीर्त्ति अगम्य है,
"शंकर" व्यापी विश्व में श्री तुलसी स्मृति रम्य है॥

शंकर नामक कवि अपने छप्पै में कहते हैं कि श्री तुलसीदास की कविता रूपी कीर्ति सारे विश्व में व्याप्त होकर सुन्दर स्मृति दिला रही है—

हे रामचरित सरोज मधुकर हे अमर कवि केशरी।
महिमा तुम्हारी कवि कलाधर भुवन भर में है भरी॥
है जाह्नवी जल सम पवित्र कवीन्द्र तेरी कल्पना।
है भव्य भावों से भरी कविवर तुम्हारी भावना॥

कविवर तुम्हारी कविता कलिकाल के जीवों को कल्याण करने की प्रेम भक्ति भावों से परिपूर्ण है।

विश्व सकल की पूज्य परम प्रद प्रभा प्रकाशिनि,
भक्ति भाव भरि भव्य विज्ञता विमल विकाशिनि।
मञ्जुल मृदुल मनोज्ञ निखिल नित नीति सुहावनि,
देवी सुख प्रद सतत सबहिं रामायण पावनि।
श्रुति विदित सकल कल्याणमय नित कलि कलुष नशावनी,
हे मुद मंगल मय! सदा श्रीराम चरित विस्तारिनी॥

यह आप की रामायण कविता जीव मात्र को पावन करने हारी एवं सर्व सुख देनी वाली है।

भैया बालक वृन्द ! यह तुलसीदास रचित रामायण रोज पाठ किया करें। अन्त में तुलसीदास जी यही तो कहे—

ताहि भजिय मन तजि कुटिलाई । राम भजे गति केहि नहिं पाई ॥

कुटिलता को त्यागकर उस प्रभु का भजन करो राम का भजन करने से कौन गति नहीं पाया है अर्थात् सब गति पाये हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! वा प्राणीवृन्द ! तथा सज्जन वृन्द ! आप मानस का पाठ सदा करें और रामायण के बताए हुए आचार को भी पालन करें। अब मन लगाइए मानस पर, मानस का सिद्धान्त पढ़िए।

जौ विधि जन्म देहि करि छोहू । होहिं राम सिय पूत पतोहू ॥

यदि विधाता कृपा करके इस पृथ्वी पर मनुष्य जन्म दें, तो राम सरीखा पुत्र और सीता सरीखी पुत्र वधू दें। विधाता से कैकेई माता यह प्रार्थना करती हैं। इसलिए—"*कैकेइ कहँ पुनि पुनि मिले*"। तभी तो कैकेई माता को बारम्बार मिले। पुनः ग्रामवासी बालक कहते हैं। "*सेवक हम स्वामि सिय नाहू*"। हम सेवक हों सीतापति रामजी हमारे प्रभु हों। तभी तो "*मीत पुनीत प्रेम परि पोपे*"। मित्रों के पवित्र प्रेम से सन्तुष्ट हुये, परन्तु ग्रामवासी तथा कैकेई माता का श्रीरामजी से एक ही एक सम्बन्ध था। किन्तु तुलसीदास या हम सबों का तो "*मोहिं तोहि नातो अनेक नाथ मानिये सो भावे*"। हम सबों तथा जीव मात्र का श्रीरामजी से नव गाढ़ सम्बन्ध है। जिस किसी सम्बन्ध से सेवा मिले। "*ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरण शरण पावे*"। तुलसीदासजी कहते हैं किसी प्रकार चरणों में शरण मिलनी चाहिए। तो भैय्या—

हम सब पुण्य पुञ्ज नहिं थोरे । जिनहिं राम जानत करि मोरे ॥

हम सबों का पुण्य क्या कम है श्रीरामजी जिनको अपना जानते हैं। कुछ भी हैं, हैं तो राम का ही। परन्तु प्रार्थना ऐसी करनी चाहिए कि हे श्रीरामजी, आप जिस संबंध में हों वहाँ ही सेव्य हैं। और मैं जो भी हूँ परन्तु सेवक हूँ। यदि आप पुत्र हैं तो मैं पिता हूँ तथापि "*पुत्र नेह तव पद रति होई*"। आप के पुत्र होने से भी मेरी आप के चरण में ही रति हो, चरण पखारूँ, चरणामृत पियूँ, गोद में खेलाऊँ, लाड़-लड़ाऊँ, प्यार करूँ, हृदय लगाऊँ, सदा चरणों में प्रणाम करूँ, स्मरण करूँ, मुझे भले ही कोई मूर्ख कहे कि ऐसा उलटा यह क्यों करता है अर्थात् बेटे का पाँव धोना चरणामृत पीना बेटे को प्रणाम करना यह विपरीत है। भले ही हो, परन्तु भैय्या मैं तो तुम्हारे चरण की ही सेवा करूँ। और यदि आप शिष्य हैं तो मैं गुरु हूँ। तभी भी वशिष्ठ जी ने गुरु होने पर भी यही तो कहा है।

नाथ एक वर माँगहूँ, राम कृपा करि देहु ॥
जन्म जन्म तव पद कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु ॥

शिष्य भावना से ही आपके चरणों में मेरा जन्म जन्मान्तर प्रेम बढ़े। सदा जय जयकार मनाऊँ, आशीर्वाद करूँ, वात्सल्य स्नेह से गोद खेलाऊँ, प्यार करूँ, यह सेवा करूँ, भैय्या आप चाहे किसी अंश में हों परन्तु "*सेवक हम स्वामी सिय नाहू*"। मैं सेवक और आप स्वामी प्रभु रहें क्योंकि "*सेवक सेव्य भाव बिनु भवन तरिय उरगारि*"॥ सेवा सेव्य भाव बिना जीव का कल्याण नहीं है संसार से निस्तार नहीं पाता और ऐसी प्रभु की आज्ञा भी सो है "*सो अनन्य जाके अस मति न टरै हनुमन्त* ॥

मैं सेवक सचराचर रूप राशि भगवन्त" ॥ हे हनुमान्! जो जीव सदा यह निश्चय किया है कि रूप राशि भगवान् प्राणी मात्र के सेव्य हैं। रक्षक हैं, और मैं तथा चराचर प्राणी मात्र उस प्रभु का सेवक हूँ। वही मेरा अनन्य भक्त है। अतएव किसी सम्बन्ध में हों, पिता हों, पुत्र हों, गुरु हों, चाहे शिष्य हों, परन्तु आप जगत के प्राणी मात्र के प्रभु हैं, सेव्य हैं और प्राणीमात्र आपकी प्रजा है सेवक है। भैय्या राम भद्र! आप तो "*गुरुणांच गुरुश्चैव पितृणांच पितामहः*"। गुरुओं के गुरु हैं, पिताओं के भी पिता हैं। अर्थात् आप प्राणी मात्र के प्रभु हैं, सेव्य हैं। सारे जगत् के पालन कर्त्ता हैं आप सभी के सेव्य (स्वामी) हैं।

प्रिय बालक वृन्द! तथा प्रिय सज्जनों! यह ऊपर कही हुई धारणा ध्येय और भावना, ऐसा निश्चित होना तो सब सुकृतियों का अन्तिम फल है। यथा—

सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। सीयराम पद सहज सनेहू ॥

श्रीसीतारामजी के पदकमलों में स्वाभाविक प्रेम होना। इसीलिए तो वर्णाश्रम से ही सुकृति और पुण्य संग्रह करने का मार्ग बताया गया है। कहा जाता है। "*जो विधि जन्म देहि करि छोहू। होंहि राम सिय पूत पतोहू*" अथवा "*पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भक्त जासु सुत होई*" ॥ श्रीसीताराम सरीखे पुत्र, पुत्रवधुयें अथवा राम का भक्त पुत्र हो। जिनके द्वारा "*कुलं पवित्रं जननी कृतार्था*" कुल पवित्र हो माता पिता कृतार्थ हों, जिनके द्वारा "*वर्णाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहिं सदा*" सदा भगवान से प्रार्थना करूँ कि प्रभु....। यथा पद में—

मुझसे कभी किसी प्राणी का हो जाये न अहित अपमान,
सब में तुम्हीं दिखाई देवो हो मुझसे सब का सम्मान।
दुःख मिटाने में औरों के अपना सुख कर दूँ बलिदान,
बढ़ता देखि दूसरों का सुख मैं पाऊँ आनन्द महान्॥
मैं अपने छोटे पापों को समझूँ बहुत बड़ा अपराध,
कभी न देखूँ दोष पराया गुण सबके देखूँ निर्बाध।
घृणा करूँ मैं नहीं किसी से रहूँ सदा दुष्कृत से दूर,
आने दूँ कुविचार न मन में रक्खूँ सद्विचार भरपूर॥
बुरे संग से बचा रहूँ नित करूँ सज्जनों का सतसंग,
रँगा रहे जीवन मेरा मधु पावन भक्ति प्रेम के रंग॥

भैया बालक वृन्द ! इस प्रकार मैं "*सबके प्रिय सबके हितकारी*" होऊँ। जैसे श्रीराम जी "*प्रात काल उठिकै रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहिं माथा*" एवं "*जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संयोगा*"॥ जैसा भरत, "*सीताराम चरण रति मोरे। अनुदिन बढ़ै अनुग्रह तोरे॥*" जैसा लक्ष्मण, "*लालन योग लषण लघु लोने। भे न भाइ अस अहइ न होने॥ जीवन लाहु लषण भल पावा। सब तजि राम चरण मन लावा*"॥ इत्यादि वर्णाश्रम से ही धर्म बताया गया है।

बरिहिं ते निज हित पति जानी। लक्ष्मण राम चरण रति मानी॥

अवश्य अपने वर्णाश्रम के धर्म को पालन करते हुए अपने अभीष्ट

सिद्धि भगवान् को प्राप्त करने के लिए बाल्यकाल से ही जिज्ञासु होना चाहिए। यथा लक्ष्मण प्रश्न—*"ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु"* और *"सब तजि करौं चरण रज सेवा"* उत्तर में श्रीराम जी कह रहे हैं *"माया ब्रह्म न आपु कहँ, जानि कहे सो जीव"*। माया, ब्रह्म को न जानकर अपने ही *"अहं ब्रह्मास्मि"* वही जीव है, *"जीव धर्म अहमिति अभिमाना"* यह समझाते हुए अंत में तो यही कहते हैं, *"प्रथमहिं विप्रचरण अति प्रीती"* और *"निज निज धर्म निरत श्रुति रीती"* अतएव *"वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः"* की सेवा करते हुए शास्त्र के आज्ञानुसार वर्णाश्रम के धर्म को पालन करते हुए, *"संत चरण पंकज अति प्रेमा"*। साधु संग करें, *"सत संगति मुद मंगल मूला"* एवं *"बिनु सत्संग न हरि कथा"* और *"तेहि बिनु मोह न भाग"* बिना साधुसंग के निर्पेक्ष मेरी कथा सुनने को नहीं मिलती, और तब तक मेरे बताए हुए मार्ग को जीव जान नहीं सकते, *"जाने बिनु न होइ परतीती"* पुनः *"बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती"* और *"प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढ़ाई"* इसलिए साधुसंग करना चाहिए, *"सतसंगति दुर्लभ संसारा"* अतएव साधुसंग से अपना कर्त्तव्य निश्चय हो जाता है, तत्पश्चात् *"तेहि कर फल पुनि विषय बिरागा। तब मम चरण उपज अनुरागा॥* क्योंकि *"काम क्रोध लोभादि रत, गृहासक्त दुःख रूप। ते किमि जानैं रघुपतिहिं, मूढ़ परे तम कूप"*। वे बिचारे दीन, मोहान्धकार गृह कूप में पड़े हुए कैसे मुझे जान सकते हैं। अतएव विषय से निवृत्ति होने से ही भगवान् में स्वाभाविक प्रेम होता है। *"जेहि जाने जग जाइ हेराई"*। भगवान् को जानने से ही भगवान् में प्रेम होता है और संसार की मोह ग्रन्थी छूटती है और सभी संसारी पदार्थ स्त्री पुत्रादि मिथ्या प्रतीति होने लगते हैं। अतएव *"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या"*॥

भैय्या बालकवृन्द ! मित्रगणों ! पिता का वीर्य, माता की रज *"विधि प्रपंच गुण अवगुण साना"* अर्थात् पिता का वीर्य (ब्रह्म) माता की रज (माया) दोनों को मिलाकर विधाता ने सृष्टि निर्माण की है। उसी में जीव कर्माधीन होकर *"फिरत सदा माया के प्रेरे"* भ्रमण करते हुए वास कर रहे हैं। इस प्रकार जीव पिता के वीर्य मिश्रित लिंग द्वारा माता की योनि मार्ग से गर्भस्थ बंधन होता है। नौ मास गर्भस्थान में रहकर इसका पूर्ण पिण्ड तैयार हो जाता है। पुनः योनि के ही मार्ग से पृथ्वी पर पतन होता है। इसका पूरा विवरण आप आगे पढ़ेंगे, अतएव *"ईश्वर अंश जीव अविनाशी"* भगवान् से ६६ सीढ़ी नीचे आया है, पुनः वही ६६ सीढ़ी ऊपर जाने से अपने स्वरूप को प्राप्त होता है। यथा—*"सरिता जल जलनिधि महँ जाई"* तैसे ही *"होइ अचल जिमि जिव हरिपाई"* ॥ परन्तु वहाँ तक पहुँचने की ६६ सीढ़ियों को दो भागों में विभक्त किया है।

प्रथम प्रवृत्ति की ३८ सीढ़ी, दूसरी निवृत्ति की २८ सीढ़ी हैं। प्रवृत्ति मे ३८ सीढ़ी इस प्रकार हैं। अर्थात् गृहस्थी में जो पञ्च देवता की उपासना होती है। *"सौर्य, शाक्त, गाणपत्य, शैव, वैष्णव"*।

सौर्य— अर्थात् सूर्य बारह कला युक्त हैं—यही बारह सीढ़ी हैं। सूर्य की उपासना से हृदय में प्रकाश होता है। तब दश इन्द्रियों और प्राण अपान यह बारह मार्गों से विषय विलासिता की सीमा-वार्ता में गति अवरुद्ध हो जाती है। यथा—*"पालेसि सब जग बारह बाटा"* जब जीव की विषय वासना सब तरफ से रुक जाती है तब यह निश्चय करता है कि—

एहँ आँक इहै मन माहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभुपाहीं ॥

अब प्रभात काल (ज्ञान) होते ही प्रभु की शरण जाऊँगा, यह एक

ही कर्त्तव्य है *"सर्व इन्द्रियाणि संरुद्ध्य"* जीव एकाग्र चित्त होकर एक मार्ग बनाता है। यही सूर्य की बारहों कला का प्रकाश १२ सीढ़ीं हैं।

शाक्त—शक्ति देवी की सात उपासना ७ सोपान हैं, शक्ति नाम है बुद्धि का *"सत असत् विवेकिनी बुद्धिः"* जो सत् असत् का निर्णय करके सत ज्ञान को दृढ करती है। *"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या"* एवं *"सत् हरि भजन जगत सब सपना"* अर्थात् *"राम नाम सत्य है"* तो बुद्धि सत् मार्ग एवं सत् वस्तु को ही ग्रहण करती है। तब जीव अपना यथार्थ कर्त्तव्य करता है। यही शक्ति उपासना सात सोपान है।

गाणपत्य—पुनः जीवगणेश की पञ्च उपासना करता है। गणेश का स्थान है मूलाधार, जहाँ अपान वायु है और प्राण वायु त्रिकूट में है प्राण से अपान तक जीव पञ्च स्थानों में विभक्त है। मूलाधार से ब्रह्मरंध्र पर्यन्त *"प्राणाऽपान वशोजीवह्यध्यश्चोर्ध्वंश्चधावति। वाम दक्षिण मार्गाभ्यां चञ्चलत्वाच दृश्यते॥ रज्जु बद्धो यथा स्येनो गतोप्या कृष्यते पुनः। गुणबद्धस्तथा जीवः प्राणाऽपानेन कर्षति॥ उर्ध्वोऽधस्संस्थितावेतौ यो जानाति स योगवित्"॥* प्राण की इस प्रकार अधः उर्ध की गति का ज्ञान गणेश के द्वारा होता है। इन पञ्च प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान को पाँच भागों में इस प्रकार विभक्त किया है। मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध, महाबन्ध और जालन्धर बन्ध, यह चार बन्ध हैं। इन चारों बन्धो को भेदकर अपानवायु प्राण के साथ पाँचों संयोग करके प्राणी *"प्राणायामपरायणाः"* आत्मा परमात्मा को एकत्रित करता है। *"तत्समंचद्वयोरैक्यं जीवात्मा परमात्मनोः"* इस प्रकार जब जीव पञ्च प्राण, पञ्च मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च तत्त्व, यह

पाँचों पञ्चीकरण एक योग करता है। तब आत्मा परमात्मा दोनों का योग होता है। यह गाणपत्य नामक पाँच सीढ़ी हैं।

शैव—शैव १० सोपान अर्थात् दश रुद्र हैं। इस दश प्रकार शिव की उपासना से जीव दश इन्द्रियों को निग्रह करता है। तब एकाग्र चित्त से भगवान् का भजन दृढ़ सेवा करके विज्ञान को प्राप्त होता है। जिसको नौ अङ्गों से युक्त नौधा भक्ति भी कहते हैं। जिसकी पूर्वार्द्ध साधना भक्ति कही गई है, जिसके शिक्षक शिव हैं। इस प्रकार जब जीव नौधा भक्ति विज्ञान रूपा सेवा की योग्यता प्राप्त करता है, तब *"भक्ति मोरि तेहि शंकर देही"* परन्तु *"शंकर भजन बिना नर, भक्ति न पावै मोरि"* अर्थात् *"शिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भक्ति रामपद होई"* ॥ इस प्रकार जीव भगवान् की सेवा का अधिकारी होता है। परन्तु इस सेवा के प्रेरक एवं शिक्षक शिव हैं, यथा— *"मुनि पूँछी हरि भक्ति सुहाई। कही शंभु अधिकारी पाई"* ॥ एवं *"ब्रह्म ज्ञान रत मुनि विज्ञानी। मोहि परम अधिकारी जानी"* ॥ अर्थात् *"तेहि निज भक्त राम कर जानी। ताते मैं सब कहा बखानी"* ॥ अर्थात् शंकर भगवान् जीव की योग्यता की परीक्षा करके भगवान् श्रीरामजी की सेवा देते हैं। यही शैव उपासना की १० सीढ़ी या सोपान हैं।

वैष्णव—विष्णु की चार सम्प्रदाय चार सीढ़ी हैं, जो सर्वोत्तम मुक्ति स्थान हैं। यथा—ओम् अ. उ. म. जिसकी प्रक्रिया इस प्रकार है। *"अकारार्थो विष्णुर्जगदुदय रक्षा प्रलय कृत्, मकारार्थो जीवस्तदुपकरणं वैष्णवमिदम् ॥ उकारोऽनन्यार्हं नियमयति सम्बन्धमनयोस्त्रयी सारस्त्रात्मा प्रणव इममर्थं समदिशत्"* ॥ इस प्रकार जीव, विष्णु का उपकरण, प्रतिनिधि, सदा सेवा

कॉंची सेवक, सर्व सेवा निपुण है। यथा—"*सेवक कर पद नयन सों, मुख सों साहिब होय*" अर्थात् एक ही शरीर में ईश्वरत्व भी है और सेवकत्व भी है। भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक ही वस्तु है। तैसे ही हाथ पग की तरह जीव, भगवान् का सदा उपकरण है सेवक है। इस प्रकार जीव विष्णु का उपकरण वैष्णव है। इसे ही वैष्णव कहते हैं। परन्तु यह सेवा वर्णाश्रम से ही प्रारम्भ होती है। ॐकार वर्णाश्रम का उपास्य मन्त्रराज है, वही ॐकार के अनुसार जीव वर्णाश्रम से ही भगवान् का सेवक है। किन्तु दैवयोग, अपराध के कारण यम यातनाधीन संसार सागर कारागार चौरासी लक्ष योनियों में पतन होकर अनादि काल से जीव, अनादि अविद्या में अज्ञानी होकर "*फिरत सदा माया के प्रेरे*" भगवान् कभी घुणाक्षर न्याय से. "*कबहुँकि करि करुणा नर देही*" देते हैं जो "*नर तनु भव बारिधि कहँ बेरो*" कहा गया है। इस मनुष्य शरीर रूपी नौका में बैठे हुए जीव के "*सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो*" भगवान् ने अपना अनुग्रह रूपी भक्ति मार्ग बताया है, वही जीव के कल्याण का मार्ग है। वह भक्ति प्राप्त करने को वर्णाश्रम से ही ३८ सीढ़ी बनाए हैं। अर्थात् जब तक जीव को "*सर्व खल्विदं ब्रह्म*" प्रतीत न हो, तब तक वर्णाश्रम में ही रहकर "*प्रथमहि विप्र चरण अति प्रीती*" अर्थात् "*प्रवृत्तिश्च महापुण्याः*" ब्राह्मण गुरुजनों की सेवा "*पुण्य एक जग में नहि दूजा। मन क्रम वचन विप्र पद पूजा*"॥ सबसे बड़ा पुण्य सांसारिक प्राणियों के लिए ब्राह्मणों के चरणों की पूजा बताई गई है। जीवों को "*वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः*" की सेवा पूजा करके पुण्य संग्रह करना चाहिए और उनके वाक्यों में विश्वास रखना चाहिए "*गुरौ वेदान्तवाक्येषु विश्वास इति श्रद्धा*" इसी को श्रद्धा कहते हैं, इसीलिए कहा गया है।

बन्दौं प्रथम महीसुर चरणा। मोह जनित संशय सब हरणा॥

ब्राह्मणों, गुरुजनों के उपदेश आशीर्वाद से मोह द्वारा उत्पन्न हुआ सन्देह नष्ट हो जाता है। ऐसे ब्राह्मणों, गुरुजनों के चरणों की वन्दना पूजन करके उनके उपदेश द्वारा अपने भ्रम को निवारण करते हुए उनके कहने के अनुसार संयम-नियम का पालन पूर्वक *"निज-निज धर्म निरत श्रुति रीती"* ही बताए हुए वर्णाश्रम के ३८ सोपानों को क्रमशः उत्तीर्ण करते हुए ॐकार के अनुसार *"मंत्रराज नित जपहि तुम्हारा। पूजहि तुमहि सहित परिवारा"*॥ ॐकार महामंत्र ब्रह्म गायत्री जाप करते हुए, शालग्राम, राम-कृष्णादि की पूजा करते हुए इस महापुण्य के प्रभाव से जीव सांसारिक मोह बन्धन से मुक्त हो जाता है। यह वर्णाश्रम के ३८ सोपान या सीढ़ी हैं। अब आगे निवृत्ति के २८ सोपान कहे जायेंगे।

भैय्या बालकवृन्द! तथा सज्जनवृन्द! अब *"प्रवृत्तिश्च महापुण्याः"* का फल स्वरूप *"तेहि कर फल पुनि विषय विरागा"* अतएव *"निवृत्तिश्च महाफलाः"* को जीव प्राप्त होता है। निवृत्ति का महामंत्र है *"रॉं, र, अ, म,* इस महा-तारक मंत्रराज की प्रक्रिया है *"रकारार्थो रामः सगुण परमैश्वर्य जलधिः। मकारार्थो जीवः सकल विधि कैंकर्य निपुणः॥ तयोर्मध्याकारो युगलमथ संबन्ध-मनयोरनन्यार्हं ब्रूते त्रिनिगम स्वरूपोयमतुलः॥* अर्थात् र, स्वरूप सकार ब्रह्म श्रीरामजी हैं। म, स्वरूप, सर्व सेवा निपुण जीव है। अकार, स्वरूपी माया, भक्ति रूप से दोनों को एकत्र संबन्ध करती है। इसी प्रकार ॐकार भी, प्रथम कहा है। रॉं, और ॐ, एक वस्तु है। ॐ कार्यरूपी वर्णाश्रम सामान्य धर्म का विशेषण है और रॉं, विरक्ताश्रम धर्म का विशेष्य विशेषण है। ॐ वर्णाश्रम का उपास्य मंत्र है और रॉं विरक्ताश्रम का उपास्य मंत्र

है। ॐ सामान्य धर्म है। रॉं विशेष धर्म है। परन्तु जीव सामान्य और विशेष दोनों धर्मों में भगवान् का सेवक है। प्रथम वर्णाश्रम सामान्य धर्म को पालन करते हुए, विरक्ताश्रम विशेष धर्म में गति करता है।

अब यहाँ *"पञ्चस्थाने गुरुर्विप्रो दीक्षा शिक्षा च वैष्णवाः"* अर्थात् प्रवृत्ति वर्णाश्रम पञ्चदेवता की उपासना में ब्राह्मण गुरु होता है। अब *"निवृतिश्चमहाफलाः"* में विरक्त वैष्णव गुरु होता है। जिसको *"बोध यथारथ वेद पुराणा"* अतएव *"राम चरण जाकर मन राता"* एवं *"सब तजि राम चरण मन लावा"* यथार्थ में *"श्रुति सिद्धान्त नीक तेइ जाना"* वह परम वैष्णव गुरु होता है, जिनके आदेशानुसार *"गुरुरुपदिष्ट मार्गेण"* निवृत्ति के २८ सोपान *"षट्दम शील विरति बहु कर्मा"* अब जीव के बहु कर्मों की *"दीक्षा शिक्षा च वैष्णवाः"* शिक्षक और परीक्षक परम वैष्णवों में चार परमाचार्य हैं। इन परमा चार्यों में श्री चरण सेवा, वर्णाश्रम से ही प्रथम बालकाल से माता पिता सेवा, प्रौढ़ काल में विद्याध्ययन एवं गुरुजनों की सेवा, पुनः देश सेवा, तीर्थादि, देव देवी की सेवा, दर्शन इत्यादि पुण्य समूह की प्राप्ति–*"पुण्य पुंज बिनु मिलहि न संता"* परम वैष्णवाचार्य मिलते हैं। फिर तो *"सतसंगति संसृति कर अन्ता"* संसार दुःख से निवृत्ति हो ही जाती है। तब संसार सागर से उसपार में पहुँचे हैं, संतों की प्राप्ति होना ही संसार का अंत है। प्रथम वर्णाश्रम के पुण्य फल से ही जीव संसार से वैराग्य प्राप्त करता है और तभी मोह अंधकार अज्ञानता रूपी नींद से जाग उठता है।

जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा॥

और तभी यह जीव काम क्रोधादि सांसारिक रोगों से मुक्ति पाता है।

जानिय तब मन निरुज गोसाईं। जब उर बल विराग अधिकाई॥

पुनः जीव संसार में संग्रह किए हुए नाना शुभ कर्म धर्म आचार इत्यादि के बदले में सत्संग लाभ करता है। "*सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला*"॥ और "*मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि यतन जहाँ जेहि पाई॥ सो जानब सतसंग प्रभाऊ*"॥ संत संग ही से भक्ति मुक्ति सब कुछ मिलती है। अंत में "*सब कर फल हरि भक्ति सुहाई*"। जीवों के कल्याण के लिए भक्ति ही निवृत्ति का अन्तिम फल है। परन्तु यह भक्ति संतों को ही प्राप्त है और उन्हीं से जीवों को प्राप्त होती है। "*मिलें जो सन्त होहिं अनुकूला*" यही जीव का पुरुषार्थ है और सुख का हेतु है परन्तु "*सुख चाहत मूढ़ न धर्मरता*" जीव सुख की, कामना तो करता है, परन्तु अज्ञानता वश अपने धर्म का पालन नहीं करता अर्थात् वर्णाश्रमानुकूल धर्माचरण करने से संसार दुःख की निवृत्ति होती है। पुनः विरक्ताश्रम का "*सर्वे धर्मान्परित्यज्य*" करके अर्थात् वर्णाश्रम के शुभाचरण वा धर्माचरण के फल स्वरूप निवृत्ति होती है। पुनः निवृत्ति आश्रम में "*विरति बहु कर्मा*" नाना प्रकार शुभाचरण करते हुए निवृत्ति का धर्म पालन होता है।

अब निवृत्ति का फल स्वरूप जो भक्ति है। उसकी प्राप्ति करने के लिए जो वैराग्य, ज्ञान, योग, विज्ञान एवं बड़े-बड़े चार आश्रम बताये जाते हैं जिसमें २८ सीढ़ी बनी हैं। अतएव २८ सोपान कहे गए हैं। इन सोपानों से उत्तीर्ण होने के लिए जो ऊपर कहे हुए चार परम संत परमाचार्य बताए गए हैं उनकी दीक्षा और शिक्षा के अनुसार निवृत्ति के नाना कर्मों को करना जीव का कर्त्तव्य है। हमारे इन कर्मों के शिक्षक यही परमाचार्य हैं जो सदा आप्तकाम आत्माराम हैं। और जो चार संप्रदाय युक्त परमाचार्य

वा आद्याचार्य साक्षात् ईश्वर स्वरूप ही कहे जाते हैं। यथा—श्री संप्रदाय—अर्थात् श्री लक्ष्मी जिसकी आचार्या हैं। श्री विष्णु संप्रदाय—अर्थात् विष्णु जिसके आचार्य हैं। श्री ब्रह्म संप्रदाय—ब्रह्मा जिसके आचार्य हैं। श्री रुद्र संप्रदाय—शंकर जिसके आचार्य हैं। यही चार परमाचार्य, परात्परा-चार्य, अर्थात् आद्याचार्य हैं। जिनको *"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देव महेश्वरः"* संबोधन होता है जो *"कृपासिंधु नर रूप हरि, ही गुरु साक्षात् परब्रह्म"* कहे जाते हैं जो जीव को भक्ति मुक्ति देने के लिए मर्त्यलोक में मनुष्य *"माया मनुष्यो हरिः"* शरीर धारण करके हम सब जीवों का उद्धार कर रहे हैं। और चतुः संप्रदाय रूपसे भगवान् के साकेत, वैकुण्ठ, गोलोक, के चतुः द्वार पर विराजमान् हैं। और जीव के कल्याण के पूर्ण अधिकारी हैं एवं जीव की गति मति सेवा के पूर्ण शिक्षक एवं परीक्षक हैं। इनके बिना परीक्षा पत्र के जीव भगवान् की सेवा के लिए साकेतादि लोकों में अन्दर प्रवेश नहीं कर सकते।

भगवान् के परम धामादि लोकों के चतुः द्वार पर चार परमाचार्य चार सम्प्रदाय रूप से परमाद्याचार्य विराजमान् हैं। बिना इनकी अनुमति (परीक्षा पत्र) के जीव अन्दर प्रवेश ही नहीं कर सकते। जीव गुरु की ही कृपा से भगवान् के सन्निकट रहने योग्य, सेवा, श्रद्धा, तपस्या और भक्ति प्राप्ति करते हैं। यही परात्पर परमात्मा स्वयं गुरु हैं। जिनके लिए कहा जाता है। *"लक्ष्मीनाथ समारम्भाम्"* अथवा *"सीतानाथ समारम्भाम्*, एवं *"राधानाथ समा-रम्भाम्"* इत्यादि से गुरुत्व प्रारंभ होकर क्रमशः *"अस्मदाचार्य पर्यंताम्"* आज अपने गुरु तक गुरुत्व चला आ रहा है। *"शिष्योपशिष्य"* यथा—*"गुरुणांच गुरुश्चैव पितृणांच पितामहः।* अथवा *"वन्दे रामं जगद् गुरुम्, वन्दे कृष्णं जगद्*

गुरुम्" इत्यादि जिनके परत्व, अलभ्यता को शास्त्र कह रहे हैं। "*अनेक जन्म संस्कारात् सद्गुरुः सेव्यते बुधैः*" और "*संतुष्टः स गुरुर्देव आत्मरूपं प्रदर्शयेत् ॥*" बहु जन्मान्तरों के पुण्य संग्रह करते-करते, प्रवृत्ति से लेकर निवृत्ति पर्यन्त अर्थात् वर्णाश्रम से ही माता-पिता, गुरुजनों की सेवा, देश देशान्तर में प्राणी मात्र की सेवा, तीर्थादि में अनेक देव-देवी की सेवा इत्यादि पुण्यों के फल स्वरूप "*गुरु साक्षात हरिः स्वयम्*" गुरु की प्राप्ति होती है, और गुरु को ही परम प्रभु जानकर—

तुमते अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाँति सेवहिं सनमानी ॥

गुरु सेवा करके जब गुरु हमारी सेवा से प्रसन्न हो जायेंगे। तब आत्मा को परात्पर परमात्मा का साक्षात् दर्शन करा देंगे। यथा—

"*अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः*" ॥ पुनः "*अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः*" ऐसे परमदयालु जो श्री गुरुदेव, उनको बारम्बार नमस्कार है। जो "*सर्व तीर्थाश्रयश्चैव सर्व देव समाश्रयः। सर्व देव स्वरूपी च गुरु साक्षात् हरिः स्वयम्*"। गुरु साक्षात् परात्पर परमात्मा परब्रह्म स्वयं राम ही जीव के कल्याण करने को शिष्योपशिष्य "*अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्*" इह लोक में अवतीर्ण होते हैं। बिना गुरु कृपा "*दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभस्तत्व दर्शनः। दुर्लभः सहजावस्था सद्गुरोः करुणा विना*" ॥ जीव के लिए विषयों का त्याग, आत्म परमात्म तत्त्व का बोध अथवा सहजावस्था अर्थात्—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी ॥

मैं ईश्वर का ही अंश (पुत्रवत्) "*आत्मा वै जायते पुत्रः*" सदा सेवक हूँ।

स्वभाव से ही सुख स्वरूप हूँ, नाश रहित, निर्मल, ज्ञान स्वरूप हूँ इत्यादि का ज्ञान होना दुर्लभ है। "*गुरु बिनु होहि कि ज्ञान*" भगवान स्वयं कह रहे हैं।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत् कर्हिचित्।
न मर्त्य बुद्धयाऽसूयेत्, सर्व देव मयो गुरुः॥

मैं ही साक्षात् गुरु हूँ, मेरे में कभी अन्य बुद्धि या मनुष्य बुद्धि नहीं करनी चाहिए। मैं सर्व देवाधिदेव, एवं सर्व प्राणियों का गुरु हूँ।

कुरुते नर बुद्धिश्च मन्त्र दाता गुरुंप्रति। अयशस्तस्य सर्वत्र विघ्नश्च पदेपदे॥

जे अज्ञानी अबोध प्राणी, मंत्र दाता, मुक्ति भक्ति दाता, गुरु के प्रति मनुष्य बुद्धि रखते हैं अर्थात् गुरु भी तो एक मनुष्य ही हैं, ऐसा कहते हैं तो उनकी सर्वत्र अपकीर्ति एवं सर्व कार्यों में विघ्न होता है।

गुरु के बचन प्रतीति न जेही। स्वपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥

अर्थात् गुरु के वचनों में जिनका विश्वास नहीं है। उनको स्वप्न में भी सुख वा किसी कार्य की सिद्धि सुगम नहीं होती अर्थात् किसी कार्य में सफलता नहीं होती है। यथा—

स्व कंठेऽपि स्थितं वस्तुं यथा न प्राप्यते भ्रमात्।
भ्रमान्ते प्राप्यते तद्वद्वारमापि गुरुवाक्यतः॥

जैसे अपने गले में वस्तु होते हुए भी बुद्धि भ्रम के कारण अप्राप्ति ही रहती है। और बुद्धि का भ्रम निवृत्त हो जाने से मिल जाती है। वैसे ही "*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी*" अपने हृदय में ही परात्पर परमात्मा होने से भी, बुद्धि मोह भ्रान्ति के कारण—

विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिनु दीप को बार बहोरी॥

अज्ञान अन्धकार में अपने आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं कर सकता, परन्तु गुरु के उपदेश द्वारा *"जासु बचन रवि कर निकर"* मोह अज्ञान बुद्धि का भ्रम निवृत्त होने से आत्म तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। अतएव गुरु ही इस भूले हुए जीव के शिक्षक एवं परीक्षक हैं। गुरु की ही कृपा से जीव भगवान् की सेवा श्रद्धा तपस्या और भक्ति प्राप्ति करता है और उन्हीं की कृपा से परीक्षा में उत्तीर्ण होता है, पुनः अपना सेवा अधिकार प्राप्त कर सकता है। उन्हीं की कृपा से और आज्ञा के अनुसार प्राणी सोपान क्रमशः एक से अट्ठाइस तक उत्तीर्ण हो जाता है। गुरु की ही कृपा से जीव वैराग्य ज्ञान योग साधन भक्ति में गति करता है और तभी *"यह जीव कृतारथ होई"* वा *"जीव पाव निज सहज स्वरूपा"*॥

अब निवृत्ति के कहे हुए २८ सोपानों को चार भागों में विभक्त करके कहा जा रहा है। जिसमें बड़े-बड़े चार सोपान है, पुनः २८ सोपानों में विभक्त हैं। यथा—

भक्ति ज्ञान विज्ञान विरागा। योग चरित्र रहस्य विभागा॥

अर्थात् भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, परन्तु विज्ञान और भक्ति प्रायः एक सी वस्तु हैं जिनका वर्णन आगे किया जायगा। सर्व प्रथम वैराग्य चार—

वैराग्य—वैराग्य के चार सोपान इस प्रकार हैं।

(१) नाम वैराग्य—नाम वैराग्य उसे कहते हैं। जीव जब स्त्री पुत्र गृह त्यागकर सन्यास आश्रम को चलता है वो घर से निकलकर वानप्रस्थ

होने से जब तक गुरु के द्वारा मंत्रादि ब्रह्म तत्त्व की प्राप्ति नहीं होती है तब तक नाम वैराग्य कहा जाता है। यह प्रथम सोपान है।

(२) कर्म वैराग्य—कर्म वैराग्य उसे कहते हैं। जीव जब गुरु के द्वारा मंत्रादि ब्रह्म तत्त्व की प्राप्ति करके गुरु के आदेशानुसार मंत्र जपादि होम तर्पण पूजा आदि कर्मनिष्ट होता है। इसीको कर्म वैराग्य कहते हैं। यह दूसरा सोपान है।

(३) ज्ञान वैराग्य—ज्ञान वैराग्य उसे कहते हैं। जीव जब मंत्र जपादि कर्मों के द्वारा अपना अंतःकरण निर्मल कर लेता है और हृदय का मोहान्धकार नाश होकर अपने आत्मतत्त्व को जानकर अपने किए हुए पूर्व दुष्कर्मों का विचार कर पश्चात्ताप करते हुए प्रभु से क्षमा, कृपा की याचना करता है। और प्रार्थना करता है कि हे प्रभो !

न धर्म निष्ठोऽस्मि न चात्मवेदि न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनो नान्यगतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

इसी को ज्ञान वैराग्य कहते हैं। यह तीसरा सोपान है।

(४) त्याग वैराग्य—त्याग वैराग्य उसे कहते हैं, जीव जब अपने आत्मतत्त्व का निश्चय करके आत्मा में ही आप्त काम, *"सर्वारम्भ परित्यागी न शोचति न कांक्षति"* और अपने मन में मंत्रार्थ करते हुए, *"रामाय"* अर्थात् *"रा, मा, य,*

रामभद्र ! दयासिन्धो ! दयानिधे ! दीनबन्धो !
पापपङ्के निमग्नोस्मि त्राहि मां रघुनन्दन !।

माता पिता गुरुः स्वामी सखा बन्धुस्त्वमेव मे,
रक्षकाकाभयादायिन्! त्राहि मां रघुपुङ्गव!॥
यत्र कुत्रापि यास्यामि देवतिर्यङ् नरेषुच,
तत्र मामचलां भक्तिं देहि मे भरताग्रज!।

इत्यादि मनन करते हुए इन्द्रिय व्यवहार से पृथक्, अपनी आत्मा में ही परमानन्द सुख अनुभव करते हुए *"विकारी परिणामी च देह आत्मा कथं यद"* शरीर से आत्मा पृथक्, निश्चय करके शरीरासक्ति से निवृत्त हो जाता है और *"फिरत सनेह मगन मन अपने"* संसार में स्वेच्छाचारी होकर विचरता है। *"महा घोर संसार रिपु जीति सके सो बीर"* ये परम पुरुषार्थी संसार के काम क्रोधादि को पराजय करके काल से भी निर्भय हो जाते हैं। *"काली सन्मुख गए न खाई"* और *"सुर नर मुनि कोउ नाहि, जेहि न मोह माया प्रबल"* एवं *"मम माया दुरत्यया"* को भी पराजय किये हुए हैं। ऐसे परम पुरुषार्थ को त्याग वैराग्य कहते हैं। इस प्रकार न्यूनाधिक वैराग्य की चार श्रेणी हैं। यथा—

नाम वैराग्य दश विप्राणां कर्म वैराग्य शतानिच।
ज्ञान वैराग्य प्रभो देही, त्याग वैराग्य प्रभो दुर्लभः॥

नाम वैराग्य, कर्म वैराग्य, ज्ञान वैराग्य, त्याग वैराग्य, यह चार प्रकार का वैराग्य, चार सोपान हैं। इसमें से नाम ही वैराग्य हो, तब भी ब्राह्मण से दश गुणा अधिक है। कर्म वैराग्य होने से सौ सौ गुणा अधिक है और ज्ञान वैराग्य होवे तो साक्षात् भगवान् का ही स्वरूप बन जाता है।

और त्याग वैराग्य तो भगवान से भी अधिक है। इस प्रकार वैराग्य चार सोपान है।

(२) ज्ञान के सप्त सोपान—ज्ञान के सप्त सोपान इस प्रकार हैं। यथा—"*शुभेक्षा, विचारणा, तनुमानसा, तत्त्वोत्पत्ति, असंशक्ति, पदार्थाविभावनी, तुर्यगा*"। अब इन्हें भिन्न-भिन्न कहा जा रहा है।

(१) शुभेच्छा—शुभेच्छा इसे कहते हैं कि अशुभ कर्मों का त्याग, शुभ कर्मों का ग्रहण अर्थात् चोरी, जारी, मिथ्या इत्यादि अशुभ कर्म हैं इनका त्याग करके, माता-पिता सेवा, गुरुजनों की आज्ञा पालन, प्राणी मात्र का हितैषी "*सब के प्रिय सब के हितकारी*" सज्जनों का संग, तीर्थादि भ्रमण "*चरण राम तीरथ चलि जाहीं*" संतजनों की सेवा इत्यादि शुभ कर्म हैं अशुभ कर्मों को त्याग कर शुभ कर्मों के करने से अपना अंतःकरण निर्मल हो जाता है। अंतःकरण निर्मल होने से शास्त्र-पुराणों के विचार करने की शक्ति होती है। इसी को शुभेच्छा कहते हैं। यह ज्ञान का प्रथम सोपान है।

(२) विचारणा—विचारणा इसे कहते हैं। शास्त्र-पुराण "*विधि निषेध मय*" अतएव "*विधि प्रपंच गुण अवगुण साना*" और "*गणिगुण दोष भेद बिलगाए*"। वह गुण, अवगुण, विधि निषेध, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य, पाप, पुण्य, बद्ध मुक्त, प्रवृत्ति निवृत्ति, साधु असाधु, इत्यादि भिन्न-भिन्न विचार करें या विचार होना। इसे विचारणा कहते हैं। इस विचार शक्ति से अपने कर्त्तव्य का निश्चय करता है। परन्तु मार्ग दो दृश्य होते हैं और दोनों अपनी-अपनी पुष्टि करते हैं। शास्त्र पुराण में दोनों मार्ग समान बताये

जाते हैं। कहा जाता है कि माता-पिता कुटुम्ब परिवार की सेवा करना ही धर्म है।

मातु पिता अरु गुरु की बानी। बिनहिं बिचार करिय भल जानी॥
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके॥

दो०—मातु पिता गुरु स्वामि शिख, शिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जन्म कर, नतरु जन्म जग जाय॥

इत्यादि कहा गया है कि माता-पिता कुटुम्ब बन्धु यही सब तुम्हारे हितैषी हैं, इनकी सेवा करने से ही तुम्हारा जीवन कृतार्थ होगा। 'तुम्हें मुक्ति भक्ति मिलेगी, यही शास्त्र सम्मत है और अन्यत्र यही शास्त्रों में कहा जारहा है—

तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥
राम प्राण प्रिय जीवन जीके। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

दो०—प्राण प्राण के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम तजि तात सोहात गृह, जिनहिं तिनहिं विधि बाम॥

इत्यादि कहा गया है कि प्राणी मात्र के माता-पिता भगवान् श्रीराम जी हैं। सब कुटुम्ब परिवार स्त्री पुत्रादि माता पिता सब को त्याग कर भगवान की सेवा करना चाहिए।

अब विचार करने से दो मार्ग बन जाते हैं। प्रथम तो माता-पिता कुटुम्ब बन्धुओं की सेवा करना, दूसरा यह भी कहा है कि—"*मातु पिता*

स्वारथ रत ओऊ"। माता-पिता बन्धु सभी स्वार्थी हैं इन सबकी सेवा त्याग कर भगवान की सेवा करना चाहिए। भगवान् श्रीरामजी "*स्वारथ रहित सखा सबही के*" सबके प्रिय हितैषी, स्वारथ रहित एक भगवान् हैं। उन्हीं की सेवा करना चाहिए "*कस्य माता पिता कस्य कस्य भ्राता सहोदराः*"। इस प्रकार शास्त्र पुराणों सभी में द्विविधा होने के कारण विचार के शेष में "*किं कर्तव्य विमूढ़ात्मा*" हृदय में विचार शक्ति शून्य हो जाती है, मूढ़ की तरह क्या करूँ, क्या न करूँ, "*द्विविध मनोगति प्रजा दुःखारी*" प्राणी द्विविधा ग्रस्त होकर चिन्तित होता है। मानसिक व्यथा ग्लानि हो जाती है। तब असमर्थ होकर नाना भावना करता है विचार करता है कि क्या करना चाहिए, इसी का नाम है विचारणा, यह ज्ञान का दूसरा सोपान है।

(३) तनुमानसा,—तनुमानसा इसे कहते हैं। यथा—"*द्विचित कतहुँ परितोष न लहहीं॥ एकएक सन मर्म न कहहीं*"॥ मनकी मर्मभेदी व्यथा किसी को कही नहीं जाती, परन्तु मन में नाना प्रकार की संकल्प विकल्प, रूपी तरंगे उठने लगती हैं। इस प्रकार नाना चिन्तातुर होकर चित्त में अशान्ति छा जाती है।

भय उचाट वश मन थिर नाहीं। छण वन रुचि छण सदन सुहाहीं॥

इस प्रकार मन में उचाटन सा हो जाता है। स्थिरता नहीं आती, कभी तो "*सब तजि करौं चरण रज सेवा*" और कभी "*चार पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके*"॥ इस प्रकार कभी तो माता पिता की ही सेवा करना श्रेष्ठ धर्म है और कभी "*सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्*"। सांसारिक सम्बन्ध सब झूठा है। "*सब की ममता ताग बटोरी*"। गुरू पिता माता सर्वस्व

जानकर अपने अन्तरात्मा परमात्मा की ही सेवा करना सर्वोत्तम धर्म है। अब एकान्त वन में जाकर भगवान् का ही भजन करूँ। इस प्रकार मनमें द्विविधा होने से नाना प्रकार की भ्रान्ति होकर क्या क्या भावना होने लगती हैं। नाना प्रकार चिन्ता ग्रस्त हो जाता है। इसी का नाम है तनु-मानसा है, यह ज्ञान का तीसरा सोपान है।

(४) तत्त्वोत्पत्ति,—तत्त्वोत्पत्ति इसे कहते हैं।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी॥

यह जीव स्वभाव से ही ज्ञान स्वरूप, ईश्वर का ही एक अंश परात्पर सुख सच्चिदानन्द, परन्तु अनादि अविद्या लिप्त संसार विषय में जड़ीभूत होकर स्त्री पुत्रादि अनीश्वर पदार्थों में सदा सर्वदा सदाकार होने से "*हृदय अधनिश्च यहु विधि लागी*"। हृदय के विवेक नेत्रों पर मल जड़ीभूत मलीन होने के कारण "*नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा*"। आकाश में धूली छा जाने से जैसे आकाश अदृश्य हो जाता है, उसी प्रकार यह जीव का अपना ईश्वरीय रूप अदृश्य हो जाता है और अपना स्वरूप भूल कर अपनी नाना नामों से ख्याति करता है कि—मैं सांसारिक एक जीव हूँ अमुक देशीय, अमुक जातीय, अमुक व्यवसायी, अमुक नाम गोत्र वाला हूँ, ऐसा अहमत्व मन में धारण कर लेता है। यथा—

दृष्टान्त—एक गड़ेरिया था वह अपनी बकरी भेड़ों को रोज जंगलों में चराया करता था। जंगल के माँसाहारी बाघ भेड़िया आदि जन्तुओं से रक्षा के लिए दो चार कुत्तों को पोषकर रक्खा था वे कुत्ते भी छेरी भेड़ों के साथ ही रहा करते थे। एक दिन अकस्मात् एक व्याघ्र का बच्चा अबोधशिशु वन से कैसे आकर छेरी भेड़ों के साथ रह गया।

गड़ेरिया ने देखा यदि यह हमारी पोष मानकर, हमारी छेरी भेड़ों में रह जाय तो कुत्तों के साथ यह भी बकरियों की रक्षा करता रहेगा। ऐसा समझ कर व्याघ्र के बच्चे को भी कुत्तों के साथ खिलाना पिलाना और रोज की तरह भेड़ों के साथ बन में चराने को ले जाने लगा। ऐसे बहुत दिन हो गये। दैव संयोग से एक दिन एक व्याघ्र जंगल से निकल पड़ा और भेड़ों पर शिकार के लिए टूट पड़ा। व्याघ्र को आता देखकर सब छेरी भेड़ी और कुत्ते भी भगे। तो पोषा हुआ यह व्याघ्र का बच्चा भी भगा व्याघ्र के बच्चे को भी भागता हुआ देखकर वह आता हुआ शिकारी व्याघ्र बोलता है कि हे व्याघ्र भाई तूँ क्यों भागता है, तो वह व्याघ्र का बच्चा बोलता है कि मैं तो व्याघ्र नहीं हूँ, मैं तो बकरी हूँ, तूँ मुझे खा लेगा, तो शिकारी बाघ बोलता है। भैय्या तुमतो बकरी नहीं हो, बाघ हो, तुम अपने को बकरी कैसे कह रहे हो। बाघ शिशु बोला नहीं, नहीं मैं तो बकरी हूँ। बाघ बोला भाई तुम तो भूले हो, अपना मुख तो देखो, और हमारा मुख देखो हम तुम दोनों बाघ हैं आखिर बाघ शिशु कहीं जल में अपना मुख देखा तो बोला हाँ भाई हमारा तुम्हारा रूप-रंग तो एक ही सा दीखता है क्या हम भी सच्चे बाघ ही हैं। बाघ बोला हाँ-हाँ भाई तूँ भी बाघ ही है, तुम भी बकरी भेड़ों का शिकार किया करो। आखिर बाघ शिशु एक गर्जन किया और उसकी गर्जन को सुन कर गड़ेरिया तो डरकर भागा। जो रोज छेरी भेड़ों के साथ बाघ के बच्चे को लाठियों से मारता था और बाघ का बच्चा, जो छेरियों के साथ मार खाते हुए अपने को भेड़ी समझ रक्खा था वह शिकारी बाघ बन कर बन में चल गया और स्वाधीन हो गया।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रगणों ! देखो जो सिंह व्याघ्र होते हुए भी नीच संगत में पड़कर रोज छेरी भेड़ी की तरह गड़ेरिया के द्वारा कितनी ताड़ना भोगता था, आज भगवान् उसके ऊपर कृपा करके बाघ होकर गुरु रूप से मिले और उपदेश देकर संसार दुःख से मुक्त कर दिया।

भाइयों, इसी प्रकार यह जीव "ईश्वर अंश जीव अविनाशी" होनेपर भी विषयासक्त, पशुवत् संसार यातना में पड़े हुए, मोहासक्त बद्ध प्राणियों की संगत में पड़ जाने से यह बाघ के शिशु की तरह अपने को सांसारिक विषयासक्त अमुक देश, अमुक जाति, अमुक नाम कह रहा है अपनी दैवीशक्ति को सम्यक प्रकार से भूल गया है। "*यादृशी भावना यस्य*" होकर जीव अपने को सिंह के बदले बकरी समझ लिया है। अर्थात् मैं ईश्वर अंश नहीं हूँ, मैं सांसारिक प्राणी हूँ स्त्री पुत्रादिकों की मोह ममता माया में बँधे रहना ही मेरा कर्त्तव्य है।

भैय्या बालक वृन्द ! इस प्रकार यह जीव अनादि काल से अविद्या में भूला हुआ अपने ईश्वरीय तत्त्व को पुनः संपादन करने के लिए, यह बाघ शिशु के न्याय से "*गुरुः साक्षात् हरिः स्वयम्*" हमारे लिए "*कृपासिन्धु नर रूप हरि*" नर रूप होकर गुरु रूप से प्राप्त होते हैं और यह बाघ के शिशु की तरह हम सब प्राणियों को उपदेश देकर जीवों की नारकी बुद्धि दूर करके विषयासक्ति से मुक्त करके ईश्वरीय शक्ति, एवं ब्रह्मतत्त्व का संपादन करते हैं, जो "*ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति*" ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। यथा—"*बाल्मीक भै ब्रह्म समाना*" गुरु के उपदेश से ही तो बाल्मीक ब्रह्म समान हुए।

भैय्या बालक वृन्द ! दूसरा दृष्टान्त लीजिए, जैसे काष्ट में अग्नि स्वरूप होने से भी, किस दैव योग से वह काष्ट हो गया है। और घरों

में नाना प्रकार कड़ी, वर्गा, खम्भा, मकेरी, चौकठ, कपाट, इत्यादि बनकर अनादिकाल से अनन्तकाल पर्यन्त घोर बंधन में पड़कर हजारों मनका बोझा छत्तादि अपने शिर पर वहन कर रहा है और अग्नि चिह्न भी उसमें नहीं दीखता है। और अपनी जड़ता के कारण, न किसी प्रकार से अपने अग्नि तत्त्व को ही प्राप्त करने को समर्थ है। वह जड़ काष्ठ हो गया है। यदि पूर्व दृष्टान्त के अनुसार वाघ शिशु के न्याय, गुरु रूप होकर भगवान् स्वयं किसी रूपसे किसी के द्वारा किसी कारण से उस काष्ठ में अग्नि का संयोग कर देता है। तो साथ ही वह काष्ठ जलकर अपने अग्नि तत्त्व को धारण करके तेजोमय हो जाता है और थोड़े ही काल में अपनी जड़ता रूपी काष्ठ गुण को भस्म रूप से त्याग कर अपने को अग्नि रूप में सदा के लिए लीन हो जाता है। काष्ठ अदृश्य हो जाता है।

भैय्या बालक वृन्द! इसी प्रकार यह जीव "*ईश्वर अंश जीव अविनाशी*" होते हुए भी अपना ईश्वरीय तत्त्व, ब्रह्म शक्ति को संपूर्ण भूल कर अपने को जीव मान लिया है। और काष्ठवत जड़, ज्ञान शून्य होकर ईश्वरीय शक्ति का चिह्न भी नहीं है। केवल "*जीव धर्म अहमिति अभिमाना*" मैं कर्त्ता हूँ, मैं ही भोक्ता हूँ, "*अहं ब्रह्मास्मि*" मैं ही ब्रह्म हूँ। मैं मेरा में ही रह गया है।

भैय्या बालक वृन्द! यह जीव के कल्याण के लिए भगवान् "*कृपा सिन्धु नर रूप हरि*" नर रूप धारण करके जीव को गुरु रूप से प्राप्त होते हैं और काष्ठ अग्नि संयोग की तरह हृदय अज्ञान अन्धकार में ब्रह्माग्नि मंत्र का प्रयोग करके जीव के हृदय में प्रकाश करते हैं। जैसे काष्ठ में अप्राकृत अग्नि तो है ही, परन्तु काष्ठता छा जाने से उसका प्रकाश और उष्णता

गुण नष्ट हो गया था, परन्तु प्राकृत अग्नि दियासलाई इत्यादि का संयोग हो जाने से और बारीक काष्ठ साथ में देकर थोड़ा पवन करने से शीघ्र ही काष्ठ अग्नि रूप धारण कर लेता है।

भैय्या बालक गण! ऐसे ही इस शरीर में अप्राकृत ब्रह्म "अस प्रभु हृदय अछत अविकारी" रहते हुए भी काष्ठवत् माया ममता मोह अज्ञानता छा जाने के कारण ईश्वरीय शक्ति लुप्त हो गई है।

भैय्या! गुरुदेव कृपा करके प्राणी के हृदय में अग्निवत् राम कृष्णादि मंत्र प्राकृत ब्रह्म का संयोग कराके, संयम, नियमादि बारीक काष्ठवत् संयुक्त मंत्र जपादि पवन रूप प्रवाहित करते हुए, हृदय के अज्ञानता जड़ता रूपी काष्ठ को जलाकर ब्रह्म रूपी अग्नि का विकाश कराकर, ईश्वरीय तत्त्व को उत्पन्न कराते हैं। "सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते" जैसे हीरा का मूल्य हीरा से ही पैदा होता है। ऐसे ही मंत्र ब्रह्म से ही अप्राकृत ब्रह्म ईश्वरीय शक्ति प्रत्यक्ष हो जाती है। "सन्तुष्टः स गुरुर्देव आत्म रूपं प्रदर्शयेत्"॥ गुरु प्रसन्न होकर आत्म तत्त्व ब्रह्म का साक्षात् करा देते हैं।

भैय्या बालक वृन्द! हम सबों की अज्ञानता के कारण नष्ट हुई ब्रह्म शक्ति, ईश्वरीय सत्ता, ईश्वरीय तत्त्व, गुरु के द्वारा पुनः संपादन होना इसी का नाम है तत्त्वोत्पत्ति, यह ज्ञान का चौथा सोपान है॥

(५) असंशक्ति—असंशक्ति इसे कहते हैं। जीव जब गुरु का कृपा पात्र होकर मंत्रादि ब्रह्मविद्या ब्रह्मशक्ति ईश्वरीय तत्व प्राप्त करता है। अज्ञानता की महाग्नि में जलते हुए, "रस रस शोष सरित सर पानी। ममता

त्याग करहि जिमि ज्ञानी" प्रकाश स्वरूप ज्ञान पाकर शनैः शनैः सांसारिक अनीश्वरीय पदार्थ स्त्री पुत्रादि की ममता संकोच होने लगता है और नाना प्रकार पट्रस खाद्य वस्त्र भूषणादि से अनाशक्ति होती जाती है। *"जिमि लोभहिं शोषै संतोषा"* मंत्र जपादि से क्रमशः मन में तृप्ति आने लगती है *"स्वाद तोष सम सुगति सुधाके"* अर्थात् *"तोषक तोषा"* परम संतोष प्राप्त करके *"केहि कै लोभ विडम्बना कीन्ह न यहि संसार"* अनीश्वरीय पदार्थों से लोभ नष्ट हो गया। चित्त की अशान्ति दूर हो गई। संसार की सारी आसक्ति दूर हो गई। सांसारिक सब पदार्थों में अश्रद्धा अनासक्ति होना, इसीका नाम असंशक्ति, यह ज्ञान का पाँचवा सोपान है॥

(६) पदार्थाविभावनी—पदार्थाविमात्रनी इसे कहते हैं। जब जीव सांसारिक सब पदार्थों से अश्रद्धा प्राप्त करता है और आप्तकाम आत्माराम, आत्मा में ही तृप्त हो जाता है। *"न शोचति न कांक्षति"* तब वह जीव सब प्रकार शान्ति लाभ करके स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्यादि विषय विलासिता अनीश्वरीय वस्तुओं की कुछ भी आवश्यकता नहीं करता। उसका जीवन सुखमय, धन्य-धन्य हो जाता है। तब जीव अपने आत्मा में ही सारे दैवी गुणों को देखने लगता है।

बढ़ेउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥

तब कहता है। अब मेरा जीवन भगवान् के दिव्य गुणों से परिपूर्ण हो गया है। पहले अज्ञानता वश मैंने अपने को स्वतन्त्र मान रक्खा था, और सर्वदा एक मन में अभिमान का समुद्र उमड़ा करता था। और हमारे सारे दैवी गुण उस अहंकार समुद्र में डूब गए थे। अब मुझे यह अनुभव होता है कि मैं परम कल्याणमय, परम सुहृद, अनन्त, अचिन्त्य,

सद्गुणनिधि, भगवान् का एक यन्त्र मात्र हूँ, मैं एवं मेरा अर्थात् संसार के सारे अनीश्वरीय पदार्थ, एवं मेरा देहाभिमान् अहंकार यह कुछ भी नहीं है। और मेरापना था मैं भी उन्हीं का हूँ। अब मुझे जहाँ घृणा थी वहाँ प्रेम होता है। जहाँ प्रतिवाद था वहाँ ही आनन्द होता है। जहाँ अपराध था, वहाँ क्षमा होती है। जहाँ अन्धकार था, वहाँ प्रकाश दीखता है। जहाँ विषयासक्ति थी वहाँ भगवान् में प्रेम होता है। अब हमारा मन भगवान् तथा भगवान् के दिव्य गुणों से परिपूर्ण हो गया है। अब हम को संसारी अनीश्वरीय पदार्थों की कुछ आवश्यकता नहीं है।

भैय्या बालक वृन्द ! संसारी अनीश्वरीय सारे पदार्थों से अनिच्छा हो जाना, जीव की यही अवस्था का नाम है पदार्थाभावनी, यह ज्ञान का छठवाँ सोपान है॥

(७) तुर्यगा—तुर्यगा इसे कहते हैं। जब जीव को आत्मा तथा परमात्मा का विशुद्ध ज्ञान हो जाता है, जैसे मंत्रार्थ *"रामाय"* में राम का हूँ *"जीवः सकल विधि कैंकर्य निपुणः"*। मैं *"ईश्वर अंश जीव अविनाशी"*। अविनाशी ब्रह्म का ही अंश जीव है। और वह ब्रह्म की सर्व सेवा में निपुण है। वे प्रभु मेरे सेव्य हैं मैं उनका सर्व प्रकार सेवक हूँ *"सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि"*। इस प्रकार ईश्वरीय निष्ठा, इष्ट में आस्तिकता, इष्ट में विश्वास, ईश्वर को प्राप्त करने की अति उत्कंठा, संसारी मोह ममता का त्याग, संसार से विमुख, (संसार से वैराग्य) भगवान् के सन्मुख, (भगवान में अनुराग) मैं किसी का पिता, पुत्र, पति, नहीं हूँ, किसी का भाई बन्धु कुटुम्ब कबीला नहीं हूँ, किसी बन्धन में नहीं हूँ, किसी मोह में नहीं हूँ, किसी पदार्थ में आसक्त नहीं हूँ, मैं सम्यक् प्रकार भगवान् का हूँ। वह प्रभु

भगवान् की प्राप्ति करना मुझे नितान्त आवश्यक है। मैं आत्मा और परमात्मा दोनों को एकत्रित होना अवश्य चाहिए, अब मुझे भगवान् के सम्बन्ध से सब जीवों के प्रति प्रेम, आत्मीयता से मेरा हृदय परिपूर्ण हो गया। भगवान् प्रेम स्वरूप है, अब मैं भगवान् का अनुभव कर रहा हूँ। यह जीव मात्र ही भगवान् का अंश है। नाम, रूप, गुण, प्रकृति, स्थिति इत्यादि ईश्वर का ही प्रभुत्व है। सब वस्तुओं से पृथक होने पर भी अन्तरात्मा चैतन्य रूप से आत्मा एक ही है। "*सर्वं खल्विदं ब्रह्म*" प्राणी मात्र सभी ईश्वर का ही है।

भगवान् विभु हैं और यह सारा संसार, उन्हीं की वैभव है। आत्मा अनेक हैं परमात्मा एक ही सब में व्याप्त है "*जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं*" इसलिए "*सिया राम मय सब जग जानी, करौं प्रणाम जोरि युग पानी*" अथवा "*सबहि मान प्रद आप अमानी*" ऐसा स्वभाव से सभी को सन्मान देना और अपने अमानी होना "*ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं*" विशुद्ध ज्ञान उसी को कहते हैं जहाँ किसी प्रकार मान अभिमान का चिह्न भी नहीं है। "*तृणादपि सुनीचेन*" और "*सबके प्रिय सबके हितकारी*" जो परमविद्या परमज्ञान श्री रामजी को विश्वामित्र दिये थे जिसका बला अतिबला नाम से वर्णन किया गया है "*जाते लाग न छुधा पिपासा*" और "*अतुलित बल तनु तेज प्रकाशा*" ॥ प्रथम बला अर्थात् बाहर बल छुधा पिपासा शर्दी गर्मी साँप बिच्छू, भूत पिचास डाकिनी इत्यादि शरीर रक्षण, और अतिबला अर्थात् अतुलनीय बल, तेज, पुरुषार्थ सामर्थ्य, परमात्मतत्व, परमात्मज्ञान, आत्मबल, आत्मज्ञान, अध्यात्म विद्या, अध्यात्मबल, अध्यात्मज्ञान इत्यादि ईश्वरीय तत्व को और जीव तत्व को यथार्थ जानना, यही पूर्ण ज्ञान है। बला विद्या से जीव तत्व का

ज्ञान होता है और अतिबला विद्या से परमात्मतत्त्व का ज्ञान होता है। परन्तु यह ज्ञान गुरु की कृपा साध्य है *"गुरु बिनु होहि कि ज्ञान"* इसी का नाम है विशुद्ध ज्ञान, इसी अवस्था का नाम है तुर्यगा, यह ज्ञान का सातवाँ सोपान है।

भैया बालक वृन्द ! मित्र गणों ! इस प्रकार ज्ञान के सातों सोपानों को क्रमशः जब जीव उत्तीर्ण हो जाता है। तब आत्मा के साथ परमात्मा को एकचित्त होने के लिए जिज्ञासु होता है। जो आगे अष्टाङ्ग योग नाम से वर्णन किया जायगा जो आठ सोपानों में विभक्त है।

३—अष्टाङ्गयोग—*"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः"*।

अष्टाङ्गयोग इस प्रकार से है। यथा—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधी, योऽष्टावङ्गानि योगयोः इसी को योग कहते हैं।

(१) यम—यम इसे कहते हैं। यथा *"अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः"* विशेषं तु *"अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः। दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमादशाः"*॥ अर्थात् किसी जीव की हिंसा न करना, दुःखदायी कटु वचन न कहना, झूठा न बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचारी होना, क्रोध न करना, अधीर न होना, स्वभाव दयावान् और सरल होना, बहुत भोजन न करना, पवित्र रहना, यही दश, यम या संयम कहे जाते हैं। संयम पालन करने से यह फल होता है। अहिंसा होने से कोई प्राणी हमसे हिंसा नहीं करता, सत्य से वाक्य सिद्धि होती है, चोरी न करने से सबका प्रिय हो जाता है, ब्रह्मचर्य से शक्ति बढ़ती है, ब्रह्मवेत्ता

होता है, अपरिग्रह होने से पूर्व की स्मृति होती है, त्रिकाल का ज्ञान होता है, इत्यादि फल प्राप्त होते हैं, इसी का नाम है यम, यह योग का प्रथम सोपान है।

(२) नियम—नियम इसे कहते हैं। यथा "शौच संतोष *स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः"*। विशेष—

तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम्।
सिद्धान्त वाक्य श्रवणं ह्रीमती च जपो हुतम्॥

अर्थात् तपस्या, संतोष, देवता में भाव, दान देना, इष्ट पूजा में निष्ठा, गुरु और वेद वाक्यों को श्रवण, लोक लज्जा से बचना, सुबुद्धि होना, मंत्रादिजप, होम करना, यही दश नियम कहे जाते हैं। इससे यह फल होता है कि शौच से साधन सिद्धि, सुबुद्धि से मन की शुद्धि, तप से मन की एकाग्रता, संतोष से इन्द्रिय निग्रह, स्वाध्याय से इष्ट का दर्शन, इत्यादि फल प्राप्त होते हैं। यही नियम कहा जाता है यह योग का दूसरा सोपान है।

(३) आसन—आसन इसे कहते हैं। यथा—*स्थिरसुखमासनम्,* विशेष, *चतुराशीति लक्षाणामेकैकं समुदाहृतम्। ततः शिवेन पीठानां षोडशोनं शतंकृतम्"*। अर्थात्, जिस आसन से बहुत समय सुखपूर्वक बैठ सके उसी को आसन कहते हैं। परन्तु आसनों की संख्या चौराशीलाख है किन्तु उसमें भिः भिन्न साधकों का भिन्न भिन्न मत है। *"ऋषिश्च भिन्नाः-स्मृतयश्चभिन्ना नाना मुनीनां मतं विभिन्नाः"*। किसी ने चौराशी लाख योनियों की आकृति आसन रूप में धारण करना, वे चौराशी लाख आसन

बताये हैं। किसी ने लाख का एकांश चौरासी ही बताए हैं। किसी ने छप्पन भी कहे हैं। किसी ने अठारह कहे हैं। किसी ने छै ही बताये हैं। इत्यादि आसनों के भिन्न-भिन्न मत हैं। परन्तु योगियों में श्रेष्ठ, शंकर भगवान् चौरासी आसन दृढ़ किये हैं। इन्हीं आसनों के साथ षट्क्रिया, नेती, धोती, नौली, इत्यादि बताई गई हैं। जो *"कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन"*। इत्यादि बताया गया है। इसी को आसन कहते हैं। यह योग का तीसरा सोपान है।

(४) प्राणायाम—प्राणायाम इसे कहते हैं। यथा—*"तस्मिन्सति श्वाँसप्रश्वाँसयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः सूर्य भेदन उज्जायी शीतकारी शीतली तथा। भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लावनीत्यष्ट कुंभकाः प्राणायामः"*। श्वाँस प्रश्वाँस बारम्बार पूरक कुंभक रेचक, करने से प्राणवायु की गति अवरुद्ध होती है। इससे प्राणों का संयम होता है। आत्मा का साक्षात्कार होने का ज्ञान होता है। इसके आठ भेद हैं, सूर्यभेदन, उज्जायी, शीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा, प्लावनी, यही आठ भेद युक्त कुंभक प्राणायाम कहा जाता है। इससे धीरे-धीरे कुम्भक की वृद्धि करना होता है प्राणायाम से 'नाना प्रकार मस्तिष्क का दुर्विचार, अविवेकिता का नाश हो जाता है। और प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, पंच प्राण वायु की एकता होती है जो आत्मा परमात्मा की एकता का उपयोगी होती है। इसी को प्राणायाम कहते हैं यह योग का चौथा सोपान है।

(५) प्रत्याहार—प्रत्याहार इसे कहते हैं। यथा—*"स्वविषया संप्रयोगे, स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः"*। अतएव, *"चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथा क्रमम्—*

यत्नत्या हरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते"। अर्थात्, विषयों से चित्त की निवृत्ति होने से जैसा चित्त का स्वरूप होता है। इन्द्रियों की एकाग्रता होना, रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श, यह पाँच विषय हैं। इनके नेत्रादि पंच ज्ञानेन्द्रिय भोक्ता हैं। इनको धीरे-धीरे विषयों से अलग-अलग करके इन्द्रियों की विषयों से निरीहता की आकाँक्षा होना इन्द्रिय निग्रह होता है। मन निर्मल होता है, मन की वृत्ति आत्मा में लगती है। तब आत्मा परमात्मा की एकता में सुयोग मिलता है। इसे प्रत्याहार कहते हैं। यह योग का पाँचवा सोपान है।

(६) धारणा—धारणा इसे कहते हैं। यथा—"*देश बन्धश्चित्तस्य धारणा*"। विशेष—

हृदये पञ्च भूतानां धारणा च पृथक् पृथक्।
मनसोनिश्चलत्वेन धारणा साऽभिधीयते॥

अर्थात्, चित्त वृत्ति को एकाग्र करके हृदयादि स्थानों के एक देश में दो घंटा, चार घंटा स्थिर करके, मन प्राण, को निश्चल करके पृथवी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पञ्चभूतों को भिन्न-भिन्न धारणा करना, इससे आत्मा परमात्मा के एकत्र करने में सहयोग होता है। इसे धारणा कहते हैं। यह योग का षष्ट सोपान है।

(७) ध्यान—ध्यान इसे कहते हैं। यथा—"*तत्र प्रत्येकतानता ध्यानम्*"। विशेष—

स्मृत्येव सर्व चिन्तायां धातुरेकः प्रपद्यते।
यश्चित्ते निर्मला चिन्ता तद्धि ध्यानं प्रचक्षते॥

अर्थात, ध्येय पदार्थ में ही चित्त की एकाग्रता होना, सांसारिक सर्व चिन्ता विस्मृत होकर एक ही वस्तु परमात्मतत्त्व परमात्मा का ही एकमात्र स्मरण होना ध्यान कहा जाता है। यह योग का सप्तम सोपान है।

(८) समाधी—समाधी इसे कहते हैं। यथा—"*तदेवार्थ मात्र-निर्भासं स्वरूपशून्य इव समाधी*"। विशेष—

घारणं पञ्चनाडीभि र्घ्यानं च षट नाड़ीभिः
दीन द्वादश के नस्यात् समाधी प्राण संयमात् ॥
सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधीरभिधीयते ॥
यदा संक्षिपते प्राणान् मानसं च प्रलीयते।
तदा समरसत्वं च समाधीरभिधीयते ॥
तत्समंच द्वयोरैक्यं जीवात्मा परमात्मनोः।
प्रनष्टः सर्व संकल्पः समाधी सा विधीयतें ॥

अर्थात् चित्त में इष्ट का चिन्मय स्वरूप ज्योति मात्र प्रकाश ही अपना स्वरूप शून्य मृतक प्राय हो जाना इसी को समाधी कहते हैं। अतएव, प्राण वायु का संचार पाँच घन्टा रुके, यह धारणा कही जाती है। और बारह घन्टा रुके, यह ध्यान कहा जाता है। और बारह दिन प्राण वायु रुके, श्वाँसा बन्द रहे उसे समाधी कहते हैं। जैसे जल में लवण (नमक) मिलकर तदाकार हो जाता है। वैसे ही मन और आत्मा का

एकाकार होना ही समाधी कही जाती है। जब प्राण और मन की गति एक में लय हो जाती है। उस समय की मन और आत्मा की समता को समाधी कहते हैं। जब जीवात्मा और परमात्मा दोनों तदाकार होकर, जीव के सर्व संकल्प नष्ट हो जाते हैं। और सर्वचिन्ता रहित ब्रह्मानन्द परमानन्द अवस्था होती है। इसी को समाधी कहते हैं। यही अष्टांग योग है।

भैय्या बालक वृन्द ! इस प्रकार जीव जब अपने परात्पर तत्त्व को प्राप्त करके ब्रह्मानन्द सुख का अनुभव करता है। तब विचार करता है कि अपने परात्पर तत्त्व परमात्मा की तो प्राप्ति की, परन्तु परमात्मा और आत्मा में व्यवहार क्या करना चाहिए। बताया गया है। *"सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि"*। परमात्मा के साथ आत्मा का सेव्य सेवक भाव न होने से जीव का संसार से निस्तार नहीं होता। *"सेवक हम स्वामी सिय नाहू"*। अर्थात् हम (जीव) सेवक, और स्वामी सीता नाह श्रीरामजी हों, भगवान श्रीराम जी ने स्वयं श्री हनुमान जी से कहा है।

सो अनन्य जाके अस मति न टरै हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप राशि भगवंत॥

हे हनुमान जी ! प्राणी ऐसी दृढ़ मति रखते हैं कि मैं जीव मात्र सेवक हूँ, और रूप राशि शोभासमुद्र भगवान् श्रीराम जी चर अचर सभी के सेव्य प्रभु हैं, रक्षक हैं। वही मेरा अनन्य भक्त है।

पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोय।
सर्व भाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोय॥

पुरुष या स्त्री अथवा नपुंसक हो, चाहे चर हो अथवा अचर ही, जो सर्व प्रकार कपट चातुरी त्याग करके हमारी सेवा (भजन) करता है वही हमारा परमप्रिय है। *"मानी एक भक्ति कर नाता"*। जीव के साथ हमारा एक मात्र भक्ति का नाता है। *"भक्ति हीन विरंचि किन होई"*॥ भक्ति हीन ब्रह्मा भी क्यों न हो परन्तु वह भी मुझे प्रिय नहीं है, तो भगवान् परमात्मा से हमारा (जीव का) प्रियत्व होना ही आवश्यक है। और देख भी रहा हूँ की जड़ चैतन्य सभी प्राणी भगवान् की सेवा भक्ति कर रहे हैं। यथा—*"सब तरु फले राम हित लागी"*। वृक्ष जड़ हैं फिर भी सेवा कर रहे हैं। *"करहिं मेघ नभ तहँ तहँ छाया"*। एवं *"करहि सिद्ध मुनि प्रभु की सेवा"*। पुनः *"सरिता गिरि बन अवघट घाटा। प्रभु पहिचानि देहि सब घाटा"*। *जिनहि देखि मग सापिनि बीछी। तजहिं विषमविष तामस तीछी"*। अतएव *"खग मृग चरण सरोरुह सेवी"*। *मधुकर खग मृग तनु धरि देवा"*। ब्रह्मा से कीट पर्यन्त चर अचर जड़ चैतन्य सभी भगवान् की सेवा कर रहे हैं भगवान् सभी के सेव्य है। जीव सभी सेवक हैं।

भैया बालक वृन्द ! यह दिव्य ज्ञान जीव को होना यही अष्टाङ्ग योग के द्वारा जब इन्द्रिय निग्रह हो जाती हैं, मन निर्मल हो जाता है। तब ज्ञानकी प्राप्ति करता है। सभी भगवान् की सेवा के लिए उद्यत होता है *"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः"* चित्त की चांचल्य वृत्ति का निरोध होना यही अष्टाङ्ग योग है जो आठ सोपान करके वर्णन किया गया है। अब आगे विज्ञान या नवमा भक्ति कही जायगी।

नवधा भक्ति वा विज्ञान

विज्ञान स्वरूपा नवधा भक्ति में नौ सोपान हैं। यह नौ सोपान इस प्रकार है:—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥

इत्यादि, जिसको श्री भरतलाल के प्रति कहा गया है।

संपुट भरत सनेह रतन के। आखर युग जन जीव यतन के॥
कुल कपाट कर कुशल कर्म के। विमल नयन सेवा सुधर्म के॥

यही नौ भक्ति जीव को विज्ञान रूपा है। एवं प्रेम रूपी रत्नों की नौ खाने है, नौ निधि हैं। भगवान् के नौ सम्बन्धों को जोड़ने वाली हैं यह नौ अंगों से भगवान् की सेवा, नौ संबन्धों से होती है। यथा—

पिता पुत्रत्व संबन्धो जगत कारण वाचिका।
रक्षरक्षकभावश्च रेणा रक्षक वचिना॥
शेषशेषित्व संबन्धश्चतुर्थ्या लुप्तयोच्यते।
भार्याभर्तृत्व संबन्धोऽप्यनन्यार्हत्व वाचिना॥
अकारेणापि विज्ञेयो मध्यस्थेन महामते।
स्वस्वामिभाव संबन्धो मकारेणाथ कथ्यते॥

आधाराध्येय भावोऽपि ज्ञेयो रामो पदेन तु।
सेव्य सेवक भावस्तु चतुर्थ्यां विनिगद्यते॥
नमः पदेन खंडेन स्वात्मात्मीयत्वमुच्यते।
षष्ठ्यन्तेन मकारेण भोग भोक्तृत्व मप्युत।

अर्थात् पिता-पुत्र १, रक्ष्य रक्षक २, शेष शेषी ३, पति पत्नि ४, स्वामी सेवक ५, आधार अधेय ६, जीव ईश्वर ७, सखा सख्य ८, भोग भोक्ता ९। इस प्रकार नौ सम्बन्ध युक्त जीव, भगवान् की ही नौ निधि है। नौ रतन है, नौ साधना या नौ सेवा नवधा भक्ति नौ सोपान उत्तीर्ण होने से साध्य होती है। अर्थात् प्राप्त होती है। यह नौवधा भक्ति की साधना नौ प्रकार की सेवा। पंचधा प्रेमा भक्ति या परा भक्ति की शिक्षा (ट्रेनिंग) स्वरूपिणी है। जो आगे नौ सोपान के रूप में वर्णन की जा रही है। यथाः— श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंन्दन, दास्य, सख्य आत्मनिवेदन।

(१) श्रवण—श्रवण इसे कहते हैं, यथा—*श्रवणं नाम चरितं गुणादीनां श्रुतिर्भवेत्*" विशेष—

बिनु सत संग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग॥

भगवान् के उत्तम सुयश नाम रूप लीला धमादि गुणानुवाद श्रवण करना श्रवण भक्ति है। परन्तु बिना साधु संग के भगवान् की कथा की प्राप्ति नहीं होती और भगवान् की उदारता, जीव की निष्ठुरता कथा रूप में

यथार्थ न सुनने से जीव का मोह नाश न होने से भगवान् में प्रेम नहीं होता है। यथा—"*जाने बिनु होइ परतीती, बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती*"।" साधु-संग कर, जहाँ—

ब्रह्म निरूपण विविधविधि, वर्णहिं तत्वविभाग।
कहहिं भक्ति भगवन्त के, संयुत ज्ञान विराग॥

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान के तत्वों को भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों से ब्रह्म तत्व का निर्णय किया जाता है। और संसार स्वार्थ का हेतु है। संसारिक यथार्थ स्वरूप, (स्त्री पुत्र कुटुम्बादि का) भिन्न-भिन्न रूप से वर्णन किया जाता है। जिससे मन की भ्रान्ति नाश हो जाती है।

निर्गुण उपासक संतशिरोमणि जगद्गुरू श्री कबीर दास जी अपने संत मंडली में भाषण देते हुए उपदेश कर रहे हैं। यथा—"*जगत है रात को सपना, समुझ मन कोइ नहिं अपना*"। फिर भी भैया "*कठिन है मोह की धारा, वहा सब जात संसारा*"। देख संसार का हाल प्राणी अन्धा, "*घड़ा ज्यों नीर का फूटा, पात ज्यों डार से टूटा*"। "*नर ऐसी जान जिन्दगानी, सबेरा शोच अभिमानी*"। अरे मूर्ख, "*देखि मति भूल तनु गोरा, जगत में जीवना थोरा*"। *त्यागि मद मोह कुटिलाई, रहो निःसंग जग भाई*"। भैय्या संसार झूठा है। "*सुजन परिवार सुतदारा, सभी एक रोजहों न्यारा*"। जब तुम संसार से चलोगे, "*निकल जब प्राण जावेगा, कोई नहिं काम आवेगा*"। भैय्या! "*देखि मति भूलु यह देहा, करो तुम राम से नेहा*"। मेरी बात सुनो—"*कटै जग जाल की फाँसी, कहैं गुरुदेव अविनाशी*"

"भैय्या बालक वृन्द! यह सब संसार का यथार्थ सिद्धान्त तो संसार त्यागी सन्त के ही समागम में निर्णय होता है। यथा—

शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणेः जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः॥

सन्तशिरोमणि नौ योगीश्वरों ने कहा है कि इस लोक में फिए हुए भगवान् के चरित्रों को सुनकर और अर्थ, यथार्थ समझकर भगवान् के नाम लीलादि को संग रहित अर्थात् सांसारिक बंधन स्त्री पुत्रादि त्याग कर अकेला, निर्लज्ज होकर उच्चस्वर से गायन करें।

रामहि भजहिं तातशिव धाता। नर पामर कर केतिक बाता॥

इत्यादि सत्संग में ही सुना जाता है, इसी से तो "*प्रथम भक्ति संतन कर संगा*"। कहा गया है सत्संग में विधिनिषेध कर्त्तव्य अकर्त्तव्य श्रवण करना चाहिए। यही श्रवण भक्ति कही गई है। यह विज्ञान का प्रथम सोपान है।

(२) कीर्तन—कीर्तन इसे कहते हैं—"*नाम लीला गुणादीना उच्चैर्भाषा तु कीर्तनम्*"। भगवान् के नाम रूपादि लीला गुणों को उच्चस्वर से गान करना, अर्थात् भगवान् की उदारता, अपनी दीनता आदि का गान करना। जैसे जगत् गुरु सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी गान कर रहे हैं।

तूँ दयालु, दीन हौं, तूँ दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तूँ पाप पुञ्ज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान पातकी, नहिं पातक हर तोसो॥

ब्रह्म तू, हौं जीव, तूँ है ठाकुर, हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा, सब विधि हित मेरो॥
मोहिं तोहिं नाते अनेक नाथ मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरण शरण पावै॥

आदि गाना कीर्त्तन भक्ति है। यह विज्ञान का दूसरा सोपान है।

(३) स्मरण—स्मरण इसे कहते हैं—*"कथं चिन्मनसा सम्बन्धः स्मृतिरुच्यते"*। विशेष—

येतु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥

भगवान् से पिता, पुत्र, सेवक सेव्य, गुरु शिष्य, किसी सम्बन्ध से स्मृति होना और भगवान् का ही ध्यान, पूजा इत्यादि अपने किए हुये सर्व कर्मों को अर्पण करे। और अपना सर्वस्व जानकर भगवान् का ही स्मरण करता रहे। इसी को स्मरण भक्ति कहते हैं। यथा—*"प्रातः स्मरामि रघुनाथ पदारविन्दम्"* अथवा *प्रातः स्मरामि रघुनाथ करारविंदम्"* अथवा *प्रातः स्मरामि रघुनाथ मुखारविन्दम्"*। इत्यादि कोई चरण कमल का स्मरण करते हैं। कोई कर कमल का स्मरण करते हैं। कोई मुख कमल का स्मरण करते हैं। कोई नयन कमल का स्मरण करते हैं। और कोई सर्वांग का भी स्मरण करते हैं। यथा—

घूँघुरवाली अलक हिय हरि गई॥ टेक॥
अति प्यारी, भारी मनहारी, सघन सचिक्कन कारी।
कपोलन ढरि गई॥ घूँघुर वारी०॥

अनियारी, तीखी मतवारी, नयन मयन तलवारी।
कतल हिय करि गई ॥ घूँघुर वारी० ॥
छविकारी, भारी मनहारी, वदन चन्द्र उजियारी।
व्योम हिय वसि गई ॥ घूँघुर वारी० ॥
सुकुमारी, सन्तान हितकारी, हस्त कमल धनुधारी।
शीश पर फिर गई ॥ घूँघुर वारी० ॥
द्युतिवारी, पीरी पटुवारी, अमल मनोहर भारी।
कमर विच कसि गई ॥ घूँघुर वारी० ॥
सुखकारी, संसृति दुःखहारी, सकल सुमंगलकारी।
चरण पर बिक गई ॥ घूँघुर वारी० ॥
रुचि वारी, मधुरी गुणकारी, "रामविलास" पियारी।
रूप रस चखि गई ॥ घूँघुर वारी० ॥
सौरारी, संतान जिवनारी, "गंगादास" बलिहारी।
काम मद हरि गई ॥ घूँघुर वारी अलक हिय हरि गई ॥

इत्यादि स्मरण भक्ति है। यह विज्ञान का तीसरा सोपान है।

(४) पादसेवन—पादसेवन इसे कहते हैं—

ममनाम सदा ग्राही मम सेवा प्रिय सदा।
भक्तिस्तस्मै प्रदास्यामि नैव मुक्तिः कदाचन ॥

भगवान् कहते हैं कि जो प्राणी हमारा नाम जपते हुए, सर्वदा सेवा में तत्पर रहते हैं। मैं उनको मुक्ति न देकर, भक्ति ही देता हूँ। और *"सगुण उपासक मोक्ष न लेहीं"*। सगुण उपासक सेवा करने वाले मोक्ष लेते ही नहीं हैं वे तो हमारी सेवा ही में सुखी रहते हैं। यथा—*"सेवत चरण लषण सचुपाए"*। *"श्री रघुवीर चरण रत होऊ"*। *"सब तजि करौ चरणरज सेवा"*। इत्यादि पादसेवन भक्ति कही जाती है। यह विज्ञान का चौथा सोपान है।

(५) अर्चन—अर्चन इसे कहते हैं। *"शुद्धिन्यासादि पूर्वांग कर्म-निर्वाह पूर्वकम्। अर्चनं तूपचाराणां स्यान्मंत्रेणोपपादनम्"*। अथवा *"कर नित करहिं राम पद पूजा"*। भूत शुद्धि न्यसादि सर्वांग, षोडशोपचार पंचोपचार, दशोपचार, कर्मों सहित गन्धपुष्पादि विविध उपचारों से भगवान् की पूजा करें। पूजा के पश्चात् श्रद्धा भक्ति से पुष्पांजलि चरणों में अर्पण करें। इसी को पाद सेवन भक्ति कहते हैं।

भैय्या बालक वृन्द! यही सेवा पूजा अर्चन जीवन के कल्याण के लिए, भगवान् श्रीराम जी स्वयं, जीव शिरोमणि श्री लक्ष्मण जी के प्रति कहे हैं।

श्रीराम उवाच—

मम पूजा विधानस्य नान्तोस्ति रघुनन्दन!।
तथापि वक्ष्ये संक्षेपाद्यथा वदनुपूर्वशः॥

हे भैय्या लक्ष्मण! वैसे तो हमारी पूजा का अन्त नहीं है। तथापि मैं संक्षेप में कहता हूँ। मनुष्यों को चाहिए अपने वर्णाश्रम के अनुसार,

यज्ञोपवीत, गुरु मन्त्रदीक्षा ग्रहण करें। गुरु के बताए हुए मार्ग से भक्ति पूर्वक हमारी आराधना करें। विग्रह पूजा करें या मानसिक पूजा करें, अथवा अग्निहोत्रादि करें। किम्वा शालग्राम की पूजा करें। परन्तु प्रथम में वेद एवं तंत्रोक्त विधि से प्रातः स्नानादि, शरीर शुद्धि करें। पुनः तिलक स्वरूपादि संस्कार युक्त होकर मन्त्र जपादि तर्पण करें। पुनः विचार पूर्वक भक्ति से संकल्पादि करें। पुनः हमारे समान या हम से भी अधिक आदर सन्मान से गुरु पूजा करें।

तुमते अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाव सेवहिं सन्मानी॥

पुनः हमारी पूजा के हेतु शालग्राम को स्नान करावे, और धातु निर्मित प्रतिमा का मार्जन करे, पुनः गन्ध पुष्पादि से भूषित करे, और पूजा की यावत् सामग्री से विधि पूर्वक पूजा करे, तब पूजा की सिद्धि होती है। दम्भ कपट आदि दोषों को त्यागते हुए *"मोहि कपट छलछिद्र न भावा"* गुरु के बताए हुए मार्ग से भक्ति पूर्वक हमारी पूजा करनी चाहिए। पुनः शृंगार मुझे बहुत प्रिय है। अर्थात् हमारी प्रतिमा का सुन्दर शृंगार करे। अथवा अग्नि में मेरा पूजन करना हो तो घृतादि से हवन करें। सूर्य में पूजा करना हो तो प्रतिमा बनाकर अथवा तर्पण आदि से पूजा करें। अधिक तो क्या कहें, *"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति"*। मेरा भक्त मुझे श्रद्धा भक्ति से पत्र, पुष्प, फल, जल, कुछ भी अर्पण करता है तो मैं उसे बहुत प्रसन्नता से ग्रहण करता हूँ।

हे भैय्या लक्ष्मण! प्राणी दंभ कपट त्यागकर, श्रद्धा भक्ति से पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, भूषण आदि अपनी शक्ति के अनुसार, कर्पूर,

केशर, कस्तूरी, अगर, चन्दन आदि सुन्दर सुगंध पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नाना उपचारों से आरती इत्यादि विस्तार पूर्वक मंत्रानुसार मेरी पूजा करें। पूजा के पश्चात् मेरी प्रसन्नता के लिए, नृत्य, गीतादि स्तुति पाठ करें। और मुझे *"हृदयं श्यामलं रूपं सीता लक्ष्मण संयुतम्"* हृदय में स्मरण करते हुए भूमिष्ट साष्टाङ्ग दंडवत करें। हमारे प्रसाद को भक्ति से शिरोधार्य करें। पुनः मेरे चरणों को दोनों हाथों से शिरोधार्य करें। और मन से मुझे स्मरण करके मुख से बारम्बार प्रार्थना करें, कि हे प्रभु! *"रक्षमामघोर संसार"* विशेष *"अतुलितबल अतुलित प्रभुताई, मैं मति मंद जान नहि पाई"* अपराधी हूँ *"निज कृत कर्म जनित फल पायो, अब प्रभु पाहि शरण तकि आयो"*। इस घोर मोहान्धकार संसारसागर कारागार से मेरी रक्षा करो। इस प्रकार कहते हुए मुझे प्रणाम करके, पुनः जिस हृदय स्थित ज्योतिः स्वरूप से आवाहन करे वही ज्योति में स्मरण करके पूज्य इष्ट का विसर्जन करें।

एवमुक्त प्रकारेण पूजयेद्विधिवद्यदि।
इहामुत्र च संसिद्धिः प्राप्नोति मदनुग्रहात्॥
मम भक्तो यदि मामेव पूजां चैवदिने दिने।
करोति मम सारूप्यं प्राप्नोत्येव न संशयः॥

यदि इस प्रकार विधिवत मेरी पूजा करे, तो *"इह लोके सुखी भूत्वा पर लोके विजयी भवेत्"*। मेरे अनुग्रह का भागी बनकर इह लोक में सुख भोगते हुए, *"अंत काल रघुपति पुर जाहीं"*। परलोक में जाने की सिद्धि लाभ करता है। जो मेरा भक्त इस विधि से पूजा करता है वह निःसन्देह मेरी सारूप्य मुक्ति पाता है। यथा—*"गृद्ध देह तजि धरि हरि रूपा,*

भूषण बहु पट पीत अनूपा ॥ श्यामगात विशाल भुज चारी" जो भक्त मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतंग कोई भी हमको चिन्तवन स्मरण भजन पूजन करता है। वह देहान्ते हमारे समान श्याम सुन्दर शरीर पाकर और चतुर्भुज, बहु भूषण पीताम्बर वस्त्र धारण करके दिव्य शरीर से हमारे साकेत वैकुण्ठादि लोकों में जाकर हमारी सेवा करता है—"*यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम*"। जहाँ जाकर संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती वही मेरा परम धाम है।

भैय्या बालक वृन्द ! देखो भगवान् हमारे कल्याण के लिए कैसा सुन्दर सरल मार्ग अपनी पूजा बतायी है। फिर इतने सस्ते कि एक बुन्द जल जहाँ हमको अर्पण करे, तो भी मैं जीव के प्रति प्रसन्न हो जाता हूँ और इस लोक के नाना दुःखों से मुक्त करके अपने साकेत वैकुण्ठादि लोकों में भेज देता हूँ। और अनादि काल से मेरे से विमुख, मेरी सेवा से वञ्चित भया जीव को पुनः वही सेवा दे देता हूँ। यही मेरी पूजा अर्चा का फल है। इसी को अर्चन भक्ति कहते हैं, यह विज्ञान का पाँचवाँ सोपान है।

(६) वन्दन—वन्दन इसे कहते हैं।

वन्देऽम्बुजांकुश यव ध्वज चक्ररेखा,

स्वस्त्यष्टकोण पवि चिन्हित दक्षिणांघ्रिम्।

बिन्दु त्रिकोण धनुरंकुश मत्स्य शंख,

चन्द्रार्ध गोष्पद घटांकित वाम पादम् ॥

अतएव—"*वन्दौं राम चरण सब लायक*"। पुनः "*वन्देऽहं करुणा करं रघुवरम्*"। अर्थात् भगवान् के चरण कमलों में यव, अंकुश, ध्वजा आदि

चिह्नों सहित वन्दन नमस्कार करे, ध्यान करे। "वन्देऽहं तमशेष कारण परम्, वन्दे मम्र कुलं कलंक शमनम्, वन्दे कंदावदातं सरसिजनयनम्" ॥ इत्यादि। अथवा—"वन्दौ अवधपुरी अति पावनि" "वन्दौ कौशल्या दिशि प्राची" "वन्दौ लक्ष्मण पद जल जाता" "वन्दौ सबके चरण सुहाए" "वन्दौ पद सरोज सब केरे" "वन्दौ नाम राम रघुवर के"। इत्यादि वन्दन भक्ति कही गई है। यह विज्ञान का छठाँ सोपान है।

(७) दास्य—दास्य इसे कहते हैं—"दास्यं कर्मार्पणं सर्व कैंकर्य मम सर्वदा"। सन्मार्जनोपलेपाभ्यां सेवा मंडल वर्त्तनैः"। "गृह सुश्रूषणं मह्यं दासवधद मायया"। "नीच टहल गृह की सब करिहीं"। "नाथ स्वामि मैं दास तव" दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य"। अर्थात् भगवान् के मन्दिरादि को लीपना, पोछना, वस्त्रादि को धोना, भगवान् को चन्दन फुलेलादि से मार्जन करना, केशर कस्तूरी कुमकुमादि भगवान् के शरीर में लेप करना, नाना प्रकार वस्त्रालंकार भूषित करना, स्वामी सेवक भाव से भगवान् के चरणादि की नाना प्रकार से सेवा करना, अपने किए हुए सब कर्मों को भगवान् को अर्पण करना।

भैय्या बालक वृन्द! श्री रामजी को विवाह के समय एक वयोवृद्धा सेविका नाना प्रकार की सुशोभित सुवासित पुष्पों का हार रोज पिन्हाया करती थी। दुर्भाग वस जब श्री रामजी श्री अवधको प्रस्थान किए, तो यह सेविका प्रेमानन्द में मग्न होकर अपने हृदय के भाव को कीर्त्तन रूप में गान करने लगी। यथा—

मैं साथे में जइहौं, राम से लागी लगनियाँ रे ॥ टेक ॥
राम की बारी में कुटिया बनैहौं ।
सींचिहौं राम की फुलवरिया रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥
चुनि चुनि फुलवा मैं हरवा बनैहौं ।
पहिनइहौं मैं रामजी के गरवा रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥
रामचन्द्र जब जीमना जिमिहैं ।
उठइहौं मैं जूठी पतरिया रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥
रामचन्द्र जब पलँगा में सोइहैं ।
मचलिहौं मैं उनकी पगनियाँ रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥
घर के नीच काज सब करिहौं ।
देखिहौं मैं राम कइ चरनियाँ रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥
राम चरण मैं कबहूँ न छड़िहौं ।
चहरिहौं मैं अवधा डगरिया रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥
श्री गुरुदेव जब गोदी खेलइहैं ।
देखि देखि होइहौं सुखीनियाँ रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥
राम से लागी लगनियाँ रे, मैं साथे में जइहौं ॥

इत्यादि गुणों को दास्य भक्ति कहते हैं। यह विमान का सातवाँ सोपान है।

(८) सख्य—सख्य इसे कहते हैं। *"विश्वासो मित्र वृतिश्च सख्य द्विविधमीरितम्"* ॥ विशेष—

सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब विधि करब काज मैं तोरे॥

दूसरे सखा, *"सब प्रकार करिहौं सेवकाई"* भगवान् में अटलविश्वास और मित्रताका वर्त्ताव करें, यही दो गुणों को सख्य भक्ति कहते हैं। अर्थात् मित्रता का अर्थ होता है समता, दोनों का सम भाव हो, जैसे श्रीरामजी और सुग्रीव की सख्य भावना थी। श्रीराम जी कहते हैं—हे सखा सुग्रीव ! हमारे बल से तुम निश्चिन्त हो जाओ, तुम्हारा सब कार्य मैं करूँगा। सुग्रीव कहते हैं, हे प्रभो ! मैं आपकी सर्व प्रकार से सेवा करूँगा। दोनों तरफ निष्काम निर्मल प्रेम हो, *"यथा तुलसी राम से, तथा राम तुलसी से"* जैसे श्रीराम जी कहते हैं—

दोहा—वचन कर्म मन कपट तजि, भजन करै निष्काम।
तिनके हृदय कमल महँ, सदा करौं विश्राम॥

सखा भक्त कहते हैं—

दोहा—अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बाण धर राम।
मम हिय गगन इन्दु इव, बसहु सदा निष्काम॥

सखा सख्य दोनों ही निष्काम हों, इसी को सख्य भक्ति कहते हैं। यह विज्ञान का आठवाँ सोपान है।

(९) आत्मनिवेदन—आत्म निवेदन इसे कहते हैं।

इष्टं दत्तं तपो तप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत्परस्मै निवेदनम् ॥

तम मन धाम राम हितकारी । सब विधि तुम प्रणतारति हारी ॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी । दीनबन्धु उर अन्तर्यामी ॥
दिशि अरु विदिश पंथ नहिं सूझा । को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ॥

यज्ञ, दान, जप, तप, नाना प्रकार धर्मानुष्ठान, प्रिय, अप्रिय, आत्मिक सदाचार, स्त्री, पुत्र, धन, तन, प्राण, सर्वस्व, भगवान् को अर्पण करते हुए, अपने शरीर की सुध, बुध, सब विस्मरण हो जाय। *"तदेवार्थ मात्र निर्भासं, स्वरूप शून्य इव"*। सर्व श्री राम ही राम हों, निज रूप का भी ज्ञान शून्य सा हो जाय। यथा—

साधो ! राम बिना कछु नाहीं ।
रामहिं आगे रामहिं पाछे रामहिं बोलै माहीं ।
उत्तर रामहिं दक्षिण रामहिं पूरब पश्चिम रामा ।
स्वर्ग पताल महीतल रामा राम सकल विश्रामा ॥
उठत रामहि बैठत रामहिं जागत सोवत रामा ।
राम बिना कछु और न दर्शै सकल राम के कामा ॥
सकल चराचर पूरण रामा निर्गुण शब्द सनेही ।
कायम सदा कबहुँ न विनसै बोलन हारा एही ॥

एक राम को भजै निरन्तर एक रामही गावै ।
कहैं "कबीर" राम के परशे आया ठौर न पावै ॥
साधो राम बिना कछु नाहीं ।
रामहिं आगे रामहिं पाछे रामहिं मोलै माहीं ॥

अर्थात् सर्व राममय ही देखे मैं मेरा, तैं तेरा, कुछ भी न हो शरीर तक भी स्मरण न हो, यही आत्म निवेदन भक्ति है। यह विज्ञान का नौवाँ सोपान है।

भैय्या बालक वृन्द, मित्रो! यही २८ सोपान, नाम वैराग्य से लेकर आत्म निवेदन पर्यन्त, निवृत्ति के हैं। इस प्रकार वर्णाश्रम प्रवृत्ति के ३८ और विरक्ताश्रम निवृत्ति के २८ दोनों मिलकर ६६ सीढ़ी मनुष्य शरीरधारी, जीव को चढ़ना होता है। जो शरीर—

नर समान नहिं कौनिहु देही। जीव चराचर याचत जेही ॥
स्वर्ग नरक अपवर्ग निसेनी। ज्ञान विराग भक्ति सुख देनी ॥

ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि सब सुख देने वाला, एवं स्वर्ग वैकुण्ठादि लोकों में तथा नरक भवकूप पाताल में भी ऊपर नीचे चढ़ने उतरने की सीढ़ी है। परन्तु मनुष्य का पुरुषार्थ यही है कि अपनी उन्नति करे, ऊपर ही उठना श्रेयष्कर है और नीचे गिरना कुत्सित है। परन्तु कर्म की ही प्रधानता है। *"कर्म प्रधान विश्व करि राखा"*। उच्च कर्म करेंगे स्वर्ग वैकुण्ठादि लोकों में जाँयगे। नीच कर्म करेंगे नरक (भव कूप) में जाँयगे। नरशरीर ही नीचे ऊपर दोनों तरफ जाने की सीढ़ी है।

"सत संग अपवग कर, कामी भवकर पंथ" संतों का मार्ग बैकुण्ठ का है। वे उच्च कर्म करके ऊपर बैकुण्ठ चले जा रहे हैं। कामी कामिनी के संग मैथुनादि नीच कर्म करके नीचे भवकूप रूपी योनि कूप गर्भ यातना में जा रहे हैं। असंतो का मार्ग भयकूप में नीचे जाने का है।

भैय्या बालक वृन्द! मनुष्य शरीर *"साधन धाम मोक्ष कर द्वारा"* मनुष्य के ही शरीर से साधन बनता है। जीव मनुष्य शरीर पाकर भी यदि भक्ति मुक्ति नहीं पा सका। *"सो परत्र दुःख पावे, शिर धुनि धुनि पछिताइ"*। फिर तो पूर्ववत् कीट पतंग पशु पक्षी में जहाँ था, वहाँ ही चला गया और अब वहाँ शिर पीट-पीट कर पश्चात्ताप करना छोड़कर और कर्त्तव्य ही क्या कर सकता है।

भैय्या बालक वृन्द! आप सब तो पढ़े लिखे विद्वान हैं स्वयं भी शास्त्र पुराण पढ़कर जान सकते हैं। देखिए जीव और ईश्वर का स्वरूप, *"ईश्वर अंश जीव अविनाशी"* ब्रह्म वैवर्त्त पुराण में कहा है। कि—*"जीवात्मा परमात्मा च"*।

जीवो मत्प्रतिबिम्बश्च इत्येव सर्व सम्मतम्।
प्रकृति मद्विकारश्च साप्यहं प्रकृतिः स्वयम्॥
यथा दुग्धे च धावल्यं न तयोर्भेद एव च।
यथा जले तथा शैत्यं यथा वह्नौ च दाहिका॥
यथाऽऽकाशे तथा शब्दे भूमौ गन्ध यथावृत।
यथा शोभा चन्द्रमसि यथा दिनकरे प्रभा॥

वायुश्च भूमिराकाशो जलं तेजश्च पंचकम् ।
उक्तः श्रुतिगणैरेतैः पञ्चभूतेश्च नित्यशः ॥
सर्वेषां देहिनां तात ! देहश्च पाँच भौतिकम् ।
मिथ्या भ्रमः क्रमश्च स्वप्नवन्मायायाऽन्वितः ॥
देहं गृह्णाति सर्वेषां पंचभूतानि नित्यशः ।
माया संकेत रूपं तदभिज्ञानं भ्रमात्मकम् ॥
को वा कस्य सुतस्तात का स्त्री कस्य पतिस्तु वा ।
कर्मणा भ्रमणं शश्वत्सर्वेषां भूरि जन्मनि ॥
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ।
सुख दुःख भयं शोकं कर्मणा च प्रपद्यते ॥
केषां जन्म च स्वर्गेषु केषां वा ब्रह्मणे गृहे ।
केषां विप्रेषु क्षत्रेषु केषां वा वैश्यशूद्रयोः ॥
अति नीचेषु केषां वा केषां कृमिषु विट्षु च ।
पशु पक्षीषु केषां वा केषां वां क्षुद्रजन्तुषु ॥
पुनः पुनर्भ्रमत्येव सर्वे तात ! स्वकर्मणा ।
करोति कर्म निर्मूलं मद्भक्ता मत्प्रियः सदा ॥

भक्ति करत बिनु यतन प्रयासा । संसृति मूल अविद्या नाशा ॥

भैय्या बालक वृन्द ! भगवान् कह रहे हैं कि हमारे प्रिय भक्त ही

एक भक्ति बल से संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध, कर्मों को समूल नाश कर देते हैं।

मोहि भक्त प्रिय संतत, अस विचारि सुनु काग।
काय वचन मन मम चरण, करेहु अचल अनुराग॥

हे काग! हे प्राणी वृन्द! भक्त हम को सदा ही प्रिय हैं मन वचन कर्म से हमारे चरण कमलों में सदा अचल अनुराग करके सदा हमारा भजन सेवा करना। जीव मेरा ही प्रतिबिम्ब है। *"नर नारायण सरिस सुभ्राता"*। नरनारायण की तरह अंश अंशी रूप से जीव और मैं एक ही वस्तु हैं।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी।
सो तुम ताहि तोहि नहि भेदा। वारि बीचि इव गावहिं वेदा॥

जल और जल तरंग की तरह अविनाशी जीव हमारा ही अंश है हमारी तरह जीव भी निर्मल चैतन्य स्वभाव से ही सुख स्वरूप है। जीव और मेरे में कुछ भी भेद नहीं है। प्रकृति माया भी मेरी ही विकार है। यह भी ब्रह्म रूपिणी है। *"गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न"*। यह भी वाणी और अर्थ एवं जल और तरंग की तरह मेरा ही स्वरूप है। ब्रह्म, जीव और माया, कर्ता क्रिया, कर्म की तरह अर्थात् मैं ब्रह्म कर्ता हैं और प्रकृति (माया) क्रिया है, जीव कर्म है। जैसे माता, पिता और पुत्र, अर्थात् यह माया ब्रह्म जीव एक वस्तु है। परन्तु *"कर्माधीनमिदं सर्वम्"*। प्राणी मात्र अपने कर्मपाश में बँधा हुआ है। *"काल कर्म गुण स्वभाव सबके शीश तपत"*। यह जीव (प्राणी) मात्र सदा *"सुर नर नाग"*। सभी

"बँधे कर्म की डोरी"। में बँधे हुए नाना नरक यातना भोगते हुए भी, निर्भयता पूर्वक—

लोभै ओदन लोभै डासन। शिश्नोदर पर यमपुर त्रासन॥

काम क्रोध लोभादि में आसक्त परधन, परदारा, अपहरण. अपनी ही इन्द्रियों (पेट) के उपाय में लगे रहते, नाना दुराचार कर्म वेदशास्त्र से प्रतिकूल करते हैं। "सो परत्र दुःख पावै"। बाद में हमारी क्या ताड़ना होगी, ऐसा यमपुर का भी भय नहीं करते। इस प्रकार हम जीवों की दुर्बुद्धि है।

भैय्या बालक वृन्द! श्री मद्भागवत में भगवान् श्री कपिलदेव, देवहूती के प्रति संसारी विषयाशक्त जीवों की इस लोक और यमलोक में होने वाली यातनाएँ कह रहे हैं। अब हम सब बारम्बार श्री मद्भागवत रामायण, गीता, पढ़ रहे हैं समझ रहे हैं फिर भी मानते नहीं हैं।

श्री कपिल उवाच—

तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम्।
काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः॥

(श्री मद्भागवत—३।३०।१)

यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे।
तं तं धुनोति भगवान्पुमाञ्छोचति यत्कृते॥ (३।३०।२)

यदध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः।
ध्रुवाणि मन्यते मोहाद् गृहक्षेत्रवसूनिच॥ (३।३०।३)

इत्यादि कहते हुए

जीवतश्चान्त्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने ।
सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥ (३।३०।२६)
कृन्तनं चावयवशो गजादिभ्यो भिदापनम् ।
पातनं गिरिशृंगेभ्यो रोधनं चाम्बुगर्तयोः ॥ (३।३०।२७)
यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः ।
भुंक्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥ (३।३०।२८)
अत्रैव नरकःस्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ।
या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥ (३।३०।२९)
एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरम्भर एव वा ।
विसृज्यहोभयं प्रेत्य भुंक्ते तत्फलमीदृशम् ॥ (३।३०।३०)
एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम् ।
कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम् ॥ (३।३०।३१)
दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान् ।
भुंक्ते कुटुम्बपोषस्य हृतवित्त इवातुरः ॥ (३।३०।३२)
केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः ।
याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥ (३।३०।३३)
अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः ।
क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥ (३।३०।३४)

भय्या बालक वृन्द ! इस प्रकार श्रीमद्भागवत में व्यास बता रहे हैं। यह जीव का दुष्कर्म और उसके फल स्वरूप नरक यातना, जिसको पढ़ते अथवा सुनते ही मन कंपायमान् हो जाता है और यह दंड तो बहुत भारी है। परन्तु जीव जानबूझ कर फिर भी दुष्कर्म ही करता है। *"जानि गरल जो संग्रह करहीं। कहो उमा ते काहे न मरहीं"*। जान बूझकर यदि पाप कर्म करता है तो दंड क्यों नहीं पावेगा।

भैय्या सज्जन वृन्द ! मित्र गणों। *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"* भैय्या बालक गण !

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ॥
नाहिं तो परिही भव बेगार महँ, छूटत अति कठिनाई रे ॥

राम भजन करो नहीं तो तुम्हारी सारी चातुरी भूल जायगी और भव सागर का कीट बनना पड़ेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। *"अवश्य-मेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"* भैय्या मित्र गण !

तब कि चलहिं अस गाल तुम्हारा, अस विचारि भजु राम उदारा ॥

मनुष्य *"काल वेगं न पश्यति"* काल का शिकार होने पर भी वह काल के भयंकर प्रभाव को नहीं देखता।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा ॥

सारा संसार प्राणी मात्र काल का ग्रास हो रहा है। भगवान् स्वयं कह रहे हैं। कि—

काल रूप तिन कहँ मैं ताता। शुभ अरु अशुभ कर्म फल दाता ॥

प्राणी मात्र को शुभाशुभ फल भोगाने के लिए मैं ही काल हूँ, इस प्रकार जानते बूझते हुए भी *"शिश्नोदर पर यम पुर शासन"* अपनी इन्द्रिय सुख एवं पेट भरण पोषण के लिए, नाना प्रकार न्यायान्याय तथा कठिन परिश्रम से अनेक वस्तु सुख के लिए जुटाता है। परन्तु काल उसको ध्वंस कर देता है। और वह शोकातुर होकर बैठ जाता है। मनुष्य अज्ञानता वश देह सम्बन्धी पशु स्त्री पुत्रादि को सत्य मानता है। शूकर कूकर योनियों में जन्म होने पर भी अपने को सुखी समझता है। स्त्री पुत्रादि के भरण पोषण के लिए रात दिन चिन्ता ग्रस्त होकर नाना प्रकार दुष्कर्म करता है। स्त्री की माया में फँसकर नाना दुःखों को भोगते हुए भी उसी में सुख मानता है। फल स्वरूप दुर्गति पाता है। यावज्जीवन नाना प्रकार के पाप कर्म करते हुए काल के गाल में चले गए, और असंख्य काल तक कुम्भीपाक रौरवादि नरक भोगते हुए पुनः वही योनि यातना यम यातना सहन करते हुए *"भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निशि काल कर्म गुणनि भरे"*।

भैय्या बालक वृन्द! आप सब पहले भी बहुत शास्त्र पुराण, बारम्बार श्री मद्भगवद्गीता रामायण पढ़े होंगे सुने होंगे, समझे होंगे, समझाए होंगे फिर भी *"भजेहु नहि करुणामयम्"* उसका फल स्वरूप *"रामविमुख अस हाल तुम्हारा"* वही माता के गर्भ की यातना भोगते हुए संसार सागर कारागार में आए हुए हैं। अबके बाजी जैसे न हारें। भगवान् का भजन करते हुए प्रर्थना करें। *"मन की जानन हार सुदेवा। भव सागर तारहु यहि सेवा"* ऐसा भजन करें कि यम का खाता रद्द हो जाय और भव सागर से पार हो जावे।

हाँ मित्रवर! अब व्यास जी की बात सुनिए, जब यह जीव को भयंकर यम दूत बलात्कार ताड़ना दे देकर बाँधकर घसीटते हुए ले जाते हैं। रास्ता में इसको नोच-नोचकर खाते रहते हैं और भूख से व्याकुल हुए गरम रेती में चल नहीं सकते, तब यमदूत नाना प्रकार से ताड़ना करते हैं कष्ट से चलते बहुत कष्ट से वैतरणी तप्त बालुका आदि पार होते हुए यमालय में जाते हैं। फिर जीव को नाना प्रकार ताड़ना दी जाती है, जो आप श्री मद्भागवत के पञ्चम स्कंध के २६ वें अध्याय में देखें कि अति कठिन २८ घोर रौरवादि नरक यातना बताई गई हैं, उसको भोगता है। और उसी का मांस उसको काट काटकर खिलाया जाता है। इस प्रकार अंधतामिस्रादि नरक यातना भोगता है। भैया *"जो न तरे भव सागरहिं, नर समाज अस पाइ। सो कृत निन्दक मन्द मति, आतम हनि गति जाइ"* ॥ भैय्या प्राणियों! ऊपर कहे हुए ताड़नाओं को तो आप समझ लिए होंगे। यथा—*"जो शठ गुरु सन ईर्षा करहीं, रौरव नरक कोटि युग परहीं"*। अथवा—

पति वंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प शत परई॥

भैय्या! स्त्री हो या पुरुष हो, समझने की बात है कोटि युग, अथवा शत कल्प क्या अभी शेष हो जायगा। अर्थात इतने इतने दिन, कोटि कोटि युग, शत कल्प, पर्यन्त यम लोक में नाना नरक यातना भोगता है तब भगवान् कहते हैं।

श्री भगवानुवाच—

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये।
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतः कणाश्रयः॥

(श्री मद्भागवत-३।३१।१)

अर्थात् दैव प्रेरणा से देह पाने के लिए जीव पुरुष के लिंग द्वारा अधोपतन होकर वीर्य रूप से भवकूप रूपी स्त्री के योनि मार्ग से गर्भोदर में प्रवेश करता है

भवकूप अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते॥

भैया! श्रीरामजी के चरणों में प्रेम न करने का फल यही मिलता है, भगवान् कहते हैं। मानस तो आप पढ़े ही होंगे।

काल रूप मैं तिन कहँ ताता। शुभ अरु अशुभ कर्म फलदाता॥

जो जान बूझकर यदि आप भवकूप में पड़ोगे तो कोई क्या करेगा। *"पतितं भीम भवार्ण वोदरे, अगति" (आलवन्दार)*।

कललंत्वेक रात्रेण पंचरात्रेण बुद्बुदम्।

दशाहेन तु कर्कन्धूः पेरयण्डं वा ततः परम्॥

(श्री मद्भागवत–३।३१।२)

एक रात्रि में माता की रज और पिता का वीर्य मिश्रित होता है। पाँच रात्रि में वर्तुलाकार (गोला) होता है। दश दिन में बेर के समान और कठोर हो जाता है। पुनः उस मलमूत्र युक्त योनि के भीतर माँस का पिंडाकार या अंडाकार हो जाता है।

मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्र्याद्यङ्गविग्रहः।

नखलोमास्थिचर्माणि लिंगच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः।

(श्री मद्भागवत ३।३१।३)

एक मास में शिर, और दो महीना में हाथ पैर आदि शरीर का

विभाग होता है। तीसरे महीने में नख, लोम, अस्थि, चर्म, लिंग, और छिद्र होते हैं।

चतुर्भिर्धातवः सप्त पंचभि क्षुत्तृडुद्भवः।
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥

(श्री मद्भागवत—३।३१।४)

चौथे मास में सप्तधातु और पाँचवे मास से प्यास आदि उद्भव होते हैं। छठें मास में जरायु (माँस) झिल्ली में लपेटा जाता है। और क्रमशः दाहिने कोख में चलाचल होने लगता है।

मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते
शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे॥

(श्री मद्भागवत—३।३१।५)

पुनः माता के खाए पिए हुए रस पूय को खाकर धातुओं की वृद्धि होते हुए अनेक कीट जहाँ भरे हैं ऐसे विष्ठा मूत्र से सड़े हुए दुर्गन्धमय गर्भाशय रूपी गड्ढे में सोता है। "पुनरपि जननी जठरे शयनम्" पड़ा रहता है।

कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम्।
मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः॥

(श्री मद्भागवत—३।३१।६)

उस समय शरीर अति कोमल, और वहाँ पर रहने वाले क्षुधित कृमि शरीर को बारम्बार काटते रहते हैं और क्षण क्षण में नाना पीड़ाओं से क्षुभित मूर्छित करते हैं।

कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ।
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः ॥

(श्री मद्भागवत—३।३१।७)

भैय्या ! प्राणी, माता के बारम्बार नाना प्रकार स्वादिष्ट लाल मिर्च का अचार अति कडुआ तीता, गरम गरम, बहुत नमकीन पापड़ादि, रूक्ष मसालेदार चना भाजा आदि, और नीबू आमादि खट्टा आचार दही इमली नाना प्रकार के खट्रस इत्यादि खाए हुए पदार्थों के कारण गर्भस्थ जीव के सर्वांग में नाना प्रकार वेदना और ज्वाला उठती है। अर्थात् कीटों के काटे हुए घावों पर जलन उठती है।

उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः ।
आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥

(श्री मद्भागवत—३।३१।८)

जरायु भिल्ली में बँधा हुआ (कपड़े की गाँठ जैसा) अथवा (रस्सिया में बँधी हुई घास की गाँठ जैसी मजबूत) और बाहर से माता की अँतड़ियों का आवरण अति संकीर्ण स्थान में हाथ पैर मजबूत बँधे रहते हैं, पीठ के भाग में घुसाई हुई मुट्ठी टेढ़ी रहती है और शिर पेट में घुसा रहता है।

अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ।
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ॥

(श्री मद्भागवत—३।३१।९)

लोहा के मजबूत पिंजरे में बँधे हुए पक्षी के समान इतना संकीर्ण गर्भाशय है कि शरीर को किधर भी हिला डुला नहीं सकता इतना तक कि हाथ पाँव हिलाने में भी असमर्थ रहता है। वहाँ समय समय पर भगवान् की प्रेरणा से अपने किए हुए पाप कर्मों के फल को मैं दुःख रूप गर्भ यातना में या योनियातना को भोग रहा हूँ ऐसा समझने के लिए करोड़ो जन्मों का कृतकर्म स्मरण आने लगता है। तब वह दीर्घ श्वाँस छोड़ते हुए त्राहि त्राहि करता है। "*अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्*" अब वहाँ सुनता भी कौन है और सुख शान्ति कैसे होगी।

आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः।
नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः॥

(श्री मद्भागवत्–३।३१।१०)

सातवें मास में ज्ञान न होने से भी प्रसूति वायु इसे ऐसे कंपायमान करती रहती है, जैसे उदर में रहने वाले अन्यकृमि, यह एक जगह ठहर नहीं पाता।

नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृतांजलिः।
स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः॥

(श्री मद्भागवत ३।३१।११)

देहात्मदर्शी यह प्राणी सातवें मास में बँधा हुआ भी सप्त धातुओं से मोहित हुए गर्भवास में भगवान् को डरता हुआ व्याकुल वाणी से प्रार्थना करता है।

जीव उवाच—

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयाऽऽत्त नाना तनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम् ।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशीगतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा ॥
(श्री मद्भागवत—३।३१।१२)

अंग्या प्राणी जन ! फिर यह गर्भस्थ जीव गर्भयातना से आरत होकर भगवान् से कहता है कि जन्मान्तर अपराधों के कारण जो भगवान् हमें यह दुर्दशा में डाले हैं, जो भगवान् संसार रक्षा के लिए नाना अवतार धारण करते हैं ऐसे अभय पद देने वाले भगवान् के चरण कमलों की मैं शरण लेता हूँ मेरी रक्षा करो ।

यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा भूतेन्द्रियाशयमयीमवलम्ब्य मायाम् ।
आस्ते विशुद्ध मविकार मखंडबोध मातप्य मानहृदयेऽवसितं नमामि ॥
(श्री मद्भागवत—३।३१।१३)

हे प्रभु ! यही माता के गर्भ में बद्ध, मनोमय माया का आश्रय कर कर्मों से आवृत्त बद्ध हुए मैं सच्चित् आनन्द, विशुद्ध, अखंड, ज्ञान स्वरूप, अविकारी भगवान् को नमस्कार करता हूँ, मेरी रक्षा करो ।

यः पञ्चभूतरचिते रहितः शरीरेच्छन्नोयथेन्द्रियगुणार्थ चिदात्मकोऽहम् ।
तेनाविकुंठमहिमानमृषिं तमेनं वन्दे परं प्रकृति पूरुषयोः पुमांसम् ॥
(श्री मद्भागवत ३।३१।१४)

यथार्थ में शरीर रहित होने पर भी इस पंचमहाभूतात्म रचित शरीर में मिथ्या भूत इन्द्रिय गुण, युक्त चिदाभासात्मक मैं शरीर से

जिसकी महिमा कुंठित नहीं होती, ऐसे सर्वज्ञ, प्रकृति पुरुष के नियन्ता परम पुरुष भगवान् को नमस्कार करता हूँ।

यन्माययोरुगुणकर्मनिबंधनेऽस्मिन्सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण।
नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीति लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण॥
(श्री मद्भागवत ३।३१।१५)

अहा! जिसकी माया से गुणनिमित्तक गुरुतर कर्म रूपी बंधन जीव, इस संसार मार्ग में भ्रमण करते हुए अति कष्ट से स्मृति हीन हो जाता है, उस महान् ईश्वर के अनुग्रह बिना फिर अपने ज्ञान स्वरूप को कैसे पा सकता है, अर्थात् अन्य उपाय नहीं है।

ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देवस्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्त्तितांशः।
तं जीवकर्मपदवीमनुवर्तमानास्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम॥
(श्री मद्भागवत–३।३१।१६)

जो भगवान्, स्थावर, जंगम, सब में अंतर्यामी रूप से विराजमान हैं। उन्हीं प्रभु के बिना मुझे यह त्रिकाल ज्ञान को कौन दे सकता है। अर्थात् वही प्रभु हमको यह भूतपूर्व ज्ञान दिये हैं।

देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनासृग्विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः।
इच्छन्नितो विवसितुं गणयन्स्वमासान्निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन्कदा नु॥
(श्री मद्भागवत—३।३१।१७)

हे प्रभु! दूसरे की देह, विष्ठा मूत्र में पड़े हुए जठराग्नि से जल रहा हूँ और वहाँ से निकलने की इच्छा से महीना गिन रहा हूँ। इस दीन को इस गर्भ यातना से कब निकालोगे।

येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ।
स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः को नाम तत्प्रति विनांजलिमस्य कुर्यात् ॥
(श्री मद्भागवत—३।३१।१८)

हे ईश्वर ! इस गर्भस्थान में दश मास के बाद यह त्रिकाल का दिव्य ज्ञान आपका दिया है। आप निरूपम, दया सागर हैं, हे दीनानाथ ! आप अपने उपकार से ही संतुष्ट हैं। आपको केवल नमस्कार छोड़कर आप के किए उपकार का जीव प्रत्युपकार क्या कर सकता है।

पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ।
यत्सृष्टयाऽऽसं तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्यमिव प्रतीतम् ॥
(श्री मद्भागवत ३।३०।१९)

हे प्रभु ! जिसको पशुओं का शरीर मिला है। ऐसा सप्तावरण युक्त यह जीव, अपने शरीर में केवल सुख दुःख ही देख सकता है। किन्तु जिसकी कृपा से प्राप्त विवेक, ज्ञान से मेरा यह शरीर शम दमादि योग्य बना है। उस पुराण पुरुषोत्तम को मैं बाहर और अन्दर से प्रत्यक्ष देख रहा हूं। मैं ऐसा विश्वास करता हूँ।

सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे ।
यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिर्यदनु संसृति चक्रमेतत् ॥
(श्री मद्भागवत ३।३१।२०)

हे प्रभु ! अतिशय दुःखमय यह गर्भस्थान होने पर भी मैं इस गर्भ से भी अधिक अन्धकूप जगत् उसमें नहीं जाना चाहता हूँ। क्योंकि

बाहर संसार में आपकी प्रचंड माया व्याप्त है वह जीव को घेर लेती है। और साथ ही उसमें अहमत्व, (संसारी) बुद्धि आ जाती है।

तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदाऽऽत्म नैव।
भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरंध्रं मा मे भविष्य दुपसादित विष्णुपादः॥

(श्री मद्भागवत ३।३१।२१)

हे भगवन्! मैं आपके चरणकमलों का आश्रय लेकर इस गर्भ यातना में भी व्याकुल नहीं हूँ। सुहृद् के समान आत्मा का संसार से उद्धार करूँगा, जिससे कि पुनः गर्भयातना न हो। यही पर आपकी भक्ति करूँगा।

श्री कपिल उवाच—

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृपिः।
सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः॥ (३।३१।२२)

इस प्रकार जीव गर्भयातना में विचार करते और प्रार्थना करते हुए पुनः प्रसूतिवायु शीघ्रता पूर्वक दशमास में गर्भ से बाहर निकाल देती है।

तेनावसृष्टः सहसा कृत्वावाक्शिर आतुरः।
विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः॥ (३।३१।२३)

नीचे गिरने से श्वाँस रुक जाती है और बड़े कष्ट से शरीर शून्य (मुर्दा) की तरह सिर नीचे किए गिर पड़ता है।

पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते।
रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः॥ (३।३१।२४)

भूमि पर मूत्र रक्त में गिरा हुआ विष्ठा के कृमि के समान चेष्टा करता है अर्थात् जैसे विष्ठा में पड़े हुए कीट विष्ठा में लिपटे हुए लोम-विलोम उलट पलट होते रहते हैं यही दशा जन्म काल में यह जीव की होती है। इस दुर्दशा को प्राप्त होकर ज्ञान नष्ट हो जाने से रोता है।

परच्छंदं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः।
अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥ (३।३१।२५)

परन्तु जीव का अभिप्राय न जानकर नाना विचार से जीव की इच्छा से प्रतिकूल व्यवहार करते हैं।

शायितोऽशुचि पर्यंके जन्तुः स्वेदजदूषिते।
नेशः कंडूयनेऽङ्गानामासनोत्थान चेष्टने ॥ (३।३१।२६)

पुनः दुर्गन्धमय अपवित्र खटिया पर जिसमें स्वेदज खटमल आदि भरे रहते हैं ऐसी शैय्या पर सुलाते हैं। असमर्थ शिशु, कीड़ों के डंसन करते हुए भी अपना शरीर को खजुला नहीं सकता, और उठ बैठ भी नहीं सकता है अर्थात् गर्भयातना के पश्चात् यह बाल यातना भोगता है।

तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः।
रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥ (३।३१।२७)

गर्भ में उत्पन्न हुआ इसका सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है और शरीर के कोमल चर्म में मच्छर आदि काटते हैं जैसे छोटे कृमिको बड़े कृमि खाते हैं वैसे ही इसको कृमि काट रहे हैं असमर्थ इन दुःखों को भोगते हैं।

इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगंडमेव च।
अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः ॥ (३।३१।२८)

इस प्रकार शैशव तथा पौगंड के दुःख को भोगता है। जब इसकी इच्छा की पूर्ति नहीं होती तब अज्ञानतावश क्रोध होता है। अन्त में पश्चात्ताप करता है।

सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना।
करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः॥ (३।३१।२९)

भैय्या बालक वृन्द ! आप तो पढ़े लिखे हैं श्रीमद्भागवत पढ़ा करें और संत संग में बैठकर इसके यथार्थ अर्थ को समझा करें, और अब फिर यह गर्भ यातना न भोगनी पड़े, इसका विचार करें, क्योंकि कहा गया है। *"भूमि परत भा ढावर पानी, जिमि जीवहि माया लपटानी"* जैसे आकाश से तो जल पवित्र बरसता है। परन्तु पृथ्वी पर स्पर्श करते ही उसमें मृत्तिका युक्त होकर मलीन हो जाता है। ऐसा ही पिता का पवित्र वीर्य ब्रह्म, निर्मल होते हुए भी, माता के गर्भ में पतन होते ही माता की रज (मृत्तिका) वीर्य से संयुक्त हो जाती है। *"विधि प्रपंच गुण अवगुण साना"* माटी में जल की तरह सन जाता है और मलीन हो जाता है। पहले ब्रह्म अवस्था (वीर्य) में इसका गुण था अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ज्ञान, वैराग्य, परन्तु जब माया (माता की रज) इसके साथ युक्त हो गई, इसका पूर्व गुण विकृत होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मत्सर, रूप हो गया। *"को न कुसंगति पाइ नशाई"* माया रूपी कुसंगत में पड़कर ब्रह्म जीव गुण को धारण कर लिया। *"संसर्गजा दोष गुणाभवन्ति"*।

भैय्या बालक वृन्द ! सत्संग करो हाँ अब जीव में काम क्रोधादि का कारण व्यास के शब्दों में सुनिए। देह के साथ ही

बढ़े हुए अभिमान काम क्रोधादि ग्रहणकर पुनः आत्मा विनाश के हेतु कामियों के संग कामी जाता हो जाता है।

भूतैः पंचभिरारब्धेदेहे देह्यबुधोऽसकृत् ।
अहं ममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥ (३।३१।३०)

पुनः इसी शरीर भरण पोषण के लिए नाना दुष्कर्म करता है जिसके कारण मोह बद्ध होकर संसार में पतन होता है और बारम्बार अज्ञात कर्मों के कारण कष्ट भोगने वाला शरीर पाता है। अर्थात् शूकर कूकर शरीर पाता है।

तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् ।
योऽनुयाति ददत्क्लेशमविद्याकर्मबंधनः ॥ (३।३०।३१)

वही कर्म करता है जिससे संसार बन्धन हो। और बारम्बार नाना प्रकार दुःख भोगकर नीच योनियों में जन्म पाता है।

यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ।
आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥ (३।३१।३२)

उदर पोषण हेतु नीचों की संगति और उन्हीं की चाल चलन से यह जीव पहले के समान ही यातना शरीर में प्रवेश करके दुःख को भोगता है। "संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति"।

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ।
शमो दमो भगश्चेति यत्संगाद्याति संक्षयम् ॥ (३।३१।३३)

तेष्वशान्तेषु मूढेषु खंडितात्मस्वसाधुषु ।
संगं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषुच ॥ (३।३१।३४)

जिनके संग से सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, श्री, लज्जा, यश, क्षमा, दम, और अपना कल्याण मार्ग नष्ट हो, ऐसे अशान्त, मूर्ख, देहाभिमानी, शोचनीय, और स्त्रियों के वशीभूत कामियों का संग नहीं करना चाहिए। फिर भी उन्ही का साथ करता है।

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बंधश्चान्य प्रसंगतः ।
योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसंगतः ॥ (३।३१।३५)

दूसरे किसी के संग में ऐसी दुर्बुद्धि नहीं होती, जैसी स्त्री तथा स्त्री गामियों के संग से होती है।

प्रजापतिः स्वां दुहितरंदृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ।
रोहिद्भूतां सोऽन्वधावदृक्ष रूपी हतत्रपः ॥ (३।३१।३६)

ब्रह्मा, निज कन्या के रूप को देखकर मुग्ध हो गए। मृगी रूप धारिणी उस कन्या के पीछे मृग रूप हो कर दौड़े।

तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु को न्वखंडितधीः पुमान् ।
ऋषिंनारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ॥ (३।३१।३७)

एक मात्र भगवान् नारायण के अतिरिक्त और कवन है जो स्त्री की माया से मोहित न हो—"*मृग नयनी के नयनशर को अस लागु न जाहि*"। एवं "*नारि विष्णु माया प्रबल*" संसार में स्त्री की माया बहुत भारी है।

बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ।
या करोति पदाक्रांतान् भ्रूविजृम्भेण केवलम् ॥ (३।३१।३८)

भगवान् की माया के प्रभाव को देखो, यह बड़े-बड़े ब्रह्मचर्य धारी वीरों को केवल अपने नेत्र के कटाक्ष से ही क्षण मात्र में पराजित करती है।

छोटी मोटी कामिनी, सबही विष की बेल ।
शत्रु मारें अस्त्र से, ये मारें हँस खेल ॥

संसार में प्राणी मात्र के संग में विचरण करने वाली भगवान् की स्त्री रूपी माया बड़ी प्रबल है।

संगं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति यानिरयद्वारमस्य ॥ (३।३१।३९)

जो जीव भक्ति योग ज्ञान योग अथवा कर्म योग से उत्तीर्ण होना चाहे सो स्त्री संग न करे। भगवान् की सेवा में जिन्होने आत्म स्वरूप का लाभ लिया है उसके लिए योगी जन स्त्री को संसार सागर में पतन होने का द्वार या नरकका द्वार कहते हैं।

योपयाति शनैर्माया योषिद्देव विनिर्मिता ।
तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥ (३।३१।४०)

देव निर्मित यह स्त्री रूपी माया हाव भाव प्रेम से सेवा इत्यादि के निमित्त से धीरे-धीरे पुरुष के पास आती है। घास से ढके हुए कूप के समान इस माया रूपी स्त्री को अपनी मृत्यु के समान जानना चाहिए। अर्थात् स्त्री अपने वस्त्र के नीचे ढके हुए भग रूपी मय कूप छिपाए रहती

है प्राणी को वश करके उस भव कूप रूपी भगकूप गर्भ स्थान में आत्म सात करती है। फिर तो जीव ऊपर कहे हुए गर्भ यातना को ही भोगता है।

यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृष भायतीम् ।

स्त्रीत्वं स्त्रीसंगतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥ (३।३१।४१)

अन्तकाल में पुरुष स्त्री के ध्यान से ही स्वयं स्त्री होकर जन्म पाता है। स्त्री जो धन, पुत्र, घर, देनेवाले को पति समझती है वह पुरुष के समान आचरण करने वाली माया ही स्त्री रूप में मिली है। जो सदा स्त्री में आसक्त रहते हैं। वही मृत्यु के बाद स्त्री होते हैं।

तामात्मनो विजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मकम् ।

दैवोप सादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥ (३।३१।४२)

उसको पति पुत्र गृह रूप दैव से प्राप्त अपनी मृत्यु ही समझना चाहिए, जैसे व्याध का गायन हरिण के लिए मृत्यु रूप ही होता है।

देहेन जीवभूतेतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन् ।

भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥ (३।३१।४३)

जीव रूपान्तर होकर एक लोक से दूसरे लोक में जाता है और अपने किए हुए कर्मों को भोगता है। फिर भी निरन्तर वही कर्म करता रहता है।

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रिय मनोमयः ।

तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः ॥ (३।३१।४४)

आत्माऽनुवर्त्ती देह ही, भूत इन्द्रिय मनोमय भोग की देह सर्व

प्रकार असमर्थ हो जाती है तब वही जीव का मरण कहाता है। पुनः अविर्भाव, यही जन्म कहाता है।

द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षाऽयोग्यता यदा।
तत्पंचत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥ (३।२।४५)

द्रव्योपलब्धि का जो स्थान है वह जब रूपादि में लीन हो जाता है सभी चक्षुरादि इन्द्रिय भी लीन हो जाती हैं स्थूल देह विकल होने से लिङ्ग देह भी असमर्थ हो जाती है यही जीवका मरण है।

यथाक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा।
तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः ॥ (३।३१।४६)

जीव का वस्तुतः जन्म मरण नहीं होता जन्म मरण का भय, न दीनता, जीव के लिए संयम ही करना चाहिए। धीर पुरुष जीव की गति जानकर संग रहित होकर संसार में विचरण करते हैं।

तस्मान्न कार्यः सन्त्रासो न कार्पण्यं न सम्भ्रमः।
बुद्ध्वा जीवगतिं धीरो मुक्त संगश्चरेदिह ॥ (३।३१।४७)

ज्ञान वैराग्य युक्त यथार्थ में दर्शन बुद्धि से इस माया मय संसार में देहाशक्ति छोड़कर विचरता है।

सम्यक् दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया।
मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥ (३।३१।४८)

किसी कार्य का भय नहीं न किसी प्रकार की कार्पण्यता ही करते

जीव की गति जानकर शुक सनकादिक की तरह संग रहित होकर संसार में सुख से विचरते हैं।

भैय्या प्राणी वृन्द ! इस प्रकार यह जीव अपने किए हुए कर्म को भोगते हुए काल की प्रेरणा से सदा सर्वदा अनादि काल से माया के आधीन शासन होते हुए दंड भोगते हुए शूकर, कूकर, पशु, पक्षी, मसा, मच्छर, कीट, पतंग तथा पितृ आदि लोकों में कभी इन्द्रादि लोकों में भ्रमण कर रहा है। इस दुःख सागर से पार जाने के लिए एक मात्र भगवान् का चरण ही नौका है और उनकी शरणगति ही उपाय है, और भगवान् की भक्ति ही आधार है। एवं प्रभु का नाम ही सहायक वा रक्षक है।

जगज्जैत्रेक मंत्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम्,

भक्ति करत बिनु यतन प्रयासा, संसृतिमूल अविद्या नाशा।

यत्पादप्लवमेकमेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम् ॥

भैय्या प्राणी ! वही भगवान् के नाम बल से भक्ति महारानी का आश्रय लेकर प्रभु के चरण कमलों की शरण लीजिए। *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"*

भैय्या प्राणियों, यह तो श्री मद्भागवत की आज्ञा और जीव की ताड़ना दुःख को सुने, इसको पढ़ो समझो और करो, अब आगे देखिये, अध्यात्मरामायण का एक दृष्टान्त कह रहा हूँ। जो किष्किन्धा कांड में में पक्षिराज संपाती के प्रति चन्द्रमा नामक मुनि कहे हैं।

वानरों ने पूँछा संपाती तुम्हारे पक्ष क्यों नष्ट हुए हैं तो संपाती ने अपना वृत्तान्त कहा और कहा कि चन्द्रमा नामक मुनि द्वारा हम को ज्ञान का उपदेश देने से हमारा देहाभिमान नष्ट हो गया, चन्द्रमा नामक मुनि क्या कहे सो सुनो।

शृणु वत्स वचो मेऽद्य, श्रुत्वा करु यथेप्सितम्।

देहमूलमिदं दुःखं, देहः कर्मसमुद्भवः ॥१२॥

हे वत्स ! अभी मेरी बात सुनो फिर तुमको जो इच्छा हो सो करना, हे संपाती ! दुःख की जड़ है देह, और देह की उत्पत्ति कर्म से होती है। ॥१२॥ कर्म पुरुष की अहंकार बुद्धि से होता है और अहंकार अज्ञान से होता है ॥ १३ ॥ सो अहंकार तपाए हुए लोहे को गोले की तरह सदा चिदाभास युक्त रहता है। अर्थात् लोहा में अग्नि नहीं है परन्तु अग्नि मे तपे हुए के कारण से अग्नि के समान ही दीखता है। ऐसे ही अहंकार एवं देह से ऐसा सम्बन्ध है कि भिन्न होकर भी अभिन्न है। *"जीव एवं अहमिति अभिमाना"* एक गुण धारण कर लिया है इसी से देह भी चैतन्य सी दीखती है ॥ १४ ॥

इस चेतन आत्मा को अहंकार से, मैं देह हूँ, ऐसी बुद्धि होती है और उसी बुद्धि के कारण संसार होता है। यहाँ नाना प्रकार सुख दुःख उत्पन्न करता है ॥ १५ ॥ आत्मा तो सदा निर्विकार है परन्तु सदा मिलना और पृथक् रहना ऐसा मिथ्या सम्बन्ध होने से मैं देह हूँ, मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ। ऐसा प्रतीत होता है ॥ १६ ॥

इसलिए जीव जो नित्य पुण्य तथा पाप कर्मों को करता है उन कर्मों के फल मे जो सुख दुःखादि फल होते हैं, उसमें परवश होकर बन्धन होता है

और नीचे ऊँचे भ्रमण करता है। अर्थात् अच्छा कर्म किया तो स्वर्ग में गया, बुरा कर्म करने से अधोगति (नीच योनि) शूकर, कूकर की गति मिलती है ॥ १७ ॥ यह जीव ऐसा विचार करता है कि मैंने बहुत पुण्य यज्ञ, दान किये हैं। इसलिए मैं स्वर्ग में जाकर स्वर्ग के सुख को अवश्य भोगूँगा ॥१८॥

परन्तु जीवात्मा को अपनी मिथ्या बुद्धि से स्वर्ग में अनेक काल सुख भोगकर फिर "*क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति*" पुण्य शेष होने पर इच्छा न होनेपर भी नीचे गिरा दिया जाता है ॥१९॥ पुनः वह सूक्ष्म शरीर से जीव चन्द्रलोक में आता है वहाँ से चन्द्रमा की किरणों के द्वारा कोहरे (ओस) में आता है। ओस रूप में पृथिवी पर गिरकर अन्नादि में आता है। ओस अन्न में बहुत काल रहकर ॥ २० ॥ पुनः अन्न का चव्य, चोष्य, लेह्य, पेय चार प्रकार का भोजन बनता है उसे पुरुष भोजन करता है। जिससे वीर्य होता है, फिर ऋतुकाल में स्त्री के संग रति करने से वही वीर्य लिंग के मार्ग से स्त्री की योनि द्वारा गर्भस्थान में पड़ता है ॥ २१ ॥

योनिरक्तेन संयुक्तं जरायुपरिवेष्टितम् ।
दिनेनैकेन कललं कृत्वा रूढत्वमाप्नुयात् ॥ २२ ॥

पुनः स्त्री की योनि के रुधिर से मिलकर जेर में (रज) लिपटता है। प्रथम दिन एकत्र मिश्रित होकर कुछ दृढ़ हो जाता है ॥ २२ ॥ पाँच रात्रि में बुद्बुदाकार (अंडा) सात रात्रि में माँस का पिंड सा हो जाता है ॥ २३ ॥ पुनः पन्द्रह दिन में कुछ बड़ा सा पिंड बनकर रक्त से भर जाता है। पचीस रात्रि में उसमें एक अंकुर-सा उत्पन्न होता है ॥ २४ ॥ एक महीना में क्रम क्रम से गर्दन, शिर, कन्धा, पीठ की रीढ और पेट ये पाँच अंग बनते

हैं ॥ २५ ॥ दूसरे महीने में हाथ, पाँव, पसली, कमर और पोंद, बनते हैं ॥ २६ ॥ तीसरे महीने में क्रम से सब अंगों के जोड़ और अँगुलियाँ बनती हैं ॥ २७ ॥ चौथे मास मे मसूड़े, नख और मूत्र स्थान बनते हैं ॥२८॥ छठे मास में कान, गुदा, मूत्र स्थान, नाभि, बनकर इनमें छिद्र बन जाते हैं ॥ २९ ॥ सातवें मास में रोम और शिर के बाल होते हैं। आठवें मास में सब अंग पृथक् पृथक् बन जाते हैं ॥ ३० ॥

इस प्रकार स्त्री के गर्भ में बढ़ता है और नवमें मास में जीव को सब इन्द्रियों का ज्ञान हो जाता है ॥३१॥ यह गर्भस्थ जीव की नाभी से युक्त नाल में रबड़ की नली की तरह एक बारीक छिद्र होता है उसके द्वारा माता के खाए हुए रस से यह गर्भस्थ जीव का पिण्ड पुष्ट होता है, कर्म परवश मरता नहीं है ॥३२॥

स्मृत्वा सर्वाणि जन्मानि पूर्वं कर्माणि सर्वशः।
जठराजलतप्तोऽप्यमिदं वचन मब्रवीत् ॥३३॥

नवयें मास में जब जीव को ज्ञान होता है तो अनेक जन्मों का स्मरण करता है और अपने दुष्कर्मों को स्मरण करता है। ॥३३॥ मैंने पूर्व में हजारों लखों योनियों में जन्म लेकर करोड़ों स्त्री पुत्रादि के मोह सम्बन्ध का और करोड़ों पशु और बांधवों का अनुभव किया ॥३४॥ "कबहुँ न मिल भर उदर अहारा" नाना उपाय करके और नाना न्याय अन्याय से धन उपार्जन करके कुटुम्बियों का भरण पोषण किया परन्तु मैं अभागा भगवान् का नाम ना कभी स्वप्न में भी नहीं स्मरण किया ॥३५॥

इदानीं तत्फलं भुंजे गर्भे दुःखं महत्तरम्।
अशाश्वते शाश्वतवद् देहे तृष्णासमन्वितः ॥३६॥

यह बड़ा भारी गर्भ का दुःख उन्हीं कर्मों का फल है, जो अभी मैं भोग रहा हूँ और अनित्य देह में नित्य के समान तृष्णा कर रहा हूँ ॥३६॥ मैंने कुकृत्य तो बहुत किए परन्तु अपने कल्याण के हेतु कर्त्तव्य कुछ भी नहीं किये, इसी से कर्माधीन नाना प्रकार के दुःख भोग रहा हूँ ॥३७॥

सो परत्र दुःख पावै शिर धुनि धुनि पछिताइ

यह नरक कुण्ड गर्भ से मेरी कब मुक्ति होगी, अब यदि किसी प्रकार यह गर्भयातना से उत्तीर्ण होऊँ तो मैं नित्य सर्वदा भगवान् का ही पूजन स्मरण भजन करूँगा अन्यान्य संसारी स्त्री पुत्रादि विषय से कुछ सम्बन्ध नहीं करूँगा ॥३८॥ इत्यादि विचार करते हुए योनियंत्र से पीड़ित होकर अत्यन्त दुःख से दशवें मास में प्रशव वायु इसको ठेल कर ऐसे निकालती है जैसे नरककुण्ड में डूबा हुआ पापी निकाला जाता है ॥३९॥

पूति व्रणान्निपतितः कृमि रेष इवापरः ।
ततो बाल्यादिदुःखानि सर्व एवं विभुंजते ॥४०॥

जैसे पीव से भरे हुए व्रण (फोड़ा) से कृमि निकलते हों, ऐसे ही गर्भ से जीव निकलता है। पुनः गर्भ यातना के पश्चात् बाल यातनाको भोगता है ॥४०॥

त्वया चैवानुभूतानि सर्वत्र विदितानिच ।

यह सब तुम्हारा भोगा हुआ है और सब मालूम है इसलिए और आगे का यौवनकाल का इतिहास कहना आवश्यक नहीं है। "यौवन ज्वर

केहि नहि पलथाया" अर्थात् यौवन काल का अहंकार ही प्राणी को नाना पाप कर्म में प्रवृत्त करता है।

भैय्या प्राणी वृन्द ! यह *"पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्"* (गर्भ यातना) से कैसे उत्तीर्ण होगा, देखिए बाली नामक वानर श्री राम जी के द्वारा मारे जाने के बाद तारा को पति स्नेह से क्रन्दन करते हुए देख कर भगवान् श्रीरामचन्द्र *"दीन्ह ज्ञान हर लीन्ही माया"* जब देहाभिमान नष्ट होकर आत्मज्ञान हो गया तो पतिके मोह को त्याग दिया और *"लीन्हेसि परम भक्ति वर माँगी"* जिस भक्ति के प्रभाव से अनादि काल से बँधा जीव संसार सागर से उत्तीर्ण होता है।

भैय्या प्राणी ! यह सब संसार स्वार्थी कुटुम्बियों की आशा भरोसा त्याग कर जीव के लिए परम कल्याण करिणी भक्ति महारानी की खोज करो। *"राम भक्ति चिन्तामणि चारू"* भैय्या प्राणियों—

चतुर शिरोमणि ते जगमाहीं, जे मणि लागि सुयतन कराहीं ॥

वही चतुर शिरोमणि है जो राम भक्ति रूपी मणि प्राप्त करने का उपाय कर रहे हैं। देखिए तारा के प्रति श्रीराम जी श्री मुख से क्या उपदेश किया है सुनो।

श्रीराम उवाच—

अहङ्कारादि सम्बन्धो यावाद्देहेन्द्रियैः सह।
संसारस्तावदेव स्यादात्मनस्त्वविवेकिनः ॥१८॥

हे तारा ! यह संसार अहंकार अज्ञान से होता है झूठा है, परन्तु यह अपने आप नहीं छूटता, जैसे सोते समय नाना प्रकार स्वप्न होते हैं।

जब तक जीव सोया है तब तक यह स्वप्न सत्य ही दीखते हैं और जाग जाने से मिथ्या हो जाते हैं।

उसी प्रकार अज्ञान अवस्था में यह पुत्र धन, पति, पत्नी आदि सभी सत्य प्रतीत होते हैं परन्तु संसार नश्वर हैं *"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या"* ब्रह्म ही एकमात्रसत्य है यह ज्ञान हो जाने से सर्व मिथ्या हो जाता है। अनादि काल से अविद्या के कारण और उसके कार्य अहंकार से यह संसार झूठा होने से भी राग द्वेष आदि को उत्पन्न करता है ॥ २० ॥ मन ही संसार है और मन ही बन्धन का कारण है। यह जीव का मनसे घनिष्ट सम्बन्ध है जीव और मन दोनों मिलकर सुख दुःखादि को भोगते हैं॥ २१ ॥ जैसे स्फटिक मणि निर्मल और श्वेत होती है उसमें वस्तुतः में कोई रंग नहीं है। परन्तु लाखादि कोई रंगीन वस्तु पास रहने से उसकी छाया पड़ने से वह मणि में वही रंग दीखने लगता है ॥ २२ ॥ ऐसे ही बुद्धि और इन्द्रिय आदि का सम्बन्ध होने से आत्मा भी तदाकार हो जाती है। और संसारी प्रतीत होती है। मन जड़ उसमें बिना आत्मा के ज्ञान नहीं होता, इसी से आत्मा मन ग्रहण करके अज्ञानी होगयी है और मन के साथ मन से मनन किये हुई विषयों को भोगती है इसीसे राग द्वेपादि मन के गुणों से बन्धन होकर पराधीन होती है और संसार में लिप्त होती है। फिर नाना प्रकार सत् असत् कर्मों को रचती है और उसमें बन्धन होती है ॥ २३–२४ ॥ उन कर्मों के तीन भेद हैं एक शुक्ल अर्थात् अहिंसा, जप, ध्यानादि, दूसरा रक्त, अर्थात् हिंसा युक्त यज्ञादि। तीसरा कृष्ण, अर्थात् पाप कर्मादि, इन्हीं कर्मों के वशीभूत जीव अनादि काल से अनन्त काल तक नीचे ऊपर प्रलय काल पर्यन्त भ्रमण किया करता है ॥२५॥ प्रलय काल में जीव वासना और नाना कर्मों सहित

अन्तःकरण आदि में मिलकर अनादि अविद्या में लीन हो जाता है ॥ २६ ॥

पुनः सृष्टि काल में जीव पूर्व वासना के अनुसार ही उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जीव घटी यन्त्र (रहट) की तरह घूमता रहता है। *"फिरत सदा माया के प्रेरे"* ॥ २७ ॥

भैय्या प्राणी वृन्द ! इस प्रकार अनादि काल का बँधा हुआ जीव, यदि किसी प्रकार दैव योग (घुणाक्षर न्याय) से अथवा यमन को हराम कहने की तरह, किम्वा अजामिल को पुत्र स्नेह से नारायण को बोलाने की तरह पूर्व सुकृत पुण्य उदय हो क्योंकि—

पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न संता । संत मिलन संसृति कर अंता ॥

अति शान्त, सरल स्वभाव भगवान् के भक्तों सन्तों की संगति हो। तब जीव को भगवान् का ऐश्वर्य सहित उदार गुणों को जानने की बुद्धि उत्पन्न होती है ।।२८।। और मेरी कथा सुनने में श्रद्धा होती है जो संसारासक्त प्राणी को अति दुर्लभ है। फिर तो अनायास ही भगवान् के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है ।।२९।। फिर गुरु की शरण लेकर गुरु की कृपा से अपने आत्मतत्त्व का शीघ्र ही ज्ञान हो जाता है और अनुभव होने लगता है। फिर उससे देह, इन्द्रिय मन और अहंकार, इनसे भिन्न सत्य आनन्द और रागद्वेष रहित, द्वैत रहित, आत्मा को जानकर शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ।।३०।३१।। इस तरह जो प्राणी भगवान के कहे हुए मार्ग को सदा सर्वदा विचारता रहेगा वह प्राणी संसारी दुःख में कभी भी व्याप्त नहीं होता। ॥ ३२ ॥

भैय्या प्राणी वृन्द ! देखो भगवान् के कहे हुए ज्ञान को तुम भी निर्मल बुद्धि से विचार करके इसी मार्ग से चलो, संसार दुःख से मुक्त हो

जावोगे। कर्म बन्धन से छूट जावोगे। हम सब का भी पूर्व का बड़ा भाग्य है जो पुण्य क्षेत्र भारत वर्ष, काशी, अयोध्या, प्रयाग सन्निकटवर्त्ती देशों में जन्म मिला है। जहाँ बड़े-बड़े महान्-महान् सन्तों के समुदाय सदा सर्वदा विराजमान रहते हैं, उनका सतसंग करके हम सबके जीवन का कल्याण निश्चय होगा। *"सत संगति दुर्लभ संसारा"* सो हमको सदा सुलभ है। इतना सुपास होने पर भी यदि अपना कल्याण नहीं करोगे तो *"सो परत्र दुःख पावै"* ऊपर कहे हुए वही गर्भयातना का दुःख सामने आ रहा है *"शिर धुनि धुनि पछिताइ"* फिर तो शिर पीट-पीट कर रोना और पश्चात्ताप के सिवाय कोई कर्त्तव्य न रहेगा।

भैय्या प्राणी गण! भगवान् तुम्हें क्या बता रहे हैं।

श्रवणादिक नौ भक्ति दृढ़ाई। मम लीला मति रति अधिकाई॥

दृढ़तापूर्वक भगवान् की बताई हुई नवधा भक्ति से भगवान् की सेवा और मन बुद्धि लगाकर भगवान् की कथा सुनने से तुम भी भगवान् के भक्त बन जाओगे तो तुम्हारे जन्मान्तरों के किए हुए सब पापों को भगवान् नाश कर देंगे और भी भगवान् कहते हैं।

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विज!।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्त जनप्रियः॥

हे भक्तजन! मैं सदा स्वतन्त्र होने पर भी भक्ताधीन रहता हूँ। मैं साधु संत भक्तों को छोड़कर कुछ नहीं चाहता हूँ।

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान्वित्तमिमंपरम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

जो बड़भागी जन, स्त्री, धन, पुत्र, प्राण सब मेरे लिये अर्पण करके मेरी शरण हो गए हैं मैं उनको कैसे त्याग सकता हूँ। या उनसे कैसे अलग रह सकता हूँ।

तेहि ते तुम मोहि अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे॥

भक्तवर्य! यदि आप मेरे हित के लिए अपना गृह कुटुम्ब सब सांसारिक सुखों को तिलांजलि दे दिए तो मैं भी यह सत्य कहता हूँ।

अनुज राज सम्पति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही।
सब प्रिय मोहि नहिं तुमहि समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना॥

भैय्या भक्त वर्य! मैं भी—"*दारागारपुत्राप्तान् प्राणान्*" सर्वस्व तुम्हारे ही लिए अर्पण किया हूँ। "*जन कहँ नहि अदेय कछु मोरे*" ऐसा कोई पदार्थ हमारा नहीं जो तुम्हें अप्राप्य हो। हमारा सर्वस्व भक्तों का ही है।

भैय्या प्राणी वृन्द! प्रभु की यह उदारता को जानते हुए भी—

उमा राम स्वभाव जिन जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥

प्रभु की इस प्रकार उदारता दयालुता को जानते बूझते हुए भी जो प्राणी निष्ठुर हृदय हतभागी, अपने जीवन को प्रभु के चरणों में बलिदान नहीं कर देते हैं। "*कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती*" है और—

बिनु हरि भक्ति हृदय नहिं आनी। जीवत शव समान ते प्राणी॥

वह जीते हुए भी मरे के समान है, जो प्रभु की भक्ति महारानी को अपने हृदय कमल में स्थान न दिये हैं, अर्थात् प्रभु के चरण कमलों से विमुख, भक्ति हीन हैं। "*भवकूप अगाध परे नर ते*" वही अगाध भवकूप माता

की योनि यन्त्र गर्भ यातना में डाले जायँगे और गर्भ यातना के दुःख को भोगते हैं नाना शूकर कूकर आदि दुःख पाते हैं।

भैय्या प्राणी गण! प्रभु हमारे क्या सुपास न किये हैं, हमको बारम्बार आदेश कर रहे हैं कि जीव गण! हमारी भक्ति करो, हमारी पूजा करो, सेवा करो, हमसे प्रेम करो—

कहहु भक्ति पथ कौन प्रयासा। योग न जप तप मख उपवासा॥

केवल *"सरल स्वभाव न मन कुटिलाई। यथा लाभ सन्तोष सदाई"*॥

स्वभाव सरल, मन की कुटिलता दूर कर दो, और जिस समय जो प्राप्त हो उसी में सन्तोष रहो। बस—

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृण सम विषय स्वर्ग अपवर्गा॥

सज्जनों का संग करो, उनसे प्रेम करो, विषय और स्वर्ग वैकुण्ठादि तृण के समान समझो, हमारे भक्तों के लिए स्वर्ग वैकुण्ठादि तृण के समान है। इस प्रकार भगवान् कह रहे हैं।

भैया प्राणी वृन्द! परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्र जी माता कौशल्या को भक्ति का उपदेश दे रहे हैं। अध्यात्म रामायणे, उत्तर कांडे सर्ग ७ श्लोक ५५, माता प्रश्न करती हैं श्रीरामजी उत्तर देते हैं सो मन लगाकर सुनो—

परमात्मा परानन्दः पूर्णः पुरुष ईश्वरः।
जातोऽसि मे गर्भगृहे मम पुण्यातिरेकतः॥ ५५ ॥

भैय्या रामभद्र! तुम सब के अन्तर्यामी परमानन्द स्वरूप पूर्ण पुरुष ईश्वर हो, मेरे बड़े पुण्य के प्रताप से, मेरे गर्भ से अवतीर्ण हुए हो॥५५॥

हे राम ! आज वृद्धावस्था में मुझे तुमसे कुछ प्रश्न करने का अवसर मिला है। अभी तक संसार बंधनरूपी मेरा अज्ञान दूर नहीं हुआ है ॥५६॥ मैय्या अब आप मुझे संक्षेप से ऐसा उपदेश दें, जिससे मैं भी संसार बंधन से छूट जाऊँ ॥५७॥

श्रीराम उवाच—

मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ताः, पुरा मोक्षाप्तिसाधकाः ।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च शाश्वतः ॥५८॥

हे माता, मैंने पहले ही कर्मयोग, ज्ञानयोग, और भक्तियोग, यह तीन मार्ग मोक्ष प्राप्ति के साधन वर्णन किये हैं ॥५८॥ परन्तु भक्ति भिन्न-भिन्न तीनि गुण होने से भक्ति तीनि प्रकार की है। जिसका जैसा स्वभाव होता है उसकी वैसे ही भक्ति भी होती है ॥६०॥ जो प्राणी हिंसा, दंभ, धनादि अहंकारी, परसंतापी, शत्रु मित्रादि गण युक्त, क्रोधी है। इस प्रकार गुणों से युक्त जो भक्ति करते हैं वे तामसी भक्त हैं ॥६१॥ जो जन स्वर्ग राज्यादि या इन्द्रिय विलासिता अथवा धनादि यश, इत्यादि कामना से भक्ति करते हैं। यह राजसी भक्ति है। और जो पुरुष स्वभाव से ही भगवान की भक्ति करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। और जो शुद्ध कर्म भजन, पूजा, पाठ, होम, यज्ञ, तर्पण दानादि करते हैं। दास्य भाव से हमारी सेवा करते हैं इन गुणों से युक्त प्राणी सात्विक भक्त हैं ॥६३॥

मद्गुणश्रवणादेव मय्यनन्तगुणालये ।
अविच्छिन्ना मनोवृत्तिर्यथा गंगाम्बुनोऽम्बुधी ॥६४॥
तदेव भक्तियोगस्य लक्षणं निर्गुणस्य हि ॥

हे माता ! जीव मेरे गुणादि लीलाओं को सुनकर और मुझे अनन्त गुण समूह जानकर उनकी मन वृत्ति मुझमें ऐसी लगती है जैसे नदियों का प्रवाह समुद्र में गति करता है अर्थात् उसका मन हमारे गुणों के सहारे मेरे में पहुँच जाता है। यही भक्ति योग का प्रथम लक्षण है। फिर तो—

अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिर्मयि जायते ॥६५॥
सा मे सालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा।
ददात्यपि न गृह्णन्ति भक्ता ममसेवनं विना ॥६६॥
स एवात्यन्तिको योगो भक्ति मार्गस्य मामिनी।

वह प्राणी किसी प्रकार फल की कामना न करके उसको मेरी अहैतुकी अर्थात् निष्काम भक्ति मिल जाती है। वह भक्ति प्राणियों को सामीप्य, सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य, चार फल को देने वाली है परन्तु हमारे परम भक्त हमारी सेवा बिना वह मुक्ति देने से भी ग्रहण नहीं करते, फिर तो वे—

मम नाम सदाग्राही ममसेवा प्रियः सदा।
भक्तिस्तस्मै प्रदास्यामि नतु मुक्ति कदाचन् ॥

नाम को सदा जपा करते हैं और मेरी सेवा में ही सदा प्रियत्व मानते हैं। ऐसे प्रिय भक्तों को मैं अपनी परा भक्ति ही देता हूँ मुक्ति कभी नहीं देता। *"सगुण उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहँ राम भक्ति निज देहीं"* ॥ यथा—

बहुत कीन्ह प्रभु लषण सिय, नहिं कछु केवट लेइ ॥
बिदा कीन्ह करुणायतन, भक्ति विमल वर देइ ॥

सेवा करने वाले प्रेमी भक्त अपने को सदा बड़भागी समझते हैं। यथा—

हम सब सेवक अति बड़ भागी। संतत सगुण ब्रह्म अनुरागी॥

इसलिए वे भक्त हमारे परम प्यारे होते हैं जो हमारी भक्ति सहित अर्थात् प्रेम पूर्वक सदा सेवा करते हैं। इन्हीं गुणों के योग से अथवा भक्ति के योग से प्राणी तीनों गुणों के अतिरिक्त मेरे भाव को प्राप्त होता है॥६६-६७॥ अथ *"भक्ति के साधन कहौं बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्राणी"* जैसे कहा गया है।

प्रथमहिं विप्र चरण अति प्रीति। निज निज धर्मनिरति श्रुति रीती॥

अर्थात् भक्ति योग से जीव तीनों गुणों को पार होकर मेरा भावुक होता है यथा अपने जातित्व धर्म को पालन करने से उत्तम कर्म योग से मेरी सगुण मूर्ति के दर्शन से, स्तुति आदि षोडशोपचार पूजा से, मुझे स्मरण और प्रणाम से, सब प्राणियों में मेरी भावना से, मेरे भक्तों के सत्संग से, असत्य वस्तु के त्याग से, महात्मा पुरुषों के सन्मान से, दीनों पर दया करने से॥६८॥ अपने समान प्राणियों में मित्रता करने से, यम नियम का सेवन करने से, वेदान्तवाक्यों का श्रवण करने से, मेरे नामों का कीर्तन करने से, संतों के सतसंग से, कोमल स्वभाव से, अहंकार के त्याग से, हमारे भगवत् धर्मों में इच्छा रखने से, इत्यादि। *"षट्दम शील विरति बहु कर्मा"* करके शुद्ध अंतःकरण काम क्रोधादि रहित *"निर्मल मन जन सो मोहि पावा"* मेरे गुणों को सुनकर तत्काल ही प्राणी मुझे किस प्रकार पाता है। जैसे वायु के वेग से सुगंध आपही आकर नाक में प्रवेश

कर जाती है। वैसे ही मैं अपने भक्तों को आप ही आकर मिल जाता हूँ ॥७०-७१-७२॥

यथा वायुवशाद्गन्धः स्वाश्रयाद्घ्राणमाविशेत् ।
योगाभ्यासरतं चित्तमेवमात्मानमाविशेत् ॥७३॥

ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि योगाभ्यास में लगा हुआ चित्त ; आत्माकार हो जाता है, और सब प्राणियों में मैं ही आत्मरूप से व्यवस्थित हूँ, ऐसा विचार कर *"सियाराम मय सब जग जानी। करौं प्रणाम ; सप्रेम सुवानी"* ॥ और *"सबहि मान प्रद आपु अमानी"* होते हैं वही भक्त हमको प्राण के समान प्यारे होते हैं।

सर्वेषु प्राणिजातेषु ह्यहमात्मा व्यवस्थितः ।
तमज्ञात्वा विमूढात्मा कुरुते केवलं बहिः ॥७४॥

देहाभिमानी, मूढात्मा, प्राणियों में द्वेष रहते हुए। जो नाना उपचारों से पूजा करते हैं। वह केवल बाहर देखौवा, एवं विडम्बना मात्र है। उससे मैं संतुष्ट नहीं होता हूँ ॥७४॥ जो प्राणीमात्र का अपमान करते हुए मेरी पूजा करता है। वह पूजा न करने के समान है ॥७५॥ जब तक सब प्राणियों को अपने समान मुझे नहीं देखता। तब तक अपने अपने वर्णाश्रम में रहकर मेरा वा मेरी प्रतिमा आदि की पूजा करे, जब सब प्रकार ज्ञान दृढ हो जाय और सब प्राणियों में मेरी भावना हो तब विरक्ताश्रम में आकर सब प्राणियों को मेरा ही स्वरूप जानकर मेरी पूजा करें ॥७६॥

क्रियोत्पन्नैर्नैकभेदैर्द्रव्यैर्मे नाम्ब तोषणम् ॥
यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्मनश्च परस्य च ।
भिन्नदृष्टेर्भयं मृत्युस्तस्य कुर्यान्न संशयः ॥७७॥

जो प्राणी अपनी आत्मा से परमात्मा को भिन्न देखता है। ऐसे भेद दृष्टि वाले प्राणी को मैं मृत्यु रूप ही हूँ। इसमें सन्देह नहीं, "*काल रूप मैं तिनकहँ ताता*" भिन्न-भिन्न प्राणियों में मैं ही परमात्मा रूप से स्थित हूँ। "*जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं*" ऐसा जानकर सब प्राणियों में मित्रता और अभेद दृष्टि से सन्मान करते हुए। "*सबके प्रिय सबके हितकारी*" होकर मेरी पूजा अर्चा करना चाहिए। तब पूजा सिद्ध होगी।

चेतसैवानिशं सर्वभूतानि प्रणमेत्सुधीः।
ज्ञात्वा मां चेतनं शुद्धं जीवरूपेण संस्थितम् ॥७६॥

और शुद्ध चैतन्य रूप से मैं ही जीव होकर सब प्राणियों में स्थित हूँ। ऐसा जानकर सब प्राणियों को सन्मान आदर और प्रणाम करना चाहिए।

तस्मात्कदापिनूनिचेत भेदमीश्वरजीवयोः।

इसलिए जीव और ईश्वर में कभी भी भेद दृष्टि नहीं करना चाहिए। प्राणी मात्र को अपनी ही आत्मा जानें। यही हमारा परम भक्त है। आप तो हमारी माता हैं मैं आपका प्यारा पुत्र हूँ। आपने जो वात्सल्य स्नेह से हमारी सेवा की है। इसलिए आप तो जीवन मुक्त हैं। श्रीराम जी इस प्रकार माता को भक्ति का उपदेश दिए।

भैय्या पाठक वृन्द! माता कौशल्या तो जीवन मुक्त हैं ही। भगवान् भी हम सबों के कल्याण के लिए ही अति सुगम भक्ति योग का उपदेश दे रहे हैं। हम सबों का जो देहाभिमान है। मैं ब्राह्मण, कुलीन, धनवान, रूपवान, सुंदर बाला, गुजराती, ज्ञानी, विद्वान अच्छे वर्णवाला हूँ। इत्यादि अभि-

मान त्यागते हुए। हम भगवान् की आज्ञानुसार प्राणीमात्र को अपनी ही आत्मा समझें।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसाशन मानै जोई॥

सबसे प्रेम करो, श्रद्धा करो, प्राणीमात्र में ईश्वर भावना करके सब की सेवा करो, तभी भगवान् प्रसन्न होते हैं और तभी हम सबों को भक्ति मुक्ति देते हैं।

भैय्या बालक वृन्द! आज तक जो कुछ भूल हुई सो हुई। "*गतं न शोचामि*" अथवा "*गतस्य शोचनं नास्ति*" वा "*गई सो गई अब राखु रही को*" अब आज से ही प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य करके "*आज्ञासम न सुसाहेब सेवा*" देखिये परम समर्थ देवदेवेश महादेव भी तो यही कहे हैं। "*शिरधरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धर्म यह नाथ हमारा*" और भी देखिये गुरु वशिष्ठ जी "*बड़ वशिष्ट सम जग कोउ नाही*" वह भी भरत लाल को यही समझा रहे हैं।

विधिहरिहर शशि रवि दिशिपाला। माया जीव कर्म अरुकाला॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। योग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि विचार जिय देखहु नीके। राम रजाइ शीश सबही के॥

ब्रह्मा से कीट पर्यन्त राजा रंक यती सती सभी प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य करके उनकी भक्ति सेवा करते हैं। यदि जीव प्रभु की आज्ञा से प्रतिकूल होता है तो क्षण मात्र में ही ब्रह्मा होने पर भी मसा से हीन योनियों में डाल दिया जाता है।

मसकहि करहि विरंचि प्रभु, ताहि मसकते हीन। अससमर्थ रघुनायकहि॥

सर्व समय भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य करके सभी उनका भजन करते हैं। *"रामहि भजहिं तात शिवधाता, नर पामर कर केतिक बाता"*। जब ब्रह्मा विष्णु महेश ही प्रभु की सेवा भजन करते हैं। तो हम सब मनुष्य नीच गति वालों की क्या गणना है !

भैय्या बालक वृन्द ! अब हम सब से जो भूल हुई सो हुई। *"रहत न प्रभुचित चूक किए की"* परन्तु आज ही से जितने दिन जीवन है। भगवान् के चरणों में लगाना चाहिए। और क्षमा माँगना चाहिए कि हे प्रभु ! *"त्राहिमां पाहिनं घोरं रक्ष मां करुणाकर !"* हे करुणा कर ! मैं घोर पापी हूँ शरण हूँ मेरी रक्षा करिए तो *"सुनतहि आरत बचन प्रभु अभय करेंगे तोहि"* तुम्हारी दीन पुकार सुनते ही प्रभु आशीर्वाद देंगे *"अभय सर्व भूतेषु"* भय कोई मत करो।

भैय्या मित्र गण ! *"अति कोमल रघुबीर स्वभाऊ"* प्रभु बड़े दयालु हैं अति कोमल स्वभाव है। *"बेगि पाइहैं पीर पराई"* पर पीड़ा देखते ही द्रवी-भूत हो जाते हैं। हम सबों के दुःख का क्या नहीं निवारण करेंगे। हमारे अपराधों को क्या नहीं क्षमा करेंगे, प्रभु तो बारम्बार हम सबों को कह रहे हैं।

कोटि विप्र बध लागें जाही। आए शरण तजौं नहिं ताही ॥

तो क्या हमारे लिए अपनी प्रतिज्ञा को उलटा देंगे। *"रामोद्विर्नाभि भाषते"* राम झूठा कभी बोलते ही नहीं। *"जौं सभीत आवै शरनाई। रखिहौं ताहि प्राण की नाईं"* जब हम शरण होंगे तभी तो हमारी रक्षा करेंगे। हम सबों को चाहिए कि संसार के नाना विषयों को त्यागकर प्रभु की शरण

हों, और सेवा करके भगवान् को संतोष कराके अपना स्थान अपनी सेवा प्राप्त करें।

भैय्या बालक गण ! हम सब जीव मात्र ही सदा एकान्तवर्त्ति साकेत बैकुण्ठादि लोकों में सेवा.कारी दास हैं।

हम सब सेवक अति बड़ भागी। संतत सगुण ब्रह्म अनुरागी ॥

परन्तु न जानें हम सबों का कौन सा अदृष्ट उदय हुआ, अथवा भगवान् की ही कोई ऐसी इच्छा हुई, वा किस दैव संयोग से ऐसा हुआ कि जिस कारण से आज हम सब जीव, पराधीन संसार सागर कारागार में डाले गए हैं। और नाना योनियों की यातना भोगते हुए यमयातना भोग रहे हैं। अनादि काल से भगवान् से विमुख होकर चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण कर रहे हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रगणों ! अब प्रभु कृपा करके वही देव दुर्लभ दिव्य शरीर मनुष्य का हम सबों को दिए हैं। जो *"नर तनु भव बारिध कहँ बेरो"*। संसार सागर से पार जाने को नौका रूपी है। वही आज हमको प्राप्त हैं। यदि अपने अज्ञानवश, यह बाजी हार जायेंगे तो भैय्या फिर वही लख चौराशी के चक्र में पड़ना होगा। इसलिए बारम्बार हम सबों प्राणी मात्र को आदेश दिया जा रहा है। सब शास्त्र पुराण एक मत होकर कह रहे हैं। *"राम भजिय सब काम बिहाई"*। यदि शास्त्र पुराणों को सत्य मानाजाता है तो अपना कर्तव्य शास्त्र की आज्ञा पालन करना आवश्यक है।

जो न तरै भव सागरहिं, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मंदमति, आतम हन गतिजाइ ॥

एवं, "*सो परत्र दुख पावै*"। और "*शिर धुनि-धुनि पछिताइ*"। फिर भी "*कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ*"। यह कितनी बड़ी अज्ञानता है।

भैय्या! काल का या कर्म का अथवा ईश्वर का क्या दोष है। अपने तो आलस्य तन्द्रा, विषयविलसिता में जीवन बिताया।

बालापन हंस खेलि के खोया, जवानी नींद भरि सोया।
जब बुढ़ापा आय नियरानी, काल को देखि के रोया॥

अब सिवाय पश्चाताप के और क्या होगा बाल्यकाल में तो खेल कूद में समय बिताया। और युवाकाल में शूकर कूकर की तरह युवतियों के साथ विषय विलास में समय नष्ट किया। अब "*वृद्ध भए तनु काँपन लागे, बेटा न नाती पतोहिया*"। बेटा नाती बहू कोई बात तक नहीं पूछता, वृद्धावस्था के कारण सब इन्द्रिय सिथिल हो गईं। हाथ पाँव में कंप होने लगा। अब तो यही, "*शिर धुनि धुनि पछिताइ*"। और कर ही क्या सकता है। फिर तो, "*यमपुर पन्थ शोच जिमि पापी*"।

भैय्या बालक वृन्द! ऐसा नहीं होना चाहिए। "*अपनी करणी–पार उतरणी*" कर्तव्य तो अपने ही को करना होगा।

तुलसी यह तनु खेत है, बीज पुण्य अरु पाप।
जो बोवै सोई लहै, बपा बेटा बपा बाप॥

बाप अपना कमाया भोगेगा, बेटा अपना कर्म भोगेगा। "*कस्य माता पिता बधुः*" कौन का माता, पिता, भाई, बन्धु है। केवल भगवान् ही सबके सर्वस्व बन्धु हैं। उन्हीं की कृपा का अवलम्बन लेकर, और उन्हीं के

चरणों की नौका के सहारे, *"यत्पादप्लवमेकमेवहि भवांभोधेस्तितीर्षावताम्"*। अर्थात् वही प्रभुके चरणों की सेवा का अवलम्बन लेकर, उनके नाम बल से—

सियराम स्वरूप अगाध अनूप विलोचन मीनन को जल है।
श्रुति रामकथा मुख राम को नाम हिय पुनि रामहिं को थल है॥
मति रामहिं सों गति रामहिं सों रति राम सों रामहिं को बल है।
सबकी न कहै तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फल है॥

सब प्रकार से भगवान् की ही शरण लेना, जीवन का इतना ही फल है। भगवान् तो हम सबों को बारम्बार यही कह रहे हैं कि प्राणीगण!

सबकी ममता ताग बटोरी। मम पद बाँध मनहिं बँट डोरी॥

अथवा *"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"* तो भैय्या! भगवान् का कौन दोष है। या काल थोड़े ही कहता है कि कुआँ में कूद पड़ो। काल तो महाकराल कलिकाल होते हुए भी कवि लोग कह रहे हैं कि—

कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर कर विश्वास।
गाइ राम गुण गण विमल, भव तरे बिनहिं प्रयास॥

कलियुग समान तो अच्छा कोई युग ही नहीं है। मनुष्य का दृढ़ विश्वास चाहिए। बिना जप, योग, तप के, बिना परिश्रम के ही, केवल भगवान् का गुणानुवाद, रामायण, गीता, भागवत गान करो अथवा वह भी नहीं, केवल राम नाम ही *"रामराम रटु रामराम जपु रामराम रमु"* उच्चस्वर से रटो, मौन होकर जपो, अन्त रामनाम में ही रम जाओ, तन्मय हो जाओ। *"रामराम जप सब विधि ही को राज रे"* रामराम जपने से ही सारी

विधि वेदोक्त, तन्त्रोक्त एवं गीता, भागवत, रामायण का पाठ, यज्ञ, दान, तीर्थ स्नान, होम तर्पण सभी रामनाम से ही हो जायगा।

गो कोटि दानं ग्रहणेषु काशी प्रयाग गंगाऽयुतकल्पवासः।

यज्ञाऽयुतं मेरु सुवर्ण दानं श्रीरामनाम्नो न कदापितुल्यम्॥

यज्ञ, दान, तप, तीर्थ कुछ भी रामनाम की बराबर नहीं हो सकता, रामनाम से सभी हो जाता है।

तीरथ अमित कोटि शत पावन। नाम अखिल अघ पुंज नशावन॥

भैय्या बालक वृन्द! मित्रगणों! इतनी सुगमता कलिकाल में हमको मिली है कि "योग न मख जप तप उपवासा" कठिन साधन जो "कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन" जो कहने में कठिन, समझने में कठिन, पुनः साधन करने में कठिन, इस प्रकार कठिन साध्य योग करने का परिश्रम यज्ञ के लिए सुमेरु गिरि के समान सुवर्ण अतुलनीय धन जप करने की नाना प्रकार विधि तपस्या करने को दश हजार वर्ष एक पाव से खड़ा होना, चान्द्रायण आदि व्रत करना किम्वा किसी प्रकार का यम नियम अथवा नाना प्रकार शौचाशौच कुछ भी आवश्यक नहीं केवल "प्रगट प्रभाउ महेश प्रतापू" अतएव "प्रभाव सिद्धि" मुख से उच्चारण करते ही सिद्ध फल प्राप्त होता है।

बारेक नाम कहत नर जेऊ। होत तरण तारण सम तेऊ॥

संध्या, प्रातः, दुपहर अथवा सर्वकाल जभी इच्छा हो खाते-सोते उठते, बैठते, स्नान करके बिना स्नान किये सोए हुए, बैठे हुए, रास्ता चलते फिरते, जैसा भी हो। हर एक समय में केवल राम नाम दो अक्षर कहते

ही सब विधि, ताथ व्रत, योग उपवास, वेद, रामायण का पाठ यज्ञ, होम, तर्पण, सभी कुछ हो जाता है। तो भैय्या काल का क्या दोष है। और कर्म तो जो हम करेंगे वही न होगा। कर्म थोड़े ही कहता है कि पाप करो या पुण्य करो तो कर्म का भी क्या दोष है।

भैय्या बालक गण! काल कर्म ईश्वर किसी का दोष नहीं है दोष तो है अपनी दुर्बुद्धि का "*बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा*" जो बोया है वही काटेंगे और जो दिए हैं सोई पावेंगे। "*कहु के लहे- फल रसाल बबुँर बीज बपत*" कहीं कोई बबूँर बोकर आम का फल पाया है। हम बबूँर का बीज बोवेंगे वृक्ष लगावेंगे और कहेंगे हम आम तोड़ेंगे, मक्का, कुलथ, बाजरी, खेत में बुनेंगे कहेंगे धान गेहूँ काटेंगे। यह क्या कभी हो सकता है। तैसे ही हम करेंगे पाप कहेंगे बैकुण्ठ का राज्य हमको दे दो, यह क्या कभी हो सकता है। यह मनोरथ संपूर्ण मिथ्या है।

भैय्या बालक वृन्द मित्रों!

जिमि सुख चहै अकारण कोही। सुख संपदा चहै शिव द्रोही॥
लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥

ऐसे ही "*हरि पद विमुख परम गति चाहा*" बिल्कुल असंभव है ऐसा कभी भी नहीं हो सकता।

हिम ते अनल प्रगट बरु होई। विमुख राम सुख पाव न कोई॥

चन्द्रमा से अग्नि पैदा हो सकती है परन्तु राम से विमुख जीव सुख कभी भी नहीं पा सकता। क्या हम सबों के लिए राज्य शृंखला राज्य शासन, राज नियंत्रण, उठ जायगा। जो बड़े-बड़े कौंशिल मेम्बरों के द्वारा

राज्य नियम बना है। अर्थात् जो शिव ब्रह्मा, विष्णु, सनकादि, नारद, व्यास आदि सब ऋषि मुनि योगीश्वरों की सर्वसम्मति से, वेद शास्त्र, पुराण, उपनिषद्, इतिहास, स्मृति, संहिता, इत्यादि जीव के कल्याण के लिए शासन सुरक्षण राजनीति बनाई गई है। वह क्या मेरे लिए उल्टा हो जायगी। यह अति असंभव है।

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिय राम पद पंकज नेहा॥

भैय्या यह तो सर्व सम्मति से निश्चित है जा जैसा कर्म करेगा वह वैसा ही फल भोगेगा।

भैय्या बालक वृन्द! मित्रों! तुम सब तो जानते हो कि दुनियाँ दो रंगी है। इसमें पाप है, पुण्य है। उसके ग्राहक भी पापात्मा है पुण्यात्मा है। साधु है, असाधु है। यथा—

सुख दुःख पाप पुण्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥

इत्यादि दो प्रकार की सृष्टि है। परन्तु—

गुण अवगुण जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥
खलअघ अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥

भला बुरा सब कोई जानता है, किन्तु जिसमें जिसकी रुचि होती है उसी को ग्रहण करता है। अतएव दुष्ट प्राणी अवगुण लेते है। साधु जन गुण लेते हैं। साधु असाधु की पहचान इस प्रकार है।

संत असंतन की असि करणी। जिमि कुठार चन्दन आचरणी॥

जैसे कुल्हाड़ी और चन्दन वृक्ष का आचरण होता है। अर्थात्—

काटै परशु मलय सुनु भाई। निज गुण देइ सुगंध बसाई॥

भाइयों! देखो कुल्हाड़ी तो चन्दन को जड़ से काटती है। और चन्दन कुल्हाड़ी के इस प्रकार अपने ऊपर कुठाराघात करते हुए भी अपनी सुगन्धि कुल्हाड़ी में दे देता है, क्षण मात्र वह कुल्हाड़ी भी चन्दन की सुगन्ध से सुगन्धित हो जाती है, फलतः "*ताते सुर शीशन चढ़त-जगवल्लभ श्री खंड*"। और "*अनल दाहि पीटत घनहि, परशु वदन यह दंड*"। चन्दन जगत पूज्य होता है अतः सब देवता अपने शिर पर धारण करते हैं। अर्थात् देवताओं के मस्तक पर चन्दन चढ़ाया जाता है। और कुल्हाड़ी के मुख को अग्नि में अच्छे से तपाकर लोहा के घन से पीटा जाता है यह दंड पाती है। अर्थात् कुल्हाड़ी बारम्बार काष्ठ काटते-काटते जब उसका मुँह मोटा हो जाता है तब लौहकार के लौहशाला में कुल्हाड़ी तपाकर घन से पीटी जाती है

भैय्या बालक वृन्द! इसी प्रकार साधुजन दुष्टों से सताये जाते हुए भी, देवताओं से भी पूज्य होते हैं। और दुष्ट जन नाना प्रकार बारम्बार साधुजनों को दुःख दे देकर पापात्मा होकर यमदूतों द्वारा कुंभीपाक आदि नरकों में तपाए जाते हैं और लोहा के बड़े-बड़े मुग्दरों से उनका मुख पीटा जाता है। यह दंड अति हैं। इसी प्रकार कल्पान्तरों, जन्मान्तरों पर्यन्त में यम यातना भोगते हुए बहुत काल कुंभीपाकादि नरकयातना भोगते हैं। यथा—

जो शठ गुरु सन ईर्षा करहीं। रौरव नरक कोटि युग परहीं॥

अर्थात् शास्त्रों पुराणों में गुरु से ईर्षा द्वेष करना पाप है। यदि प्राणी गुरु से किसी कारण ईर्षा द्वेष करते हैं वह एक करोड़ युग रौरव नरक में पतन किये जायँगे। यह तो निश्चय होगा, किन्तु शिष्य कहे हमको साकेत वैकुण्ठ ही मिले तो यह कैसे होगा। शास्त्र में सर्व सम्मति से निश्चित है भगवान् के चरणों में प्रेम करो उनकी भक्ति करो, सेवा करो परन्तु हम यह कुछ नहीं करते हैं तो—

भवकूप अगाध परे नर ते। पदपंकज प्रेम न जे करते॥

यह तो निश्चय ही संसार सागर में पतन किये जायँगे। भैय्या यही का फल न हम आज इस संसार दुःख को भोग रहे हैं। फिर भी '*कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ*'। काल को कर्म को ईश्वर को झूठा दोष लगाते हैं, कर्म तो किया नरक जाने का, और इच्छा करते है वैकुंठ जाने की, ऐसा क्या कभी हो सकता है। हमारे लिए क्या राज का शासन उठ जायगा, नहीं-नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता भैय्या यह भावना तुम्हारी ऐसी है। यथा—

सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन शुभगति व्यभिचारी॥
लोभी यश चह चारु गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी॥

यह विपरीति भावना आकाश में दूध दुहने के सामन, अतएव झूठी है। तुम्हारा मनोरथ झूठा है। हम जैसा कर्म करेंगे वही फल पावेंगे यह बिल्कुल सत्य है।

वारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

भैय्या प्राणी वृन्द ! यह अटल सिद्धान्त है अपेल सिद्धान्त है। यह टल नहीं सकता, इसकी अवज्ञा नहीं हो सकती, जरूर मानना पड़ेगा। हाँ एक ही मार्ग है।

एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन प्रभु पद प्रेमा ॥

काल धर्म नहि व्यापहिं ताही। रघुपति चरण प्रीति अति जाही ॥

भैय्या प्राणी ! काल, कर्म, गुण, स्वभाव यदि हम प्रभु के चरणों के सेवक अनुरागी भक्त बन जायेंगे तो सब हमारे अनुकूल हो जायेंगे। देखिये लंका सारी जल गयी किन्तु *"एक विभीषण कर गृह नाहीं"* विभीषण श्रीराम के भक्त होने के कारण अग्निदेव उनके अनुकूल थे।

पापिन को यमराज कहावैं। धर्मिन को धर्मराज बतावैं ॥

यमराज और धर्मराज एक ही व्यक्ति का नाम है परन्तु पापियों को शासन करने के लिए यमराज है। और पुण्यात्माओं को सुख देने के लिए धर्मराज है। भगवान् स्वयं कह रहे हैं कि पापियों को पाप कर्मों के फल भोगाने के लिए—

काल रूप मैं तिन कहँ ताता। शुभ अरु अशुभ कर्म फल दाता ॥

पुण्यात्माओं को सुख देने के लिए मैं ही—*"करौं सदा तिनकी रखवारी। जिमि बालकहिं राखु महतारी"* ॥ माता, पिता के समान भरण, पोषण करके सुख देता हूँ।

भैय्या प्राणी गण ! भगवान् बड़े दयालु हैं बड़े कोमल स्वभाव वाले हैं, बड़े उदार हैं

"अति कोमल रघुवीर स्वभाऊ"। "अस सुभाव कहुँ सुनौ न देखौं" ॥

भैय्या! तुम्हारे सब अपराधों को क्षमा कर देंगे। "सब अपराध क्षमहिं प्रभु तोरा"। अथवा यद्यपि मैं अनभल अपराधी हूँ।

तदपि शरण सन्मुख मोहिं देखी। क्षमि सब करिहहिं कृपा विशेषी॥

कारण कि प्रभु अति सरल स्वभाव वाले हैं। "शील सकुच सुठि सरल सभाऊ। सपनेहुँ अनभल कीन्ह न राऊ"॥ भगवान् शत्रु का भी अमंगल नहीं चाहते अर्थात् पापी को, राज्यद्रोही को भी शासन करते हैं दण्ड देते हैं तथापि उसके मंगल के ही लिए, मंगल कामना ही करते हैं। "निर्वाण दायक क्रोध जाकर"। जिसको क्रोध करके मार भी देते हैं तब भी उसको मुक्ति देते हैं। देखिए—

जे मृग राम बाण के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥

और भी देखिये लंका में रावण कितना बड़ा दुराचारी था, परन्तु उसकी सारी सैन्य को—"खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो याचत योगी"॥ "देहि परम गति" क्यों "बयर भाव मोहि सुमिरत निशचर" भैय्या! ऐसे उदार प्रभु को "सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मति मंद ते परम अभागी"॥ इतनी बड़ी उदारता देखते, सुनते जानते हुए भी जो मनुष्य उन प्रभु का भजन सेवा भक्ति नहीं करते हैं। वे मनुष्य बुद्धिहीन, अभागी हैं।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हें मुक्त निशाचर झारी॥
खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिवर पावन॥

भैय्या भाग्यी भए! ऐसे दीन हितकारी, दीन बन्धु, पतित उद्धारण पतित पावन जो श्रीराम हैं उनकी शरण हम न लेकर स्त्री, पुत्रादि की

शरण लिये हैं जो सदा स्वारथी हैं तो हमसे बढ़कर और कौन मन्दबुद्धि हतभागी होगा।

जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न विपतिजाल नर परहीं॥

भैय्या! ऐसे उदार प्रभु को जानते हुए भी यदि उनसे विमुख है तो क्यों नहीं संसार सागर में नाना आपत्ति विपत्त भोगेगा क्यों नहीं दैहिक, दैविक, भौतिक, तापों से तपाया जायगा, अवश्य संसार दुःख भोगना हम सबों को योग्य ही है।

भैय्या प्राणी गण! हम जीव मात्र ही सदा भगवान् के आज्ञाकारी सेवक हैं, अंग-अंगी के समान सेवाकारी है। यथा—*"सेवक कर पद नयन सों"*। हम और प्रभु एक आत्मा है, एक वस्तु है, अन्तर इतना ही है कि अल्पज्ञ और सर्वज्ञ, अणु और समूह बस जीव अणु है भगवान् समूह हैं, जीव अल्पज्ञ है, भगवान सर्वज्ञ हैं, तो अल्पज्ञ ही सर्वज्ञ का सेवक होता है और अणु ही समूह को सन्मान देता है। यथार्थ में भगवान् और जीव, *"ब्रह्म जीव इव सहज संघाती"*। अथवा *"नर नारायण सरिस सुभ्राता"*। *"सो तुम ताहि तोहि नहि भेदा"*। सो अर्थात् राम जो हैं तुम वही हो, उसमें आप में कुछ भेद नहीं है। *"बारि बीचि इव गावहिं बेदा"*। वेद कहते हैं जीवतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व ऐसा है जैसे जल और जल की तरंग अतएव दोनों एक ही है, फिर भी अणुसमूह जैसा, जलसमूह है और तरंग अणु है। भगवान् विभु हैं, जीव उनका वैभव है अतएव जीव सदा सेवक है और प्रभु सेव्य हैं। *"सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि"*। भैय्या! राम शब्द तो एक ही है फिर र ब्रह्म, और म जीव, कहा जाता है। देखिए भगवान् ब्रह्म परमात्मा श्री रामजी जीव रूपी श्री लक्ष्मण को समझा रहे हैं।

श्रीराम गीता

भैय्या भाग्यी गण ! एक समय की बात है भगवान् श्रीराम जी माता श्री जानकी जी के सहित पंचवटी में स्फटिक शिला पर विराजमान हैं श्री लक्ष्मण जी सेवा करते-करते प्रश्न करते हैं कि हे प्रभु !

भगवन्! श्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकीं गतिम्।

त्वत्तः कमलपत्राक्ष ! संक्षेपाद्वक्तुमर्हसि ॥(अध्यात्म-अ.१७)

ज्ञानं विज्ञानसहितं भक्तिवैराग्यबृंहितम् ।

आचक्ष्व मे रघुश्रेष्ठ वक्ता नान्योऽस्ति भूतले ॥(अध्या०-अ०१८)

हे भगवन ! हे कमल नयन ! हे भैय्या ! मैं अपने एकान्त मोक्ष की गति जानना चाहता हूँ सो आप संक्षेप से वर्णन करें ॥ १७ ॥ भक्ति को बढ़ाने वाला ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान, भक्ति सहित कहिए, क्योंकि आपके समान वक्ता संसार में दूसरा नहीं है ॥ १८ ॥

श्रीराम उवाच—

शृणु वक्ष्यामि ते वत्स गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।

यद्विज्ञाय नरो जह्यात् सद्यो वैकल्पिकं भ्रमम् ॥(अध्या०अ०१९)

श्रीरामजी बोले, हे भैय्या लक्ष्मण ! सुनो मैं तुम्हें गुप्त से गुप्त ज्ञान को कहता हूँ, जिसके जानने से जीव शीघ्र ही संसाररूपी ममता भ्रम को त्याग देता है ॥ १९ ॥ भैय्या ! प्रथम मैं माया का स्वरूप वर्णन करूँगा। पुनः ज्ञान का साधन और विज्ञानवर्णन करूँगा ॥ २० ॥ फिर

जानने योग्य परमात्मा के स्वरूप को कहूँगा, जिसको जानने से प्राणी संसार भय से मुक्त हो जाता है। हे लक्ष्मण! शरीर आत्मा से भिन्न है परन्तु उसमें मैं हूँ। ऐसी आत्मबुद्धि होना सोई माया है और वही संसार को रचती है अर्थात् शरीर में आत्मबुद्धि होना ही जीव का बारम्बार संसार में जन्म मरण होता है। हे कुल नन्दन लक्ष्मण! परन्तु यह माया के दो स्वरूप निश्चय किए गए हैं ॥२१-२२॥

विक्षेपावरणे तत्र प्रथमं कल्पयेज्जगत् ।
लिंगाद्यब्रह्मपर्यन्तं स्थूल सूक्ष्मविभेदतः ॥२३॥
अपरं त्वखिलं ज्ञानरूपमावृत्य तिष्ठति ।
मायया कल्पितं विश्वं परमात्मनि केवले ॥२४॥

एक विक्षेप और दूसरा आवरण, उनमें से विक्षेप माया तो स्थूल सूक्ष्म के भेद से महत्तत्व आदि से ब्रह्मा पर्यन्त जगत को रचती है और दूसरी माया आवरण शक्ति से ज्ञान को संपूर्ण अच्छादन किए रहती है, परन्तु वह माया केवल मुझे परमात्मा के ही आधार पर *"मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्"*। अतएव *"जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की"* विश्व को रचती है ॥२३-२४॥

एक दुष्ट अतिशय दुःखरूपा। जावस जीव परा भव कूपा ॥
एक रचै जग गुण वश जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके ॥

रज्जौ भुजङ्गवद्भ्रान्त्या विचारे नास्तिकिञ्चन ।
श्रूयते दृश्यते यद्यत्स्मर्यते वा नरैः सदा ॥२५॥

भ्रम से जैसे रस्सी में साँप की प्रतीत होती है, विचार करने से सम्पूर्ण झूठा है, यह रस्सी साँप नहीं है। ऐसे ही हे लक्ष्मण! जीव जो कुछ सुनता है, देखता है या स्मरण करता है॥२५॥ यह सब स्वप्नवत् मिथ्या है। केवल यह शरीर ही संसाररूपी वृक्ष की जड़ है॥२६॥ पुत्र आदि बन्धन में शरीर ही मूल कारण है। शरीर न हो तो आत्मा के पुत्र दारादि कौन होते हैं॥२७॥

यह शरीर दो प्रकार का है, एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पाँचभौतिक शरीर स्थूल है, और रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गंध यह पंचतन्मात्रा तथा अहंकार, बुद्धि और दश इन्द्रियाँ॥२९॥ और इन्द्रियों के साथ मन, इन अठारह तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर है, और यह चिदाभास है, अर्थात् चित् के सदृश्य प्रतीत होता है और इसमें बुद्धि के द्वारा मैं स्थूल हूँ, कृश हूँ ऐसा भासता है और मूल प्रकृति ईश्वर का स्वरूप है यह सब जड़ होने के कारण इसे देह भी कहते हैं और क्षेत्र भी कहते हैं॥ २८॥

एवंविलक्षणो जीवः परमात्मा निरामयः।
तस्य जीवस्य विज्ञाने साधनान्यपि मे शृणु॥ ३०॥

इस प्रकार जीव तो इन तीनों से विलक्षण अर्थात् भिन्न परमात्म-रूप है, और जन्म मरण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मत्सर आदि विकारों से रहित है। जीव तथा परमात्मा का एक ही अर्थ है, कुछ भेद भाव नहीं है। "*सो तुम ताहि तोहि नहि भेदा*" और दोनों इस देश में है इस देश में नहीं है, इस काल में है, इस काल में नहीं है, इस प्रकार देश काल भेद

से रहित हैं, परन्तु जीव परमात्मा से बहुत काल से वियोग होने के कारण अथवा भिन्न होने के कारण किम्वा अल्पज्ञ व अणु होने के कारण अपने यथार्थ स्वरूप परमात्मा को भूल जाने के कारण वह अपने को जीव कहता है, देह कहता है मनुष्य पशु-पक्षी कहता है—"*माया मस न आपु कहँ, जानि कहे सो जीव*" पुनः "*जीव धर्म अहिमित अभिमाना*" अर्थात् मैं कहता हूँ, मैं भोगता हूँ यह मायिक भ्रम अज्ञान निश्चित हो गया है, इससे वह कहता है मैं जीव हूँ। अब जीव को परमात्मा होने में जो साधन है वह तुम मुझसे सुनो! प्रथम दंभ हिंसा आदि दोषों का त्याग, दूसरा, दूसरों के कठोर वचनों को सहन करना, किसी से कुटिलता न करना, मन, वचन, कर्म और भक्ति से गुरु की सेवा करना ॥ २०–२१–२२ ॥

बाह्याभ्यन्तरसंशुद्धिः स्थिरता सत्क्रियादिषु ।
मनोवाक्कायदंडश्च विषयेषु निरीहता ॥ २३ ॥

बाहर और भीतर निर्मल रहना, सत्कर्मों में स्थिरता रखना, मन में किसी का अमंगल न विचारना, वाणी से कभी किसी को दुर्वाक्य न कहना, हाथ से किसी को न मारना, विषयों में आसक्त न होना, अहंकार का त्याग करना, जन्म और वृद्धावस्था का विचार करना, संसार से विरक्त होना, पुत्र स्त्री धनादि में स्नेह न करना, भले बुरे में समता रखना और मुझ परमात्मा सर्वात्मा राम में अनन्य भक्ति करना, और जहाँ मनुष्यों की भीड़ हो वहाँ नहीं रहना, शुद्ध धर्मात्मा देश में रहना, संसारी विषयी प्राणियों से प्रेम न करना ॥ २३-२४-२५-२६ ॥

आत्मज्ञाने सदोद्योगो वेदान्तार्थविलोकनम् ।
उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानं विपरीतैर्विपर्ययः ॥२७॥

आत्मज्ञान प्राप्त होने का सदा उद्योग करना, वेदान्त के अर्थ का विचार करना, इन साधनों से ज्ञान होता है। और ज्ञान होकर "ज्ञानान्मुक्तिः"। अपने स्वरूप को *"जानत तुमहि तुमहि होइ जाई"*। अपने परमात्मा में तदाकार हो जाता है *"जीव पाव निज सहज स्वरूपा"*। अर्थात् परमात्मा का होकर परमात्मा की सेवा में लीन हो जाता है। और कहे हुए इन नियमों से विपरीत आचरण करने से यही संसार में पतन होकर जीव कहा जाता है ॥३७॥

हे लक्ष्मण ! बुद्धि, प्राण, मन, देह, और अहंकार, इनसे भिन्न नित्य शुद्ध, बुद्ध, सनचित्त आनन्द, मैं ही हूँ, यह निश्चय है ॥ ३८ ॥ और मैं जिस मार्ग से जीव को प्राप्त होता हूँ वही ज्ञान है यह मेरा निश्चय है। और जब साक्षात् आत्मस्वरूप का अनुभव ही विज्ञान है ॥ ३९ ॥ आत्मा सर्वत्र पूर्ण है चिदानन्द रूप से व्याप्त और नाश रहित है। बुद्धि मन आदि उपाधि से परिणाम अर्थात् रूपान्तर आदि विकारों से रहित है ॥४०॥

स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन्ननपावृतः ।
एक एवाद्वितीयश्च सत्यज्ञानादिलक्षणः ॥४१॥

यह अपने ही प्रकाश से देहादिकों में प्रकाश करता है और स्वयं माया आच्छादन रहित है, एक है, अद्वितीय है, और सत्य ज्ञान आदि लक्षणों से युक्त है ॥४१॥ संग रहित है स्वयं प्रकाश है सब का देखने वाला है और विज्ञान से जाना जाता है आचार्य और शास्त्र के उपदेश से जब जीव और परमात्मा का एकाकार ज्ञान हो जाता है। अर्थात् मैं राम का हूँ ऐसा निश्चय हो जाता है। *"रामाय"* अथवा *"मत्परामो जीवः सकलविधि-*

कैर्कर्यनिपुणः" । जब ऐसा दृढ हो जाता है वही अवस्था में कार्य कारण रहित मूल अविद्या तत्काल ही परमात्मा में लय हो जाती है ॥ ४२-४३ ॥

सावस्था मुक्तिरित्युक्ता ह्युपचारोऽयमात्मनि ।
इदं मोक्षस्वरूपं ते कथितं रघुनन्दन ! ॥४४॥
ज्ञानविज्ञानवैराग्यसहितं मे परात्मनः ।
किंत्वेतद्दुर्लभं मन्ये मद्भक्तिविमुखात्मनाम् ॥४५॥

उसी अवस्था को प्राणी सदेह मुक्त कहा जाता है। किन्तु आत्मा में यह सब केवल कल्पित मात्र है। हे रघुकुल के आनन्द देनेवाले भैय्या लक्ष्मण ! ज्ञान विज्ञान और वैराग्य सहित आत्मा का परमतत्त्व परमात्मा सम्बन्धी मोक्ष का स्वरूप मैंने आपसे कहा, परन्तु जो प्राणी मेरी भक्ति से विमुख हैं उनके लिए यह सम्पूर्ण दुर्लभ है ॥ ४४-४५ ॥ जैसे आँख होने से भी प्राणी को रात्रि में अच्छी तरह नहीं दीखता, परन्तु जिसके पास दीपक है उसको अच्छी तरह सब दीखता है ॥ ४६ ॥

एवं मद्भक्तियुक्तानामात्मा सम्यक् प्रकाशते ।
मद्भक्तेःकारणं किंचिद्वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ॥ ४७ ॥

ऐसे ही मेरी भक्ति करने वाले को—

परम प्रकाश रूप दिन राती । नहिं कछु चहिय दिआ घृत बाती ॥

आत्मस्वरूप की अच्छी प्रकार प्रतीति होती रहती है।

हे भैय्या लक्ष्मण ! मैं अपनी भक्ति का कारण थोड़ा सा तत्वतः कहता हूँ सुनो ॥ ४७ ॥

मद्भक्तसङ्गो मत्सेवा मद्भक्तानां निरन्तरम् ।
एकादश्युपवासादि ममपर्वानुमोदनम् ॥ ४८ ॥

हमारे भक्तों का संग, हमारी सेवा तथा हमारे भक्तों की सेवा, एकादशी आदि उपवास, एवं हमारे जन्मादि उत्सवों को मानना उत्सव करना ॥ ४८ ॥

मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः ।
मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्त्तनम् ॥ ४९ ॥

मेरी कथा सुनने में, पाठ करने में, और सुनाने में सदा प्रेम होना, मेरी पूजा में सदा तत्पर होना और सदा सर्वदा मेरे नामों का कीर्त्तन करना ॥ ४९ ॥

एवं सततयुक्तानां भक्तिरव्यभिचारिणी ।
मयि सञ्जायते नित्यं ततः किमवशिष्यते ॥ ५० ॥

हे भैय्या लक्ष्मण ! इस प्रकार निरन्तर जो इन साधनों को करते रहते हैं, उनको सदा सुख देने वाली मेरी अटल प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त होती है फिर उनको को कुछ बाकी नहीं रहता ॥ ५० ॥ इस प्रकार जो प्राणी हमारी भक्ति सदा करते हैं उनको ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है ॥५१॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार मैंने सब कहा है। जो कोई यह मेरे कहे हुए ज्ञान में मन लगावेगा वह मुक्ति का भागी बनेगा ॥ ५२ ॥

भक्तानां मम योगिनां सुविमलस्वान्तातिशान्तात्मनां,
मत्सेवाभिरतात्मनां च विमलज्ञानात्मनां सर्वदा।
सङ्गं यः कुरुते सदोद्यतमतिस्तत्सेवनानन्यधी-
र्मोक्षस्तस्य करे स्थितोऽहमनिशं दृश्यो भवे नान्यथा ॥५५॥

हे भैय्या लक्ष्मण! मेरा भक्त, योगी निर्मल हृदय, शान्तचित्त मेरी सेवा में प्रीति पूर्वक मन लगाने वाला है वह ज्ञान स्वरूप हो जाता है, जो प्राणी ऐसे हमारे भक्तों की संगत करता है और जो मन लगाकर उनकी सेवा करता है, और जो प्राणी वह ज्ञान की प्राप्ति के लिए उद्योग करता है, मोक्ष ऐसे मनुष्यों के हाथ में रहती है और वही प्राणी मुझे प्राप्त कर सकता है अन्य उपाय से न तो मोक्ष ही पाता है और न मेरा दर्शन ही पाता है।

भक्ति तात अनुपम सुखमूला। मिलै जो संत होहिं अनुकूला॥
भक्ति करत बिनु यतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नाशा॥

अन्यथा *"करत कष्ट बहु पावै कोई। भक्ति हीन प्रिय मोहिं न सोई॥*

भैय्या प्राणी वृन्द! भगवान् की श्री मुखवाणी से सब सुने तो भगवान् कहते हैं भक्ति अनुपम सुख देती है परन्तु संतों की सेवा करने से संतों के द्वारा मिलती है, और भक्ति करने से बिना कोई उपाय के आपही आप संसार मोह अविद्या समूल नाश होती है और प्राणी हमको प्राप्त कर लेता है। भक्ति के सिवाय, अन्य मार्ग से यदि बहुत कष्ट करके हमको पाया भी, परन्तु भक्ति हीन हमारी सेवा से विमुख होने के कारण हमारा प्रेमी नहीं होता। *"मोहि भक्त प्रिय संतत"*।

भैय्या प्राणीगण ! भगवान् की सेवा करनेवाला भक्त ही, भगवान् को प्यारा होता है। वही भक्ति सेवा करने का मार्ग आपको वर्णाश्रम में ३८ सोपानों में बताये गये हैं। *"तेहि कर फल पुनि विषय विरागा"* पुनः वर्णाश्रम के इन ३८ सोपानों के फलस्वरूप संसार से वैराग्य प्राप्त करके विरक्त आश्रम में आने से पुनः २८ सोपानों में बताया गया। जो २८ अट्ठाइसवाँ सोपान में नौधा भक्ति रूप नौ सेवायें बताई गई हैं उनमें सर्व-श्रेष्ठ आत्मनिवेदन जो आप नौधाभक्ति विज्ञान प्रकरण में पढ़े हैं वही भावना छोर है वहाँ तक जब प्राणी पहुँच जाता है तब प्रभु का प्यारा हो जाता है तभी यह जीव अपना स्थान प्राप्त कर सकता है।

भैया प्राणी गण ! इसको पढ़ो समझो और करो *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"*।

इस वर्णाश्रम में ३८ और विरक्त आश्रम में २८ कुल ६६ सोपान कहे गये हैं। जिनको गोस्वामी तुलसीदास जी सात ही सोपानों में निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों विभाग का वर्णन करते हुए उसमें १४ महाविद्या जो "अध्यात्म विद्या निधाना", वर्णन किया गया है वह चौदह महाविद्या में से कोई एक ही विद्या को अपनाया है वही भगवान् का प्राण प्यारा हुआ है भगवान् उसी के हृदय में वास करते हैं।

सकल कामना हीन जे, राममक्ति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूषह्रद, तिन्हहुँ किए मन मीन ॥

भैय्या प्राणी वृन्द ! स्त्री, पुत्रादि धन ऐश्वर्यादि सांसारिक सर्व कामना रहित होकर जो बड़भागी जीव राम भक्ति रस में तल्लीन हो चुके

हैं वे श्री रामनामामृत से अपना अगाध हृदय सागर परिपूर्ण किए हुये, मन रूपी मछली को हृदय के अगाध सागर में रक्खे हुए परम सुख शान्ति लाभ किये हैं। "*सुखी मीन जहँ नीर अगाधा*" भैय्या "*जिमि हरि शरण न एकौ बाधा*" परन्तु "*सुख चाहत मूढ़ न धर्म रता*"। अज्ञानी जीवों को उसी सुख की इच्छा तो है परन्तु जीव का यथार्थ धर्म आचरण नहीं करते अर्थात् जीव का धर्म है नाम रूप लीला धामादि प्रभु की सेवा यथा—

इतः परंत्वच्चरणारविन्दयोस्स्मृतिस्सदा मेस्तु भवोपशान्तये।
त्वन्नामसंकीर्त्तनमेव वाणी करोतु मे कर्णपुटं त्वदीयम् ॥
कथामृतं पातु करद्वयं मे पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात्।
शिरश्चते पादयुगं प्रणामं करोतु नित्यंभवदीयमेवम् ॥

भक्त जीव अपने प्रभु भगवान् श्रीरामजी से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु ! दैहिक, दैविक, भौतिक त्रितापों से सन्तप्त जीव को भवसागर से शान्ति देनेवाले आपके चरणकमलों का मैं सदा हृदय से स्मरण करूँ और हमारी जिह्वा सदा आपका नाम कीर्त्तन करे, और कान से आपकी कथामृत को पान करूँ वा श्रवण करूँ, हाथ से आपके चरण कमलों की पूजा करूँ, और शिर से सदा (सर्वदा) आपके चरण कमलों में भूमिष्ठ प्रणिपात साष्टांग प्रणाम करूँ।

सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई ॥
अब प्रभु कृपा करौ यहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती ॥

और भक्तराज विभीषण भी वो भगवान् से ऐसा ही कहे हैं—

उर कछु प्रथम वासना रही । प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ॥
अब कृपालु निज भक्ति सो पावनि । देहु दया करि शिव मन भावनि ॥

और श्री वाल्मीकिजी मानस में चौदह महाविद्या के रूप में जीव कल्याण के लिये तो ऐसा ही कहा। यथा—"*जिनके श्रवण समुद्र समाना*" अर्थात् कान से आपके चरितामृत को पान करें व सुनें और "*लोचन चातक जिन करि राखे*"। नेत्रों से आपकी मंगलमय मूर्ति का दर्शन करें। "*यश तुम्हार मानस विमल हंसनि जिह्वा जासु*"। अर्थात् जिह्वा से आपके मधुर चरित्रों का गान करें। "*प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुवासा*"। नासा से आपका प्रसाद पुष्प तुलसी आदि की सुवास आघ्राण करें, और "*तुमहि निवेदित भोजन करहीं*"। मुख से आपको भोग लगा हुआ नाना प्रकार का मिष्ठान्न आदि भोजन करें, और "*अंग में भूषित वस्त्रादि को पहने*"। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं, "*शीश नवहि सुर गुरुद्विज देखी*"। देवता गुरु ब्राह्मणों को देखने पर प्रेम एवं नम्रता से शिर से प्रणाम करें, "*कर नित करहि राम पद पूजा*"। अपनी सारी रक्षा राम पर निर्भर करके हाथ से श्रीराम की पूजा करें, "*चरण राम तीरथ चलि जाहीं*"। चरण से आपके तीर्थों में भ्रमण करें, अर्थात् सर्वांग से आपकी ही सेवा पूजा भजन होम जप यज्ञादि करें।

भैय्या भाग्यी वृन्द ! यही हम सब जीवों का धर्म है, इसी धर्म को पालन करने से हम सब सुखी होंगे और तभी इन जीवों का कल्याण होगा, तभी अपना "*ईश्वर अंश जीव अविनाशी*"। स्वरूप पा सकेंगे, जो कहा गया है "*जीव पाव निज सहज स्वरूपा*"। तभी हो सकता है भैय्या !

"सोइ रघुनाथ भक्ति श्रुति गाई"। वही भक्ति महारानी की शरण लेने से जीव अपने स्वस्थान पर पहुँच सकता है। परन्तु—

जौ अति कृपा राम की होई। पाँव देइ यहि मारग सोई॥

भैय्या जीव गण! बारम्बार अपने प्रभु से रो-रो कर यही प्रार्थना करो कि हे प्रभु!

अब प्रभु कृपा करौ यहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती॥

ऐसी बारम्बार प्रार्थना करने से प्रभु कृपा करेंगे और अपने चरण कमलों में शरण दे देंगे।

भैय्या प्राणी गण! वाल्मीक जी का तो पूर्व जीवन चरित्र आप जानते ही हैं, कि राम-राम नहीं कह सके, मरा-मरा कहा परन्तु उल्टा नाम के प्रभाव से *"बाल्मीक भय ब्रह्म समाना"*। ब्रह्म, परमात्मा भगवान् के समान सुख ऐश्वर्य प्राप्त कर लिए, परन्तु पहले बहुत काल मरा-मरा जप करते हुए मरा जप की ब्रह्म शक्ति का जब हृदय में प्रकाश हुआ है, तब तक आपने राम-राम घोषण किया, पुनः राम नाम को बारम्बार शतकोटि बार श्लोकों में लिखकर पुनः शुद्ध राम-राम हुआ है कि नहीं इसकी परीक्षा देने के लिए कैलाश पर शंकर भगवान् के पास गए।

शंकर भगवान् शतकोटि श्लोक का सार राम है ऐसा निश्चय करके नामकरण किए बाल्मीकीय रामायण, और आपने *"रामायण शतकोटि महँ लिय महेशजिय जानि"*। अपने मन ही मन रामनाम सार है, वा रामनाम सत्य है आगे कहेंगे, रामनाम को जानकर, *"रचि महेश निज मानस राखा"*। रामनाम की सारी व्याख्या। यथा—

रकाराज्जायते ब्रह्मा, रकाराज्जायते हरिः ।
रकाराज्जायते शंभू, रकारात्सर्वशक्तयः ॥

रकार ही सर्व शक्तिमान है, रकार ही सर्व सृष्टि है, रकार ही सर्वव्यापक है कलिकाल में रकार ही, वा रामनाम ही जीव को भक्ति मुक्ति देकर कल्याण करेगा। इस प्रकार वाल्मीकीय रामायण से शंकर भगवान भी रामनाम के परत्व को अच्छी तरह समझकर हृदयस्थ करके रक्खे। अब जब कलियुग आया तो "*पाइ सुसमय शिवासन भाखा*"। एकान्त समय पाकर पार्वती को कहे। और संसार में प्रचार हो, ऐसा समझकर श्री शंकर जी वाल्मीक जी को प्रार्थना किए कि—आप कलियुग में एकबार और अवतीर्ण हों, अपनी रामयाण को सरल करें, और रामनाम का प्रचार करें। सो वही "*कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीक तुलसी भए*"। और उनके द्वारा मर्त्यलोक में रामनाम को—

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविता शाखां वन्दे वाल्मीक कोकिलम् ॥

वाल्मीक रूपी कोकिला (कोयल) कविता रूपी डार पर बैठ कर मधुर से मधुर "*रामनामामृतम्*"। राम राम राम राम की ध्वनि गुंजार किए, जो अति मनोहर—

कुहूँ कुहूँ कोकिल ध्वनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥

वह परम मधुर, परम मनोहर, परम स्वादिष्ट रामनामामृत सरस सुन्दर ध्वनि सुनकर मुनियों का ध्यान भंग हो गया।

श्री मानस-मर्म

भैय्या बालकवृन्द ! अब यहाँ से मानस मर्म आरंभ होरहा है। यथा—

सोइ वसुधा तल सुधा तरंगिनि । भव भंजनि भ्रम भेक भुवंगिनि ॥
रामचरित मानस यहि नामा । सुनत श्रवण पाइय विश्रामा ॥

वही *"रामनामामृत"*। श्री तुलसी दास जी के *"तव मुखाद् गलितं-गीतं कथामृत रसायनम्"*। मुखारविन्द रूपी बादल से रसमय कथामृत वृष्टि होकर, *"भरेउ सुमानस सुथल थिराना"*। और भरकर—

बढ़ेउ हृदय आनन्द उछाहू । उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ॥

मन से उमड़कर वृहद् रूप से प्रेम और आनन्द रूप से प्रवाह किया।

चली सुभग कविता सरिता सी । राम विमल यश जल भरिता सी ॥

कविता रूपी नदी प्रवाहित हो चली जिसमें रामनाम तथा राम सीता का पतित पावन उज्ज्वल यश रूपी जल भरिपूर है। जिसका सारांश है राम नाम।

यहि महँ रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुराण श्रुति सारा ॥

इसमें रघुपति राघवेन्द्र भगवान् का नाम रक्खा है। अर्थात् राम, जो पतित पावन, तारक महामन्त्र है और वेद पुराण श्रुति स्मृति का सार है। *"महामंत्र जोइ जपत महेशू"*। अर्थात् *"रामेति परं जाप्यं तारकं संज्ञकम्"*। ब्रह्म स्वरूप, राम नाम ही परम जाप्य है। वही जीव को संसार सागर से तारने वाला "रामतारक" महामन्त्र है। जिसको श्री वेदव्यास अठारह पुराण लिखकर जब संशोधन किए, तो सबका सारांश यही कहा—

सप्त कोटि महामन्त्र चित्त विभ्रान्त कारकः ।
एक एव परो मंत्रो रामेत्यक्षरद्वयम् ॥

अठारह पुराणों में मैंने सात करोड़ महा मन्त्र लिखे हैं परन्तु सब का सार दो अक्षर रामनाम ही परात्पर परम मन्त्र है ।

श्रीरामनामाखिल मंत्र वीजं सञ्जीवनं चेद्हृदये प्रविष्टम् ।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विपतां कुतोभीः ॥

अखिल मन्त्रों का बीज श्रीरामनाम जिनके हृदय में प्रविष्ट हुआ है वही अमरत्व प्राप्ति करके चिरंजीव है, हलाहल प्रलयकाल का दावानल, अथवा मृत्यु के मुख में प्रवेश होते हुए भी "*कालहु सन्मुख गये न खाई*" । काल के सन्मुख होते हुए भी किसी प्रकार का भय नहीं होता है, श्री हनुमान् जी श्रीरामनाम जपते हुए मृत्यु स्वरूपिणी सुरसा के मुख में प्रवेश करके "*बदन पैठ पुनि बाहर आवा*" । बाहर चले आए उनका बाल तक बाँका न हुआ । प्रह्लाद कह रहे हैं । "*रामनाम जपतां कुतो भयं सर्व ताप शमनैक भेषजम्*" । दैहिक, दैविक, भौतिक, सर्वतापों को नाश करने वाला श्रीरामनाम महौषधि है । रामनाम जापक को कहीं पर भी भय नहीं है । "*संसारामयभेषजं सुखकरम्*" संसार रूपी महारोग ग्रस्त प्राणी को श्रेष्ठ औषधि है ।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रों ! संसार में श्रीरामनाम जपने वाले को कहीं पर भी भय नहीं है । सांसारिक दैहिक, दैविक, भौतिक आदि किसी प्रकार का भय नहीं है । यही रामनाम ही प्राणी को संसार सागर से पार उतारता है । श्री गोस्वामी तुलसीदासजी अपने मानस में केवल श्रीरामनाम ही सार रखते हैं । जिसके भय से "*नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं*" अथवा–

पापीहु जाकर सुमिरन करहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥
जासु नाम सुमिरत इक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥

इत्यादि नामों से ही मानस आदि से अन्त पर्यन्त नाम ही का माहात्म्य वर्णन किया गया है, आप सब तो मानस पढ़ते ही होंगे और यदि न पढ़ते हों तो आज ही से पढ़ें, मानस में लिखा है।

जो यह कथा सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं रामचरण अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥

भैय्या बालक वृन्द! श्रीरामजी के चरणकमलों में दृढ़ अनुराग होना ही जीव को नितान्त आवश्यक है। सो मानस के अवगाहन करने से स्वभाव से ही प्राप्त होता है। यदि आप श्रीराम जी के चरण कमलों में प्रेम करना चाहें तो आज से ही मानस नवाह्न अथवा मासपारायण पाठ करना प्रारम्भ करें और इस विधि से करें।

शम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥

और *"सियाराम मय सब जग जानी"* प्राणी मात्र को श्री सीताराम रूप जानते हुए, किसी को कटु वचन न बोलें, और इन्द्रिय निग्रह करके, प्राणियों में समता रखते हुए, शास्त्र की नीति के अनुसार, नियम अटल रहे। इस विधि से पाठ करें। शौच, स्नान, संध्या, तर्पण आदि कर्मांग सहित मास पारायण करें, चाहे नवाह्न करें परन्तु नियम भङ्ग न हो।

भैय्या बालक वृन्द! इस प्रकार मानस का अवगाहन करें, और भगवान् में श्रद्धा भक्ति दृढ़ता और विश्वास होना चाहिए, तब हमारे कार्य्य की पूर्ति होगी और मनोवांछित फल पूर्ण होंगे। कहा गया है *"श्रेनिहु सिद्दि*

को बिनु बिस्वासा" बिना विश्वास के कोई कार्य में सफलता नहीं होती, किसी प्रकार सिद्धि नहीं होती, यदि विश्वास पूर्वक मानस पारायण करेंगे। तो थोड़े दिनों में आप श्री राम जी के परम प्यारे प्रेम पात्र बनकर धन्य-धन्य हो जायेंगे। और परम शान्ति पाकर सत्संग में ही सुखी रहेंगे। और अपने आप ही कहेंगे—

आजु धन्य मैं धन्य अति, यद्यपि सबविधि हीन।
निज जन जानि राम मोहिं, संत समागम दीन॥

फिर तो कुछ भी मिलने को बाकी न रहेगा।

भैय्या बालक वृन्द! मित्रों! मानस मे आपको सब कुछ मिलेगा।

मन कामना सिद्ध नर पावैं। जो यह कथा कपट तजि गावैं॥

यह बिल्कुल अपार चौपाई है, निष्कपट भाव से मानस पारायण करने से सर्व मनोवांछित सिद्धियां होती है।

भैय्या! यह पारायण की महारामायण में पूर्ण विधि लिखी है उसी विधि का कल्याण पत्रिका में भी प्रचार किया गया है। मानस में "सिद्ध महामंत्र" लिखे हैं। मानस की चौपाइयों की सिद्धि मंत्र का विधान जिस कार्य के सिद्धि के लिए जो मंत्र रूपी चौपाई, दोहा सिद्ध करना होगा उन उन चौपाइयों को नीचे बताया जायगा। परन्तु उसकी विधि ऐसी है। जो चौपाई जिस सिद्धि के लिए जप की जायगी उसी दिन रात्रि को ११ बजे से १ बजे तक पहले स्नान, आसन शुद्धि, संध्या आदि करके जो चौपाई या दोहा सिद्ध करना है। उसी चौपाई से १०८ बार अष्टगंध अर्थात् जौ तिल, चावल, शक्कर, धूप, पंचमेवा, अगर, चन्दन, को हवन करना और

इसी चौपाई को १०८ बार जप करना होगा। और विघ्न विनाश के लिए अपने चारों तरफ दिग् बन्धन इस चौपाई से।

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत कर चाप रुचिर वर शायक॥

इस चौपाई को तीन बार पढ़कर अपने चारों तरफ तीन रेखायें खींच देवे। फिर सिद्धि करने की चौपाई का जप करे। फिर तो मनोरथ पूर्ण होने में कुछ संदेह ही नहीं है। प्रत्येक सिद्धि के लिए विभिन्न चौपाइयाँ इस प्रकार हैं—

(१) विपत्ति विनाश के लिये

राजिव नयन धरे धनु शायक। भक्त विपत्ति भंजन सुख दायक॥

(२) शंकट नाश के लिये

जो प्रभु दीन दयालु कहावा। आरत हरण बेद यश गावा॥

(३) क्लेश नाश के लिये

हरण कठिन कलि कलुष कलेशू। महामोह निशि दलन दिनेशू॥

(४) विघ्न नाश के लिये

सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम कृपा करि चितवहिं जेही॥

(५) खेद नाश के लिये

जबते राम व्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥

(६) महामारी नाश के लिये

जय रघुवंश बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृशानू॥

(७) रोग नाश के लिये

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं व्यापा॥

(८) शिर रोग नाश के लिये

हनूमान् अंगद रण गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥

(९) सर्पादि विष नाश के लिये

नाम प्रभाव जान शिव नीके। कालकूट फल दीन्ह अमी के॥

(१०) अकाल मृत्यु नाश के लिये

दो०—नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद यंत्रिका, प्राण जाहि केहि बाट॥

(११) भूत भय नाश के लिये

सो०—बन्दौं पवनकुमार, खल वन पावक ज्ञानघन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम शर चाप धर॥

(१२) दृष्टि (नजर) नाश के लिये

श्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी। निरखहिं छवि जननी तृण तोरी॥

(१३) खोई वस्तु प्राप्ति के लिये

गई बहोर गरीब निवाजू। सरल सबल साहेब रघुराजू॥

(१४) जीविका प्राप्ति के लिये

विश्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥

(१५) दरिद्रता नाश के लिये

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥

(१६) लक्ष्मी प्राप्ति के लिये

जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। यद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

(१७) पुत्र प्राप्ति के लिये

दो०—प्रेम मगन कौशल्या, निशि दिन जात न जान ।
सुत सनेह वश माता, बाल चरित कर गान ॥

(१८) संपत्ति प्राप्ति के लिये

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपत नाना विधि पावहिं ॥

(१९) सिद्धि प्राप्ति के लिये

साधक नाम जपहिं लव लाए । होहिं सिद्ध अणिमादिक पाए ॥

(२०) सुख प्राप्ति के लिये

सुनहिं विमुक्त विरति अरु विषयी । लहहिं भक्ति गति संपति नितई ॥

(२१) मनोरथ सिद्धि के लिये

दो०—भवभेषज रघुनाथ यश, सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिनकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिशिरारि ॥

(२२) क्षेम कुशल के लिये

भुवन चारि दश भरा उछाहू । जनक सुता रघुवीर विवाहू ॥

(२३) शत्रु नाश के लिये

पवन तनय बल पवन समाना । बुधि विवेक विज्ञान निधाना ॥

(२४) शत्रु सामना के लिये

करि सारंग साजि कटि भाथा । अरि दल दलन चले रघुनाथा ॥

(२५) शत्रु से मित्रता के लिये

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिंधु अनल शितलाई ॥

(२६) शत्रु विनाश के लिये

बयर न करु काहू सन कोई । राम प्रताप विषमता खोई ॥

(२७) शास्त्रार्थ में विजय के लिये

तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा । आए भृगुकुल कमल पतंगा ॥

(२८) विवाह के लिये

तब जनक पाइ वशिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै ।
माँडवी श्रुतिकीरति उरमिला कुँवरि लईं हँकारि कै ॥

(२९) यात्रा की सफलता के लिये

प्रविशि नगर कीजै सब काजा । हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥

(३०) परीक्षा उत्तीर्ण के लिये

जेहि पर कृपा करहिं जन जानी । कवि उर अजिर नचावहिं बानी ॥
मोहि सुधारहि सो सब भाँती । जासु कृपा नहिं कृपा अघाती ॥

(३१) आकर्षण के लिये

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलहिं न कछु सन्देहू ॥

(३२) स्नान फल प्राप्ति के लिये

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥

(३३) निन्दा निवृत्ति के लिये

राम कृपा अवरेब सुधारी । विबुध धारि भइ गुनद गोहारी ॥

(३४) विद्या प्राप्ति के लिये

गुरु गृह गए पढ़न रघुराई। अल्पकाल विद्या सब पाई॥

(३५) उत्सव मंगल होने के लिये

सो०—सिय रघुवीर विवाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन कहँ सदा उछाह, मंगलायतन रामयश॥

(३६) यज्ञोपवीत के लिये

दो०—युगुति वेधि पुनि पोहिहहिं, रामचरित वरताग।
पहिरहिं सज्जन विमल उर, शोभा अति अनुराग॥

(३७) प्रेम बढ़ाने के लिये

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती॥

(३८) भगवान् में मन लगाकर सुगम मृत्यु प्राप्ति के लिये

दो०—रामचरण दृढ़ प्रीति कर, बालि कीन्ह तनुत्याग।
सुमनमाल जिमि कंठ से, गिरत न जानै नाग॥

(३९) कायरपन निवारण के लिये

मोरे हित हरिसम नहिं कोऊ। यहि अवसर सहाय सो होऊ॥

(४०) विचार शुद्धि के लिये

ताके युग पद कमल मनाऊँ। जासु कृपा निर्मल मति पाऊँ॥

(४१) संशय निवृत्ति के लिये

रामकथा सुन्दर करतारी। संशय विहँग उड़ावन हारी॥

(४२) अपराध क्षमा के लिये

अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता । छमहु छमामन्दिर दोउ भ्राता ॥

(४३) संसार से विरक्ति के लिये

सो०—भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होहिं भवरस बिरति ॥

(४४) ज्ञान प्राप्ति के लिये

छिति जल पावक गगन समीरा । पञ्च रचित यह अधम शरीरा ॥

(४५ भक्ति प्राप्ति के लिये

दो०—भगत कल्पतरु प्रणतहित, कृपासिंधु सुखधाम ।
सोइ निज भक्ति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम ॥

(४६) श्री हनुमानजी की प्रसन्नता के लिये

सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखेउ रामू ॥

(४७) मुक्ति प्राप्ति के लिये

दो०—जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्ह असि नारि ।
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहिं बिसारि ॥

(४८) श्रीराम दर्शन के लिये

दो०—नीलसरोरुह नीलमणि, नील नीरधर श्याम ।
लाजहिं तनु शोभा निरखि, कोटि कोटि शतकाम ॥

(४९) श्रीसीता दर्शन के लिये

जनक सुता जग जननि जानकी । अतिशय प्रिय करुणा निधान की ॥

(५०) श्रीरामजी की प्रसन्नता के लिये

दो०—केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा शील निधान।
देखि भानु कुल भूषणहिं, बिसरा सखिन अपान ॥

(५१) परात्पर श्रीराम के दर्शन के लिये

भक्त वत्सल प्रभु कृपानिधाना। बिश्ववास प्रगटे भगवाना ॥

भैय्या बालक वृन्द ! वा प्राणी गण ! देखिए मानस में इक्यावन शत (५१००) चौपाइयों में यह इक्यावन (५१) चौपाई सिद्धमन्त्र (महामन्त्र) सम्पुट किये गये हैं एक-एक मन्त्र चौपाई में एक-एक शत, चौपाई सम्पुट की हैं। इसमें से जो कामना सिद्ध करना चाहें तो उसको ऊपर लिखे हुए के अनुसार सिद्ध करके अपनी कामनापूर्ण करें। मानस मन्त्र सार है। परन्तु--

दो०—बिनु विश्वास भक्ति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु स्वपनेहुँ, जीव न लह विश्राम ॥

भैय्या बालक वृन्द ! भक्ति होती है दृढ़ता और विश्वास से, दृढ़ विश्वास न होने से भक्ति का स्वरूप ही नहीं बनेगा, इसलिए आप अपने मन को दृढ़ता और विश्वास दिलाते हुए मन में यह दृढ़ करें कि मैं भगवान् का हूँ और भगवान मेरे हैं। तारतम्यता इतनी ही रहे कि *"सेवक हम स्वामी सिय नाहू"*। मैं सेवक हूँ और श्री सीता नाह अर्थात् श्री राम जी हमारे सेव्य प्रभु हैं। परन्तु मैं भगवान् का हूँ और भगवान् मेरे हैं इस बात का पता आपको पूरा-पूरा मानस रामायण से लगेगा। जब आप मानस को मन में भली भाँति से मनन करेंगे तब आप स्वयं कहेंगे कि। प्रभु—

तब मायावश फिरौं भुलाना । ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥

मैं आपकी माया के वश होकर भूला हुआ संसार चक्र में स्त्री पुत्रादि की माया ममता में भटक रहा हूँ इसी से आपकी उदारता पर ध्यान नहीं आया।

नारि विवश नर सकल गोसाईं । नाचहिं नट मर्कट की नाईं ॥

नट वानर की तरह अर्थात् जैसे नट वानर को अपने वश में करके लकड़ी के ताल पर नचाता है, इसी प्रकार मैं आपकी माया रूपी नारि, के वश में होकर नेत्रों के इशारे पर नाच रहा हूँ। अब मानस पढ़ने से इसका मुझे भली भाँति परिचय प्राप्त हो रहा है। इसी से अन्य सभी स्थानों, पदार्थों, व सभी प्राणियों एवं निजी कुटुम्बियों से, तथा स्त्री पुत्रादिकों से, और सभी परिस्थितियों से, मेरी ममता हट रही है। और मेरे से सब प्राणियों का, सब पदार्थों का, सब परस्थितियों का अधिकार उठा जा रहा है। मेरा यह निश्चय ज्ञान बड़ी द्रुत गति से अनुभव रूप से परिणित हो रहा है कि मुझपर भगवान के सिवाय अन्य किसी का कुछ भी अधिकार अथवा आधिपत्य नहीं है। क्योंकि मैं भगवान् का हूँ। और किसी प्राणी या किसी वस्तु को अब यह कहते नहीं सुनता हूँ कि मैं तुम्हारा हूँ, मैं तुम्हारी हूँ। या तुम मुझे अपना बनाओ, क्योंकि एक मात्र भगवान ही मेरे हैं भगवान् के सिवा और कुछ भी मेरा है ही नहीं। अब यह मुझे पूरा दृढ़ हो गया कि मैं केवल भगवान् का हूँ और भगवान् केवल मेरे हैं। अब मेरे तो "*नान्य गतिः शरणम्*"। हे प्रभु ! अन्य गति नहीं है, अन्य उपाय नहीं है, अन्य आश्रय नहीं है, अन्य कर्तव्य नहीं है,

अन्य पुरुषार्थ नहीं है, आपही मेरी गति है, आप ही मेरे उपाय है, आप ही मेरे सर्वस्व हैं, मैं आपकी शरण हूँ।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्र गण ! मैं सदा भगवान् में ही रहता हूँ। मैं कहीं भी रहूँ, कभी भी रहूँ, कैसे भी रहूँ, परन्तु रहता हूँ भगवान् में ही। आज के पूर्व में जो मेरी धारणा थी कि—*"जगत् सत्यं ब्रह्म मिथ्या"* परन्तु अब वह बदलकर यथार्थ में *"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या"* पूरी प्रतीति हो गयी। मैं अब यह स्त्री पुत्रादि संसार सत्य को जानता ही नहीं हूँ। देखता भी हूँ कि ऐसा देश, काल, कोई है ही नहीं, जो भगवान् में न हो।

देश काल दिशि विदिशिहु माही। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

"प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना" सभीदेश, सभीकाल, भगवान् में हैं और सभीदेश, सभीकाल में भगवान् व्याप्त हैं। इसी से मैं भगवान् की सान्निद्धि का नित्य अनुभव करता हूँ। परन्तु *"प्रेम से प्रभु प्रगटे जिमि आगी"*। *"प्रेम से प्रगट होइ मैं जाना"*। इसी से मेरे सब दोष नष्ट होकर मुझमें शान्ति, दया, करुणा, निरभिमानता, विनम्रता, उदारता, धैर्य, वीरता, अहिंसा, वैराग्य, प्रेम, सद्व्यवहार परसम्मान सबके सुख की भावना, और सब के परमहित की भावना सहिष्णुता आदि सभी सद्गुण आ रहे हैं। मैं भगवान् में हूँ, इसी से भगवान् के सारे गुण मुझमें आ रहे हैं। मैं जब जहाँ जैसे भी रहता हूँ, सदा भगवान् में ही रहता हूँ। परन्तु, यह सब मुझे मानस से ही मिला है।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रगण ! अब आइये मानस देखिए।

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मनमाना॥

इस मानसरोवर में सात सीढ़ी नीचे उतरने की है इसको ज्ञान नयन अर्थात् विचार रूपी नेत्र से देखने में मन मान जाता है कि ठीक है परन्तु—

अतिशय कृपा राम की होई। पाँव देइ यहि मारग सोई॥

भैय्या आप तो रामजी के कृपा पात्र हैं ही—"कबहुँक करि करुणा नर देही"। मनुष्य शरीर पाने के पहिले से ही आप श्रीरामजी के कृपापात्र हो चुके हैं तभी तो मनुष्य शरीर मिला है। आगे मानस मीमांसा पढ़िये।

भैय्या बालक वृन्द ! अब मानस मर्म तथा मानस मीमांसा, एवं मानस सारांश दार्ष्टान्त और दृष्टान्त रूप में पढ़ो।

प्रथम सोपान

भैय्या बालक गण ! देखिये एवं अपने आत्मतत्त्व पर विचार कीजिए। प्रथम जीव मानस के सदृश घाट रूपी मनुष्य शरीर प्राप्त किया। पुनः मानस या मानसरोवर के चतुः पार्श्व पुष्पों का बगीचा, उसके पीछे आम्रादि का बगीचा, पश्चात् वनस्थली है जिसमें नाना प्रकार के पक्षी विहार करते हुए सुन्दर चहकते हैं। "सुमन वाटिका बाग वन, सुरा सुविहंग विहार" जैसे ही जीव मानस के चतुः पार्श्व रूपी मन के चारों तरफ कैशोर अर्थात् बालक्रीड़ा रूपी मनोहर पुष्प बगीचा, बाल्य कैशोर खेल कूद रूपी आम्रादि बगीचा में नगर भ्रमण रूपी विहार करते हुए पुनः वनस्थली विवाहादि की आम में प्रविष्ट होकर वस्तुतः जीव नाना प्रकार विषयानन्द सुख अनुभव किया। यह हुआ दृष्टान्त।

भैय्या बालक वृन्द ! अब यही जीव के यथार्थ अनुभव स्वरूप श्री श्री राम जी मर्त्यलोक में अवतीर्ण होकर प्रथम परममनोहर शिशु लीला किए। यथा—

कबहुँ उछंग कबहुँ बरपलना । मातु दुलारहिं कहि प्रिय ललना ॥

यह हुई पुष्प वाटिका पुनः आम्रादि बगीचा का दृश्य देखिए श्री राम जी *"बड़े भये परिजन सुखदाई"* अयोध्या-नगर भ्रमण, विश्वामित्र आगमन, श्री जनकपुर प्रस्थान, विवाहादि । *"सियराम अवलोकनि परस्पर"* इत्यादि, आम्रादि बगीचा का मनमोहक दृश्य दिखाए । पुनः श्री अवध में आकर विषयानन्द । *"प्रेम प्रमोद विनोद बड़ाई"* इत्यादि वनस्थली का दृश्य स्वरूप परम पावन चरित्र किए । यह मानस का प्रथम सोपान है ।

दूसरा सोपान

भैय्या बालक गण ! मित्रों ! मनुष्य शरीर का कर्त्तव्य है, कुछ काल वर्णाश्रम में रहकर माता पिता की सेवा, देश सेवा, तीर्थ वनादि भ्रमण कुछ पुण्य संग्रह कर वर्णाश्रम स्त्री पुत्रादि विषय से वैराग्य होना कहा जाता है । *"तेहि कर फल पुनि विषय विरागा"* अर्थात् प्रथम सोपान में जीव विषय का अनुभव करके उसके गुण दोष को जानकर वैराग्य लेता है । तब दूसरे सोपान पर पहुँचता है । *"स्वविषयान्प्रयोगेन स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः"* प्रत्याहार अर्थात् वैराग्य लेकर वानप्रस्थ होने से जीव के साथ माया और ब्रह्म साथ चलते हैं । पुनः चित्रकूटादि वन पर्वत कन्दरावों में विचरते हुए भी साथ में माया और ब्रह्म दोनों की सेवा करते हुए । माया का सुहृद परिवार विषय वासना स्त्री पुत्रादि *"यह सब माया कर परिवारा"* वहाँ पर भी पहुँच जाते हैं । परन्तु—

होइ बुद्धि जो परम सयानी । तिन तन चितव न अनहित जानी ॥

कारण कि "ये सब राम भक्त के बाधक" । तब जीव आगे बढ़कर

परमसाध्वी, परामाया श्रीअनुरूपा द्वारा एक पातिव्रत धर्म में प्रवृत्ति कराते हैं। यह हुआ दूसरा सोपान।

तृतीय सोपान

भैय्या बालक वृन्द! जीव जब तीसरे सोपान पर गति करता है और तपोभूमि दण्डकारण्य (एकांत) में प्रवेश करता है और ब्रह्म श्रीराम जी को प्रसन्न करते हुए, अपने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निश्चय करने के लिए, श्रीराम जी से प्रश्न रूप में कहता है। हे प्रभु—

कहहु ज्ञान विराग अरु माया। कहहु सो भक्ति करहु जेहि दाया॥

"ईश्वर जीवहि भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाय"। अर्थात् साधक जीव, अपने आत्मा में परमात्मा के द्वारा कल्पना करके अपने कर्त्तव्य को दृढ करता है। और परीक्षा रूप में सूर्पणखा रूपी आसुरी माया *"जा बश जीव परा भवकूपा"* पास पहुँचती है। और ब्रह्म रूपी श्रीराम जी जीव रूपी श्री लक्ष्मण के पास प्रेरित करते हैं। परन्तु जीव श्री लक्ष्मण जी, माया रूपी सूर्पणखा के मायावी स्वरूप को ब्रह्म श्रीराम जी के द्वारा जानकर, *"तिन तन चितय न अनहित जानी"* अन्त में ब्रह्म जीव की दृढ़ता और निष्ठा को देखकर जीव को सहायता स्वरूप निर्देश करता है। कि यह आसुरी माया है इसका अपने ज्ञान द्वारा खण्डन करो *"कहा अनुज सन सैन बुझाई"* तब वह जीव आसुरी माया को अवज्ञा करके कुरूप करता है *"तब बहोरि सुर करहि उपाधी"* के अनुसार दैवी प्रेरणा से अहंकार रूपी रावण के द्वारा भक्ति रूपी माया सीता का हरण होता है पुनः ब्रह्म और जीव दोनों व्याकु-

पंचम सोपान

पुनः जीव पञ्चम सोपान पर जाकर ज्ञानरूपी हनुमान् द्वारा, शरीर रूपी लंका का मंथन किए पुनः अहंकार रूपी रावण के द्वारा हरण हुई श्री सीता रूपी भक्ति का पता लगाकर पुनः वैराग्य रूपी विभीषण को सखा बनाते हुए इन्द्रिय निग्रह रूपी सेतु बाँधकर ऊर्ध्वरेता रूपी लंका पर आक्रमण किए और शान्ति रूपी सुवेल पर्वत पर विश्राम किये।

अर्थात् श्री रामजी हनुमान द्वारा सीता की खोज लगाकर विभीषण को सखा बनाते हुए समुद्र में पुल बाँधकर लंका पर आक्रमण करके सुवेल पर्वत पर मुकाम किए।

षष्ठ सोपान

पुन, जीव षष्ठ सोपान पर जाता है *"षट् दम शील विरति बहु कर्मा"*। अर्थात् नाना कर्मरूपी इन्द्रियों का निग्रह करते हुए काम क्रोधादि लोभ अहंकार रूपी रावण कुम्भकर्ण मेघनादादि शत्रुओं का संहार करके सीता रूपी भक्ति की प्राप्ति करता है पुनः अपने हृदय कमल रूपी पुष्पक विमान में बैठकर सर्वदा के लिए आप्तकाम होकर परमानन्द हो जाता है पुनः इहलोक लीला समाप्त करके वैकुण्ठ साकेतादि स्वधाम गमन करता है। *"जय पाई सोइ हरि भगति"*।

अर्थात् श्री रामजी लंका पर आक्रमण करके नाना अस्त्रों द्वारा रावण कुम्भकर्ण मेघनाद आदि असुरों का संहार करके सीता की प्राप्ति किये और सीता सहित पुष्पक यान में बैठ कर अयोध्या अपने स्वधाम की यात्रा किए।

सप्तम सोपान

पुनः जीव अपने अन्तःपुर अयोध्या में पहुँच कर सेवा, श्रद्धा, तपस्या, भक्ति से युक्त होकर परमानन्द सुख का अनुभव करता है "*सुखी न भयो अबहिं की नाईं*। अथवा "*फिरत सनेह मगन सुख अपने*"।

अर्थात् श्रीराम जी अयोध्या में आकर राज्याभिषेक इत्यादि राज्य कार्य किए "*राम बैठ कीन्ही बहु लीला*"। श्री सीता महारानी के साथ नाना विलास परमानन्द सत्‌चित् आनन्द "*गए जहाँ शीतल अमराई*"।

यही सत्त सोपान हैं यही मानस मर्म है यह मनसे मनन करने से यथा "*ज्ञान नयन निरखत मन माना*"। यह ऊपर कहे हुए के अनुसार अपने कर्त्तव्यों का करना होता है "*साधन धाम मोक्ष कर द्वारा*"।

भैय्या बालक वृन्द ! अब उपसंहार में देखिए, मानस के मेरे और अपने कर्त्तव्य पर ध्यान दीजिए। मानस का मार्ग, अपनी यात्रा—

एहि महँ सुभग सप्त सोपाना। रघुपति भक्ति करे पंथाना ॥
जो मति कृपा राम की होई। पाँव देइ यहि मारग सोई ॥

प्रभु हमको अपनी अति कृपा रूपी मनुष्य शरीर दिये हैं। जिस शरीर से हम सभों ने मानस मर्म अर्थात् मानस रूपी मन के सात सोपानों को जानने के लिए समर्थ हुए। प्रथम कृपा तो यह है कि मनुष्य शरीर मिला—"*कबहुँक करि करुणा नर देही*"। दूसरी अति कृपा, कि उत्तमदेश, भारतवर्ष आर्यावर्त में, उत्तम कुल में, पुनः उत्तम शरीर, हाथ पाद सर्वांग सुन्दर, पुनः साक्षर भी किए, और अधिक से अधिक कृपा करके अपनी शरण में लिए, अति दुर्लभ साधु संग भी जुटाये हैं। जो संग—

सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दण्ड भरि एकौ बारा॥

जो साधु संग एक निमेष को ही प्राप्त होना दुर्लभ है, परन्तु हमको सदा ही सुलभ है। सदा मानस के सामने घाट पर, जो बुद्धि द्वारा विचार से निर्मित हुआ है।

सुठि सुन्दर संवाद वर, बिरचेउ बुद्धि विचारि।
ते यहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥

अर्थात् सत्संग रूपी चारों तरफ चार घाट बने हैं, उन पर बैठाए हुए हैं। पुनः क्रमशः सोपान में प्रवेश करने की बुद्धि भी प्राप्त है अब तो अपना कर्त्तव्य है कि धीरे-धीरे एक सोपान से दूसरे सोपान पर गति करते हुए क्रमशः अन्तिम सोपान तक उतर कर—*"राम सीय यश सलिल सुधा सम"* पीना है, परन्तु पीना तो अपने ही ऊपर निर्भर है। *"कर्मण्येवाधिकारस्ते"*। कर्म तो अपने ही को करना है। कारण कि—*"कर्म प्रधान विश्व रचि राखा"* संसार में कर्म की ही प्रधानता कही गई है—

नर तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषयरत मंद मंद तर॥

नर शरीर पाकर भी यदि भगवान का भजन नहीं किया और विषय में आसक्त हो गये। ऐसे प्राणियों को नीच से नीच बुद्धि वाला बताया जाता है।

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत पशुभिः नराणाम्।
ज्ञानो हि तेषामधिको विशेषो ज्ञानेनहीनः पशुभिः समानः॥

मनुष्य शरीर में केवल अपने परलोक साधन के ज्ञान की ही विशे-

भैय्या बालक वृन्द! परब्रह्म परमात्मा श्रीराम जी जो यह चरित्र नाटक रूप में किए हैं। यह जीव को उपदेश रूप में दृष्टान्त दर्शाया गया है *"सोई यश गाइ-गाइ भव तरहीं"* प्राणी वही आदर्श को देखकर शिक्षा प्राप्त करेगें और संसार से उद्धार होंगे। आप लीला किए हैं परन्तु जीव के लिए यही आध्यात्मिक रूप में दार्ष्टान्त बनेगा और जीव का यथार्थ कर्त्तव्य कहा गया है। यथा *"यह तनुकर फल विषय न भाई"* यथार्थ में *"नर तनु भव वारिधि कहँ बेरे"*।

भैय्या बालक वृन्द! मित्रों! अब देखिए, मानस का दृष्टान्त, दार्ष्टान्त उसे कहते हैं जो दृश्य देखाया जाता है और दार्ष्टान्त उसे कहते हैं जो दृष्टान्त के अनुसार कार्य किया जाता है। तो श्रीराम जी जो कुछ इस संसार में चरित्र रचना किए हैं और तद्वत् चरित्र किए हैं यही हम जीवों को दृष्टान्त रूप में देखाते हैं। प्राणीगण देखो हम जैसा-जैसा आचरण व्यवहार करते हैं। वैसाही तुम सबको हमारी तो लीला होगी वा खेल होगा और जीवों को *"सोइ यश गाइ-गाइ भव तरहीं"*। जैसे नारद के प्रति कहा गया है कि *"मुनिकर हित मम कौतुक होई"*। हमारी तो लीला होगी परन्तु मुनि का परम कल्याण होगा अज्ञान अन्धकार अभिमान नष्ट होगा। भगवान् श्रीराम जी विश्वविमोहनी आदि माया रचना किये मुनि की आसक्ति हुई। आप माया हरण किए, मुनि अज्ञान अवस्था में प्रभु को शाप दिए। पुनः *"दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया"*। तब मुनि को ज्ञान हो जाता है। प्रभु के चरणों में पड़ते हैं प्रार्थना करते हैं कि—*"मृषा होउ मम शाप कृपाला"*। भगवान् कहते हैं कि—नहीं नहीं, नारद यह तो मैंने एक खेल किया है। *"मम इच्छा कह दीन दयाला"*। मेरी इच्छा से आप मुझे शाप दिए हैं। जब प्रभु *माया दूर निवारी, नहिं तहँ रमा न राजकुमारी"*।

कष्ट सहते हुए, अपने आचरणों के द्वारा ऋषि महर्षियों को उपदेश देकर उन सबों का कल्याण किए, और साथ-साथ मुक्ति भक्ति देकर सुखी बनाए। यह तो हुआ दृष्टान्त अब जीव के लिये यथार्थ कर्त्तव्य, इसी को दार्ष्टान्त में देखिए। यथा "*प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना*"। प्रभु भगवान् श्री रामजी तो समान रूप से सर्वत्र ही विराजमान हैं। प्रभु की प्राप्ति करने के लिए न कहीं जाना है न खोजना है। "*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी*"। वह प्रभु तो अपने हृदय में ही बैठे हैं। और बारम्बार कह रहे हैं कि—

वचन कर्म मन मोरि गति, भजन करैं निष्काम।
तिनके हृदयकमलमहँ, करौं सदा विश्राम॥

तब अन्यान्य साधनों का क्या काम है। अन्यान्य कष्ट करने का क्या प्रयोजन है। "*हरेर्नामैव नामैव*"। यथा—"*नाम निरूपण नाम यतनते*"। "*सोउ प्रगटत जिमि मोल रतनते*"। अथवा "*नाम सप्रेम जपत अनयासा*" "*भक्त होहिं मुद मंगल राशा*"। और *भक्त सुखहिं अनुभवहिं अनूपा*"। अर्थात् नामी की प्राप्ति करने को नाम ही एकमात्र उपाय है। राम का नाम सप्रेम—

राम राम राम राम रामरामराम। राम राम राम राम रामराम राम॥

जिसको मानसकार कह रहे हैं। 'सोरठ' उसको रटो प्रश्न किस को "*दोहा*" दोहै जिसमें अर्थात् "*रामेति वर्ण द्वयमादरेण*"। आदर सहित दो वर्ण (राम, इति) केवल राम "*सब वर्णन पर जोइ*"। जो सब वर्णों के ऊपर है अर्थात् राम—

रामराम रामराम रामराम राम। रामराम रामराम रामराम राम॥

धि समुद् भवम्" प्रेमामृत द्वारा अपने अगाध हृदय को प्रेम पियूष पूर्ण करके मनरूपी मछली को सुख सच्चिदानन्द बनाए रहते हैं। *"सुखी मीन जहँ नीर अगाधा"*। सर्वकाल के लिये सुखी हो जाते हैं।

भैय्या बालक वृन्द! अब तीसरा दृष्टान्त देखिये—

ऋषि हित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्ह बेराकी॥

श्रीरामजी स्वयं ऋषि विश्वामित्र आदि तथा जीव मात्र के कल्याण के लिये। सुकेतु नामक राक्षस की सुता ताड़का के पुत्रों के सहित सारी सेना का संहार किया। यह हुआ दृष्टान्त, अब दार्ष्टान्त में देखिए—

सहित दोष दुख दास दुरासा। दलै नाम जिमि रवि निशि नाशा॥

जीव को सर्वदा दुःख देनेवाली दुराशा रूपी ताड़का और उसके दुःख रूपी पुत्रों तथा नाना दोषरूपी सेना का नाम प्रभु संहार करता है। जैसे सूर्य अन्धकार को नाश करते हैं अर्थात् नाम के प्रभाव से जीव के नाना प्रकार के दोष एवं सर्व दुःख, संसार विषय आशा, दुराशा इत्यादि तत्काल ही नाश हो जाते हैं।

राम नाम के प्रभाव जानि जूड़ी आगि हैं।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि हैं॥

अर्थात् अहंकार रूपी सुकेत की *"सुतवित नारि ईषणा"* दुराशा रूपी ताड़का तथा उसके *"सेनापति कामादि भट"* रूपी पुत्रों, एवं *"दंभ कपट पाखंड"*। रूपी सैन्यों के सहित नाम प्रभु शीघ्र ही विनाश कर डालता है। भैय्या! राम नाम रटो।

भैय्या बालक वृन्द ! श्रीराम जी पूर्ण परब्रह्म परमात्मा हैं। सदा पूर्ण काम हैं, जगज्जननी सीता माता साथ में होते हुए भी सदा मायातीत हैं। परन्तु जीव स्वरूप श्री लक्ष्मण जी, माता, पिता, भाई, कुटुम्ब, समस्त परिवार "*सबकी ममता ताग बटोरी*" अर्थात् "*देह गेह सब सन तृण तोरे*"। जीव मात्र के लिए भगवान् श्रीराम जी आज्ञा देते हैं कि हे जीवगण !

गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोकहँ जानै दृढ़ सेवा॥

गुरु, पिता, माता, भाई, पति, देवता इत्यादि सर्वस्व मुझको ही जानो और सर्व प्रकार दृढ़ता पूर्वक मेरी ही सेवा करना चाहिये।

भैय्या बालक वृन्द ! इसी प्रभु की आज्ञा को जीव रूपी श्रीलक्ष्मण जी भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु !

गुरु पितु मातु न जानौं काहू। कहौं सुभाव नाथ पतियाहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निज गाई॥

"*मोरे सबुइ एक तुम स्वामी*"। मेरा और कोई भी नहीं है, आप ही मेरे सर्वस्व हैं।

यही हुआ "*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं*" अथवा "*अनन्याश्चिन्तयन्तोमाम्*" और लोक कल्याण के लिए जो शिक्षा दी गई है कि—"*पुरुष त्याग सक नारिहीं जो बिरक्ति मति धीर*" तो श्री लक्ष्मणजी धीर मति से वैराग्य लेते हैं। स्त्री, कुटुम्ब, धन, ऐश्वर्य, तथा शारीरिक सौख्य। "*देह गेह सब सन तृण तोरे*"। सब कुछ तृणवत् त्याग करते हुये प्रभु श्रीरामजी की सेवा में चल पड़ते हैं। परन्तु सांसारिक प्राणी मोह ममता वश सारे नगरवासी तथा निज परिवार सभी घेरे हुए अपने सांसारिक माया मोह में बँधना

चाहते हैं। साथ-साथ चल रहे हैं, रोते हैं, नाना प्रकार प्रेम दिखाते हुये अनशन करते हैं। परन्तु—

होइ बुद्धि जो परम सयानी। तिन तन चितव न अनहित जानी॥

श्रीरामजी तो स्वयं ब्रह्म ही हैं, श्रीसीताजी भी मायाधीश्वरी हैं। परन्तु जीवरूपी लक्ष्मणजी किसी की माया ममता के वश नहीं होते। किसी के मोह पाश में नहीं फँसते, परब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी लोगों को अनेक प्रकार समझावें। परन्तु मोहाबद्ध सांसारिक विषयी, जीव किसी प्रकार नहीं माने। तब "सीस नाइ रथ हाँकेउ ताता"। ये जीव संसार में विषय बन्धन में मोहाबद्ध प्राणी हैं। विषय कुटुम्बादि में बँधे हुये हैं और मैं तो संसार के उपदेश तथा कल्याणार्थ वैराग्य ले लिया हूँ। इसको यथार्थ दिखाना चाहिये। तभी तो लोगों को शिक्षा मिलेगी। अन्ततोगत्वा, सबको त्यागते हुये, चित्रकूट पधारते हैं। यहाँ श्री भरतलाल पहुँचते हैं, जिनमें श्रीरामजी का अति ही प्रेम था। वे सारे दल बल गुरु वशिष्ठ विश्वामित्रादि के सहित अपनी सारी माया ममता दिखाते हैं। इतना तक कि वे तीनों भाई आपके बदले वन में जाते हैं। परन्तु आप अयोध्या को लौट जायँ। लेकिन श्रीराम जी सत्य प्रतिज्ञ, किसी की एक न मानी सब की दुखियों का और मोह ममता प्रेम का खण्डन करते हुये वानप्रस्थ हो ही गये। यह हुआ रामजी का तीव्र त्याग और वैराग्य।

भैय्या पाठक वृन्द! अब दार्ष्टान्त में देखिये, जीव का कर्तव्य है, विरह में निवृत्त होना, परन्तु जिस किसी कारण से गृह कुटुम्बादिकों से विरक्ति आवे, तो तभी एक ही पुत्रादि सब की माया ममता त्यागते हुए,

संसारासक्ति से वैराग्य ले लेना चाहिए। क्योंकि स्त्री पुत्रादि ही जीव के बन्धन के कारण हैं। परन्तु श्रीरामजी की तरह दृढ़ वैराग्य लेना चाहिए। नहीं तो माया अपनी कला से गृह कुटुम्बियों के द्वारा अनेक युक्ति करके जीव को पुनः फँसा लेती है।

भैय्या बालक वृन्द! शुक, सनकादि, नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, विल्वमंगल, वाल्मीक, तुलसीदास, इन सबों के जीवनचरित्रों को तथा त्याग को सदा स्मरण करते हुए अपने चित्त को दृढ़ रखना चाहिये। ब्रह्मा के श्रेष्ठ पुत्र सनकादि ही हैं। परन्तु *"विरति विरंचि प्रपंच वियोगी"*। निवृत्ति (वैराग्य) को ही दृढ़ किए। और *"ब्रह्मानन्द सदा लयलीना"* एवं *"ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा"*। संसार यातना से परे, ब्रह्मानन्द परमानन्द सुख का सदा अनुभव करते हुये, जन्म मरण से मुक्त हैं। शुक, जन्म होते ही माता पिता की माया ममता को त्यागते हुए, निवृत्ति (वैराग्य) को ही दृढ़ किये और जरा जन्म मरण दुःख से रहित होकर सुख सच्चिदानन्द परमानन्द में अद्यावधि विचर रहे हैं। *"कस्य माता पिता कस्य कस्य भ्राता सहोदराः"*। कौन किसका माता, पिता, भाई है केवल *"मात पिता स्वारथ रत ओऊ"* अथवा *"स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती"*। एक बार वाल्मीकि जी माता पिता स्त्री सब की परीक्षा लिये। परन्तु सब की स्वार्थता को जानकर अपने जीवन की कल्याण कामना से सप्तऋषियों की शरण लेकर संसार त्याग दिये। *"आपनि करणी, पार उतरणी"* फलतः *"वाल्मीक भए ब्रह्म समाना"*। के समान अर्थात् ब्रह्मानन्द सुख की प्राप्ति किए। ध्रुव, माता पिता से अपमानित होकर पाँच वर्ष की अवस्था में ही वैराग्य लेकर अपना अभीष्ट सिद्ध किये।

सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं ॥

विषय से विमुख वैराग्यवान प्राणी, इस लोक में सुर दुर्लभ सुखों को भोगते हुए देहान्ते श्री रामजी के परमधाम *"यद्गत्वा न निवर्तन्ते"* । जहाँ जाने से पुनः मर्त्यलोक में जन्म मरण नहीं होता, ऐसे साकेत वैकुण्ठादि धाम को चले जाते हैं। सो ध्रुव इस लोक में बहुत काल तक अयोध्या नगरी का राज्य भोगते हुए देहान्ते, *"पायो अचल अनूपम ठामू"* । ध्रुवलोक प्राप्त किए ।

भैय्या बालक वृन्द ! अब देखिए, बालक प्रह्लाद, जिनको *"नाम भरोस सोच नहिं सपने"* । नाम में कितनी दृढ़ता, विश्वास और श्रद्धा, जो कितनी आपदायें सहन करते हुए भी *"एक भरोसो एक बल, एक आश विश्वास"* केवल *"रामनाम जपतां कुतो भयम्"* जो सर्व काल सर्व आपदाओं से निश्चिन्त रहते हुए।

रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम ॥

राम नाम से ही सर्व विघ्नों को हटाते हुए ।

नाम जपत प्रभु कीन प्रसादू । भक्त शिरोमणि भे प्रह्लादू ॥

भगवान् श्रीनृसिंह देव परम प्यार से पुत्रवत स्नेह से अपनी गोद में परमानन्द सुख का अनुभव कराते हुए प्रह्लाद को भक्त शिरोमणि बनाए।

भैय्या बालक गण ! अब विल्वमंगल को (सूरदास) देखिए, जिन्होंने संसारी विषयों को नेत्र से देखना ही दोष है ऐसा समझकर बाहर के विषय बंधन कारक नेत्रों को फोर ही डाला, और हृदय के नेत्रों को

खोलकर अपने हृदय में ही, *"अस प्रभु हृदयअछत अविकारी"*। अपने प्यारे श्यामसुन्दर को प्राप्त करके परमानन्दित हुए। कहते हैं—

जबसे प्यारे ये दिल में तूँ आने लगे।
क्या कहूँ रंग क्या क्या दिखाने लगे॥

और क्या भगवान श्री श्यामसुन्दर कृष्णचन्द्र की मनोहर लीला को देखने लगे। जो कि उनके हृदय का दृश्य, उनकी कविता सूरसागर से आपको पता लगता होगा कि सूरदास प्यारे श्री श्याम सुन्दर के साथ क्या क्या लीला देख रहे हैं। अतएव परमानन्द हो गए।

भैय्या बालक वृन्द! अब कविवर चूड़ामणि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी का जीवन चरित्र, जिन्होंने अपने स्वयं नव युवक और परम सुन्दरी रत्न रतना देवी सी नव युवती थी। परन्तु श्री तुलसीदास जी कह रहे हैं।

दीप शिखा सम युवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहु राम तजि काम मद करहु सदा सतसंग॥

जिनका जीवन चरित्र आप मानस के अंतर्गत पढ़कर समझ लिए होंगे और जिसका पुष्टीकरण, जगद्गुरु श्री कबीरदास जी किसी संत के बालक (शिष्य) को किसी नवयुवती के पास खड़े देखकर उसको बता रहे हैं। हे बालक!

भाग रे भाग फकीर के बालका कनक अरु कामिनी बाघ लागे।
पकड़के खींच लै पड़ा चिचियायगा बड़ा तूँ मूर्ख है नाहिं भागे॥

भृंगीऋषि गोरख को पकड़के वश किया कोटि उपाय करे नहिं त्यागे।
कहैं गुरुदेव यह एक उपाय है बैठि सतसंग में सदा जागै ॥

भैय्या साधु बालक भाग! क्यों खड़ा है तूँ बड़ा मूर्ख है जल्दी भाग अरे संसार रूपी वन में धन और स्त्री रूपी दो बाघ लगते हैं। उनसे बचने का एक ही उपाय है। सत्संग में बैठकर जागते रहो। जैसे दण्डकारण्य में पंपासर पर श्री नारद जी को बताया गया है कि—

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धारि।
तिन महँ अति दारुण दुःखद, माया रूपी नारि ॥

इत्यादि षट् ऋतु रूपिणी कहते हुए उपसंहार में कहा जाता है। *"अवगुण मूल शूल प्रद प्रमदा सब दुःख खानि"*। अतएव स्त्री सब अवगुणों की जड़ हैं सब दुःखों को देनेवाली, दुःखों की खदान हैं। जीव के लिए स्त्री ही से बंधन का कारण दुःख उत्पन्न होता है।

कदाचिदपि मुच्येत लौह काष्ठादि यंत्रतः।
पुत्रदारानिबद्धस्तु न विमुच्येत कर्हिचित् ॥

लोहा काष्ठ के यंत्र में बँधा हुआ प्राणी, कभी मुक्ति पा भी सकता है। परन्तु स्त्री पुत्र के मोह जाल में फँसा हुआ जीव कभी भी मुक्ति नहीं पा सकता।

भैय्या बालक वृन्द! स्त्री पुत्र से मुक्ति पाने का एक ही उपाय है वैराग्य, *"होइ बुद्धि जो परम सयानी"* तो अवश्य *"पुरुष त्याग सक नारिही"*। यदि सत् असत् विवेकिनी बुद्धि तीक्ष्ण हो तो जीव स्त्री को त्याग सकता

है। परन्तु यदि वैराग्य भी तीक्ष्ण हो और धैर्य हो, तब त्याग सकता है सनकादिक, शुक, से लेकर श्री तुलसीदास जी पर्यन्त परम भागवतों वैराग्य-वानों के चरित्र का अनुकरण करके निश्चय हो कि।

इन्द्रस्य सुखं नास्ति न सुखं चक्रवर्त्तिनम्।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तवासिनम्॥

इन्द्र को भी सुख नहीं है किम्वा चक्रवर्त्ति को भी सुख नहीं है। कारण कि विषयासक्ति ही, विषय भोग ही दुःख का कारण है। और स्त्री पुत्र ही विषयासक्ति की प्रधानता है। इन्द्र को स्त्री लंपट होने से हो गौतम ऋषि शाप दिए। सर्वांङ्ग में सहस्त्र भग हो गये, और चन्द्रमा स्त्री लंपट होने के कारण कुष्ट रोग ग्रस्त हुए, *"प्रमदा सब दुःख खानि"* और चक्रवर्त्ति महाराज श्री दशरथ के राम सरीखा पुत्र होते हुए भी, स्त्री पुत्रासक्त होने के कारण अकालमृत्यु के ग्रास बने। ऐसे अनेकों दृष्टान्त होंगे। एकमात्र *"सुखमस्ति विरक्तस्य"*। जो धैर्य प्राणी स्त्री पुत्र से वैराग्य लेकर संसारा-सक्ति से निवृत्ति होकर विरक्ताश्रम भगवान् की शरण ले लिया है वही सुखी है। *"जिमि हरि शरण न एको बाधा"*। वह अवश्य सुख शान्ति प्राप्ति किया है। और कहा भी जाता है—

तब लगि कुशल न जीव कहँ, सपनेहु मन विश्राम।
जब लगि भजन न राम के, शोकधाम तजि काम॥

जब तक स्त्री पुत्रादि संसारासक्ति शोक का ही घर वह घर द्वार को त्याग कर भगवान की शरण नहीं ली जाती तब तक जीव को स्वप्न में भी सुख शान्ति नहीं होती और प्रवृत्ति का फल भी विषय से वैराग्य

होना ही जीव का कल्याण बताया जाता है। यथा—"*तेहि कर फल पुनि विषय विरागा*"। अर्थात् स्त्री से तो जन्म ही होता है और विषयों से ही प्रति पोषण होता है। परन्तु वर्णाश्रम गृहस्थी में माता पिता की सेवा, यथा श्रीरामजी "*मात पिता उठ नावहि माथा*" इत्यादि पुण्य का फल वैराग्य ही कहा गया है। इसी से श्रीरामजी स्वयं गृहस्थाश्रम के धर्म स्वयं आचरण करके दिखाते हुए जीव को उपदेश दिये हैं।

भैय्या बालक वृन्द! द्वितीय सोपान मे जीव को विषय से वैराग्य होना यही बताया गया है। इसी मार्ग पर चलने से जीव इस लोक के जन्म मरण के दुःख से मुक्त होकर अपने स्वस्थान में पहुँच जायगा। "*जहाँ सन्त सब जाहि*"।

भैय्या बालक गण! मित्रों! अब आगे तृतीय सोपान कहा जा रहा है ध्यान दीजिए।

तृतीय सोपान

तृतीय सोपान मे यह दृष्टान्त दिखाया जा रहा है।

अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥

जो दण्डक बन मे जाकर देवता, मनुष्य, मुनि जनों को प्रिय हो और उनका कल्याण हो। दृष्टान्त मे देखिये, भगवान् श्रीरामजी दण्डक बन में आकर उसकी शोभा बढ़ाए, पावन किये। पुनः खरदूषण त्रिशिरा का संहार किए। अच्छे अच्छे भक्त गीध, शबरी आदि को मुक्ति दिए नारदादि महर्षियों को उपदेश दिये।

भैय्या बालक वृन्द! अब इसको दार्ष्टान्त में देखिये। जीव संसारा-

सक्ति से वैराग्य लेकर सारे संसार को पावन *"पुनाति भुवन त्रयम्"* वह तीनों लोकों को पावन करते हुए अपनी तथा संसार की शोभा बढ़ाते हैं और *"मात पिता स्वारथ रत"*। अपने बन्धन करने वाले, माता पिता को भी पावन बनाते हैं। यथा—

कुलंपवित्रं जननीकृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च धन्या।
स्वर्गस्थितास्तद् पितरोऽपि धन्या येषांकुले वैष्णव नाम धेयम्॥

पुनः श्रीरामनाम के भजन प्रभाव से खर दूषण त्रिशिरा रूपी काम, क्रोध, लोभ, तथा पाप समूह विनाश करते हुए। यथा—*"श्वपच सठ भिल्ल यवनादि हरि लोक गत नाम बल विपुल मति मल न परशी"*। जिन श्वपच भिल्लादिका इतिहास वेद पुराण में यथा विधि वर्णित है। यह तृतीय सोपान कहा गया गया।

चतुर्थ-पञ्चम सोपान

भैय्या बालक वृन्द! मानस के चतुर्थ और पञ्चम सोपान के दृष्टान्त और दार्ष्टान्त को देखिए।

दृष्टान्त, रूप में श्रीरामजी सुग्रीव, विभीषण को शरणागति में लेकर उनकी रक्षा किए। पुनः वानरों तथा भालुओं के द्वारा समुद्र में पुल बँधवाया। इत्यादि।

भैय्या बालक गण! अब दार्ष्टान्त देखिए। जीव श्रीरामनाम के प्रभाव से सुग्रीव विभीषण रूपी अपनी दीनता तथा प्राणीमात्र की दीनता भगवान् को अर्पण कर देते हैं और आप सदा के लिए सुखी हो जाते हैं। पुनः संसारसमुद्र माया ममता से तिरते हुए माता के गर्भ रूपी अगाध

समुद्र से सदा के लिए पार चले जाते हैं। यही चौथे पाँचवें सोपान में बताया गया है। *"नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं"*।

षष्ट सोपान

भैय्या बालक वृन्द! अब षष्ट सोपान का दृष्टान्त और दार्ष्टान्त पर ध्यान दीजिए। दृष्टान्त स्वरूप में यह देखिए। श्रीराम जी रावण के सपरिवार को संहार करके जय स्वरूपा श्री सीता जी को पाए, और अयोध्या जी में आकर राम राजा हुए और जानकी रानी।

राजा राम जानकी रानी। गावत गुण सुर मुनिवर वानी॥

देवता मुनि सभी गुण गा रहे हैं।

भैय्या मित्रवर! अब दार्ष्टान्त में देखिए।

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती॥

जीव प्रेम से श्रीरामनाम को स्मरण करते हुए बिना परिश्रम ही, रावण रूपी महामोह की सैन्य *"दंभ कपट पाखंड"* तथा *"सेनापति कामादि"* को अवः स्त्री पुत्रादि माया ममता सभी का संहार करके *"जय पाई सोइ हरि गति"* हरि भक्ति प्राप्ति करके निष्कंटक त्रैलोक्य का चक्रवर्ति बनकर निर्भयता पूर्वक परमानन्द सुख अनुभव करते हुए संसार में विचरण करते हैं। *"रामनाम जपतां कुतो भयम्"*। यह षष्ट सोपान हुआ।

सप्तम सोपान

भैय्या बालक वृन्द! अब सप्तम सोपान का दृष्टान्त और दार्ष्टान्त पर ध्यान दें।

दृष्टान्त में देखिए, *"राजा राम जानकी रानी"*। श्रीराम जी सुख सच्चिदानन्द परमानन्द, मंगल से प्रसन्न चित्त श्री अवध में विराजमान हुए।

अब दार्ष्टान्त में देखिए, जीव जब अपने कामक्रोधादि तथा स्त्री पुत्रादि माया ममता से निवृत्त होकर स्वतंत्र हो जाता है और अपनी आत्मा में ही आप्तकाम आत्माराम होकर चित्त स्थिर हो जाता है। तब परमा-नन्द सुख का अनुभव करता है। और भक्ति रूपी रानी, सेवा रूपी सुख प्राप्ति करके अपने हृदय में ही *"अस प्रभु हृदय अछत अविकारी"* प्रभु के *मुख सरोज मकरंद छवि, करत मधुप इव पान"*। अपने में ही सुख स्वरूप हो जाता है। और तभी—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी॥

बन जाता है। यथा—*"सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होइ सुखी जिमि जिव हरि पाई"*॥ जीव पूर्णकाम हो जाता है। प्रिय बन्धुओं! *"महा-घोर संसार रिपु, जीति सकै सो वीर"*। पुनः *जय पाई सोइ हरि भगति"* अब तो फिर क्या कहना है। अहा! *"सुखी न भयो अबहिं की नाईं"*।

भैय्या बालक वृन्द! फिर तो जीव के लिए सुख ही सुख है। *"जिमि हरि शरण न एकौ बाधा"*। यही एक सोपान (सीढ़ी) से सात सोपान (सीढ़ी) नीचे उत्तर आने से अपने अगाध हृदय में मानस (मन) में स्थिर हो जाता है। *"सुमति भूमि थल हृदय अगाधा"* में *भरेउ सो मानस सुथल थिराना"* जीव या आत्मा हृदय मर्म मन से गति करके ऊपर वचन में आया और वचन से कर्म में वितरण होकर—*"अहंकार शिव बुद्धि अज मन शशि चित्त महान"* आकाशवत व्यापक होकर सप्तावर्ण में प्रविष्ट होकर अनादि अविद्या में विलीन हो जाने के कारण दुःख का भाजन हो गया है। यही

अहंकार से नीचे सात सोपान उतर आने से—"*जीव धर्म अहमिति अभिमाना*" छूट जाता है। और भक्ति की प्राप्ति करके दासभूत हो जाता है। "*यहि महँ सुभग सप्त सोपाना*" इस मानस में यही सात सोपान या सात सीढ़ी हैं। जो—"*रघुपति भक्ति केरि पंथाना*" श्रीरामजी की भक्ति का रास्ता जिसमें—*आदौ मध्ये च प्रान्ते च हरिः सर्वत्र गीयते*"। आदि से "*जेहि सुमिरत सिधि होइ*" मध्य से "*राम ब्रह्म परमारथ रूपा*" प्रान्ते अथवा अन्त तक "*राम भजे गति केहि नहि पाई*" अर्थात् आदि मध्य शेष तक "*यहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना*"॥ पुनः "*यहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुराण श्रुति सारा*"॥ एवं—

यहि महँ सुभग सप्त सोपाना। रघुपति भक्ति करे पंथाना॥

मानस का यही त्रिसिद्धान्त है। "*मा-न-स*" मनसा, वाचा, कर्मणा अर्थात् मन में "*प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना*" यह दृढ़ता वचन में "*यहि महँ रघुपति नाम उदारा*"। अतएव "*जिह्वा च राम रामेति मधुरंगायतिक्षणम्*"। राम नाम गान और कर्म से "*रघुपति भक्ति केर पंथाना*"। अर्थात् श्रीरामजी की भक्ति के सहकार से "*कर नित करहि राम पद पूजा*" सेवा पूजा करना यही मानस का यथार्थ प्रयोजन है यही है मानस मर्म।

भैय्या बालक वृन्द! मित्रो! यही मानस का दृष्टान्त और दार्ष्टान्त है। दृष्टान्त रूप में श्रीराम जी प्राणीमात्र को उपदेश देते हुए, स्वयं आचरण करके बताये हैं। और जीव वही आचरण तथा कर्त्तव्य करके संसार से मुक्ति पाया है। मानस या मन से जीव को इतना कर्त्तव्य करना आवश्यक है। इसी से इसका नाम मानस कहा गया है।

भैय्या बालक वृन्द ! जो प्राणी अभागे मानस के अनुसार अपने जीवन का उद्धार नहीं किये हैं तो कहा जाता है।

वारि मथे घृत होइ बरु, शिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥

कवि शिरोमणि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपना मन्तव्य, *"क्वचिदन्यतोऽपि"* जो कहा है। वह अपने अनुभव की सत्य प्रतिज्ञा कर रहे हैं। कि—

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसिमे।
हरिं नरा भजन्ति येऽति दुस्तरं तरन्ति ते ॥

मैं निश्चित की हुई वस्तु कहता हूँ मेरा वचन कभी भी झूठा नहीं है। जो मनुष्य हरि भगवान श्रीराम जी का भजन सेवा करते हैं, यह *"मम माया दुरत्यया"*। अथवा *"महाघोर संसाररिपु"*। वा *"भवकूप अगाध"*। महाघोर संसार सागर कारागार से तर जाते हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! देखिए गोस्वामी जी नाना दृष्टान्त दार्ष्टान्तों के द्वारा जो *"स्वान्तः सुखाय"*। कहा है वह अन्त में मानस की अवधि में अपने मन को कैसी शान्त्वना दे रहे हैं। और दृढ़ कर रहे हैं। रे मन विश्वास कर देख, *"मोरे मत बड़ नाम दुहूँते"*। जो मैं कह रहा हूँ देख—

पाई न केहि गति पतितपावन रामभज सुनु शठमना।
गणिका अजामिल गृद्ध व्याध गजादि खल तारे घना ॥
आभीर यवन किरात खश स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम वारेक तेपि पावन होत राम नमामि ते ॥

पुनः इसी बात को विनय पत्रिका में पूर्ण दृढ़ कर रहे हैं। हे मन—

भलो भली भाँति है जो मोरे कहे लागि है।
मन रामनाम से स्वभाव अनुरागि है॥
रामनाम के प्रभाव जानि जूड़ी आगि है।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि है॥
रामनाम सों विराग योग जप जागि है।
वामविधि भालहूँ न कर्म दाग दागि है॥
रामनाम मोदक सनेह सुधा पागिहै।
पाइ परितोष न तूँ द्वार द्वार बागि है॥
रामनाम कामतरु जोइ जोइ माँगिहै।
तुलसी दास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै॥

एक मात्र श्री रामनाम में स्वभाव से ही अनुराग करो, तुम्हारी सारी कामना पूर्ण हो जायगी। *"रामनाम को कल्पतरु कलिकल्याण निवास"*। रामनाम भक्तकामना कल्पतरु है कलिकाल में रामनाम ही में कल्याण है।

रामजपु, रामजपु, रामजपु रामजपु रामजपु मूढ़ मन बारबारं।
सकल सौभाग्य सुख खानि जिय जानि शठ विश्वास वद वेद सारम्॥

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रों ! इसी श्रीरामनाम को सदा सर्वदा मन में मनन कीजिये मानस का यही अटल सिद्धान्त है, यही मानस मर्म है।

मन्त्रांभोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाऽव्ययं,
श्रीमच्छंभुमुखेन्दु सुन्दरवरं संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं,
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामाऽमृतम् ॥

इस प्रकार श्री शंकर भगवान् नाम महात्म्य को जानकर सर्वकाल राम राम राम मनन करते हुये। रामनाम का साँगोपाँग दृष्टान्त दार्ष्टान्त को अपने मन में—

रचि महेश निजमानस राखा। पाइ सुसमय शिवासन भाखा ॥
सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि। भव भंजनि भ्रमभेक भुवंगिनि ॥
रामचरितमानस यहि नामा। सुनत श्रवण पाइय विश्रामा ॥

भैय्या बालक वृन्द! यही रामचरितमानस है। जिसको सुनने से ही विश्राम सुखशान्ति मन को मिलती है। जिस मानस में बारम्बार यही कहा गया है। यथा—

श्रुति पुराण सद्ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भक्ति बिना सुख नाहीं ॥
सोइ सर्वज्ञ गुणी सोइ ज्ञाता। रामचरण जाकर मन राता ॥
नीति निपुण सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धान्त नीक तेहि जाना ॥
धर्मपरायण सोइ कुल त्राता। रामचरण जाकर मन राता ॥

प्रिय सज्जनों, तथा भैय्या बालक वृन्द! वेद शास्त्र के यथार्थ सिद्धान्त को यही जाना है। और यहीसर्वज्ञ, गुणी, तत्त्वज्ञाता, परमपंडित,

धर्म परायण, कुल पालक, सर्वश्रेष्ठ चतुर बुद्धिमान् है। जिसका मन राम चरणकमल में रत हुआ है और उसी प्राणी का जीवन धन्य है। जो मानस के एक-एक सोपान से क्रमशः नीचे उतर रहे हैं। अर्थात् मान, अहंकार, ममता, आसक्ति, विषय विलासिता, द्वेष, अहमत्व को—

रस रस शोष सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ॥

लघुता, दीनता, दयालुता, नम्रता, सेवा श्रद्धा, भक्ति, को प्राप्ति करके—

तृणादपि　सुनीचेपु　तरोरिव　सहिष्णुता।
अमानीनां　मानदेन　कीर्त्तनीयंसदाहरिः ॥

अथात् *"सबहि मान प्रद आपु अमानी"* जो परम बड़भागी जन इस सिद्धान्त को निश्चय करके सर्वकाल *"रामराम रामराम रामराम जपत"* रामनाम जपते हैं। वही परम भागवत भक्ति महाराणी की प्राप्ति करते हैं। *"सब कर फल हरि भक्त सुहाई"* सब कर्मों का अन्तिम फल भगवान् श्रीरामजी के चरण कमलों की भक्ति है। यही भक्ति जो प्राप्ति किया है वही जगत पूज्य है।

भैय्या बालक वृन्द! यह भक्ति मानस के अन्त में है। जो प्राणी (जीव) मानस के मार्ग पर चल रहे और सदा सर्वदा मानस को मननकर रहे हैं। *"राम भक्ति सोइ सुलभ बिहंगा"* रामभक्ति उन्हीं को सुगम हुई है। और वही अपने जीवन को कृतार्थ कर रहे हैं। वही जीवन सफल बना रहे हैं। *"जीवन जन्म सफल मम भयऊ"* वही जीवन मुक्त है।

भैय्या बालक वृन्द! भक्ति बहुत अपूर्व अप्राप्ति अलभ्य वस्तु है। केवल कह देने से ही भक्ति नहीं हो जाती। जो भक्ति की अपूर्वता,

अलभ्यता है वह तो आप सब मानस के द्वारा समझे ही होंगे। जो भक्तिमहारानी की अलभ्यता तुलसीदास जी ने मानस के उत्तरकांड में श्री पार्वती जी के प्रश्न द्वारा सूचित हुआ है। यथा--

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ इक होहिं धर्म व्रतधारी॥
धर्मशील कोटिन महँ कोई। विषय विमुख विराग रत होई॥
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक् ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
ज्ञानवंत कोटिन महँ कोई। जीवन मुक्त सकृत जग होई॥
तिन सहस्र महँ सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन विज्ञानी॥
धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी। जीवन मुक्त ब्रह्म पर प्रानी॥
सबसे सो दुर्लभ सुरराया। रामभक्ति रत गत मदमाया॥

भैय्या बालक गण! स्त्री पुत्रादि विषयासक्त संसारी जीव, हजारों में एक किसी को धर्म में रुचि होगी। धर्मात्मा कोटिन में एक किसी को विषय से वैराग्य होगा। कोटिन विरक्तों में एक किसी को अपने आत्म-तत्त्व का ज्ञान होगा। कोटिन ज्ञानियों में एक कोई जीवन मुक्त होगा। हजारों जीवन मुक्त में से एक किसी को विज्ञान होगा। इस प्रकार प्रथम वर्णाश्रम, द्वितीय धर्म में रुचि, तृतीय *"तेहि कर फल पुनि विषय विरागा"* विषय से वैराग्य, चतुर्थ वैराग्य से ज्ञान, पंचम ज्ञान से *"ज्ञानान्मुक्तिः* जीवन मुक्त षष्ठ जीवनमुक्त से अति दुर्लभ विज्ञान प्राप्त होना सप्तम सोपान के अन्तिम भाग में सबसे अति दुर्लभ *"राम भक्ति रत गत मद माया"* भैय्या, मान अहंकार *"रहित काम मद क्रोध"* अथवा *"तृणादपि*

मुनीवेपु" निर्माण होकर श्रीरामजी के चरण कमलों में भक्ति महारानी को प्राप्त करना अति ही कठिन है।

भैय्या बालक वृन्द ! यही मानस के सात सोपान हैं मानस सप्तम सोपानों के अन्त में सर्व दुर्लभ भक्ति आपको प्राप्त होगी। मानस प्रथम सोपान बालकांड, जन्म से विवाहादि वर्णाश्रम, एवं माता पिता की आज्ञा पालन करना, मानस का द्वितीय सोपान अयोध्याकांड "धर्म न दूसर सत्य समाना" धर्म पालन करना पुनः तृतीयसोपान अरण्यकांड, वानप्रस्थ, वैराग्य आश्रम "पंचवटी कृत वासा" पुनः चतुर्थ सोपान किष्किंधाकांड।

जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रियगण उपजे ज्ञाना॥

ज्ञान प्राप्त होना पुनः पंचम सोपान सुन्दरकाण्ड "बैठे दुनि तट दर्भ डसाई" योगारूढ होना, पुनः षष्ठ सोपान लंकाकाण्ड, में रावणादि रूपी कामनादि अहंकार का संहार करते हुए, विभीषण रूपी विज्ञान की प्राप्ति होती है। पुनः सप्तम सोपान उत्तरकाण्ड, ज्ञान वैराग्य पूर्वक सुख सच्चिदानन्द दोषरूपी शत्रु रहित, स्वाधीनता रूपी राज्य तथा भक्ति रूपी पाट महारानी भक्ति देवी को प्राप्त करके जीव "जय पाई सोइ हरि भगति" इस प्रकार भक्ति "भक्ति तात अनुपम सुखमूला"। परन्तु बहुत ऊँचे दर्जे में है देखिए, वर्णाश्रम से धर्म, धर्म से वैराग्य, वैराग्य से ज्ञान, ज्ञान से योग, योग से विज्ञान, विज्ञान से जीवन मुक्त, और जीवन मुक्त से परे भक्ति, सातवें दर्जे पर भक्ति है। जिसकी प्राप्ति करना अति ही दुर्लभ है। अर्थात् अप्राप्य है। इसलिए यह अति दुर्लभ, भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है।

भैय्या बालक वृन्द ! मानस में सत्यतः कहा जाता है *"भक्ति होइ सुनि अति अनपायनि"*। मानस को सुनने से ही अति अनपायनी अर्थात् अति दुर्लभ भक्ति सहज में ही प्राप्त होती है।

रामचरण रति जो चहै, अथवा पद निर्वान।
भाव सहित सो यह कथा, करै श्रवण पुटपान॥

अथवा *"करै कपट तजि गान"*। यह दुर्लभ भक्ति मानस के श्रवण या गान करने ही से प्राप्त हो जाती है।

प्रिय सज्जनों ! तथा भैय्या बालकों ! इतने ऊँचे जो पूर्व में ६६ सोपान कहे गये हैं। जो वर्णाश्रम से ही सोपान या सीढ़ी बनाई गई है। यदि भक्ति महारानी की प्राप्ति की इच्छा किया जाय तो, वर्णाश्रम में से ही *"वर्णानां ब्राह्मणोगुरुः"*। की सेवा करते हुए, वर्णाश्रम से ही सीढ़ी चढ़ना प्रारम्भ करे, पुनः विरक्ताश्रम के अन्तिम सोपान अर्थात् आत्मनिवेदन पर्यन्त पहुँच जाने से भक्ति महारानी प्राप्त होगी।

भैय्या बालक वृन्द ! *"रामभक्ति चिन्तामणि सुन्दर"*। रामभक्ति सुन्दर चिन्तामणि है। प्रकाश तथा सुख स्वरूप है।

रामभक्ति मणि उर बश जाके। दुःख लवलेश न सपनेहु ताके।
चतुर शिरोमणि ते जग माहीं। जे मणि लागि सुयतन कराहीं॥
सो मणि यदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई।
सुगम उपाय पाइवे केरे। नर हत भाग्य देत भट भेरे॥
पावन पर्वत वेदपुराना। रामकथा रुचिराकर नाना।

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित जो खोदै प्रानी। पाव भक्तिमणि सब सुख खानी।
भव कर फल हरि भक्ति सुहाई। सो बिनु संत न काहुहि पाई ॥
अस विचारि जो कर सतसंगा। राम भक्ति तेहि सुलभ विहंगा।

दो०—ब्रह्मपयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहि।
कथा सुधामथि काढ़हीं, भक्ति मधुरता जाहि ॥

भैय्या! साधुसंग करो, मानस को संतो के मुख से सुनो तभी ज्ञान होगा।

प्रिय सज्जनो! भगवान् कितने दयालु हैं। हम सभों के कल्याण के लिये कैसा सुगम मार्ग सुन्दर सोपान (सीढ़ी) बनाये हैं प्रथम तो यह शरीर ही सोपान है। *"स्वर्ग नरक अपवर्ग नसेनी। साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, नर तनु भव वारिधि कहँ बेरे"* ॥ पुनः साधना रूपी सोपान वर्णाश्रम से लेकर विरक्ताश्रम पर्यन्त ६६ सीढी बनी हैं जिसमें प्रथम वर्णाश्रम है वर्णाश्रम में ३८ और विरक्ताश्रम में २८ सीढी हैं जिनका पृथक् पृथक् वर्णन है।

वर्णाश्रम में पञ्चदेव की उपासना कही गई है जो ब्रह्मरूपी श्रीरामजी जीव रूपी श्री लक्ष्मणजी को आज्ञा दिए हैं।

प्रथमहि विप्र चरण अति प्रीती। निज निज धर्म निरत श्रुति रीती ॥

प्रथम में *"वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः"* के चरणकमलों में प्रीति रखते हुये, शास्त्र विहित अपने वर्णाश्रम के अनुसार कर्म करे और वर्णाश्रम के लिये भगवान् ने सुन्दर मार्ग बनाया है उसका अनुकरण करें, अर्थात् वर्णाश्रम के लिये जो ३८ सोपान कहे गये हैं वह परम सुन्दर है।

प्रिय सज्जनो! वर्णाश्रम के लिये जो ऊपर उठने को ३८ सीढ़ी बनी हैं उनके विवरण को सुनिए। देखिये मैं सोपानों के नाम कह रहा हूँ आप सब मन लगाकर सुने, सोपानों के नाम—सौर्य, शाक्त, गाणपत्य, शैव, वैष्णव यह पाँच बड़े बड़े सोपान हैं, इसके अन्तर्गत ३८ सोपान हैं। यथा—*सौर्य १२ शाक्त ७, गाणपत्य ५, शैव १०, और वैष्णव ४,।*

इस प्रकार सोपानों की ३८ श्रेणी हैं, उनमें से जीव प्रथम सौर्य १२ सोपानों में क्रमशः प्रवेश करता है और वैराग्य मार्ग का क्रम बढ़ता है, अर्थात् जैसे सूर्य अपनी द्वादश कलाओं से प्रकाश और तेज से सर्वरस को शोषण करके सबसे अनासक्त रहते हैं, इसी प्रकार जीव सूर्य (सौर्य) की उपासना करके अपने आभ्यन्तर संसाररूपी शरीर के सारे अज्ञान, अंधकार मोह को दूर करते हुए निवृत्ति को प्राप्त करके सर्व विषयों से पृथक् अर्थात् वैराग्य प्राप्त करके विषयों से विरक्ति आती है। यथा—*"घालेसि सब जग बारह बाटा"* अतएव *"सर्व इन्द्रियाणि संरुध्य"* यथा—*"नवद्वारपुरे देही"* क्षेत्र है प्रकाश होने से जीव अपने तत्व को जानता है। यथा—

देहेस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीपाः समन्विताः।
सरिताः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः॥

इत्यादि *"इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना। जहँ तहँ सुर बैठे करि थाना"॥* प्रकाश होने से जीव विषय भोगी देवता तथा विषयों से वैराग्य प्राप्त करता

है यह सौर्य नामक प्रथम १२ सोपान है इससे उत्तीर्ण होने से जीव आगे उठता है इसके ऊपर का सोपान शाक्त होगा।

द्वितीय शाक्त नामक सोपान है जो सात सोपान में विभक्त है। अर्थात् शाक्त ७ सोपान सप्तदेवी हैं। क्रमशः सप्त देवियों की उपासना करने से "*सत् असत् विवेकिनी बुद्धिः*" बुद्धि देवी महारायी की कृपा से प्राणी अपने अन्तःकरण स्थित आत्मा परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का निर्णय करके हृदयाकाश में स्थित ज्ञान की सप्त भूमिका सह विशुद्ध ज्ञान द्वारा अपने कर्त्तव्य पर आरूढ होता है।

षट् दम शील विरति बहु कर्मा। निरत निरन्तर सज्जन धर्मा॥

यह सप्त ज्ञान युक्त शक्ति की उपासना के सात सोपान हैं इनसे उत्तीर्ण होने से जीव इसके ऊपर का सोपान गाणपत्य पाँच सोपानों को प्राप्त होता है।

तृतीय, गाणपत्य नामक पञ्च सोपान है। अर्थात् क्रमशः गाणपत्य पंच सोपान की उपासना करके प्राणी मूलाधार से ब्रह्मरंध्रपर्यन्त पञ्च प्राणों को संयत करता है अर्थात् गुदा स्थान, मूलाधार, अपान वायु में गणेश का निवास है अपान वायु के ही द्वारा पंच प्राण एकत्र होते हैं इस अपान वायु का गुदा के देवता गणेश हैं इन्हीं की सहायता से प्राणी "*प्राणायाम परायणः*" होकर आत्मा परमात्मा को एकत्र करके योगारूढ़ होता है। यथा—

तत्समं च द्वयोरैक्यं, जीवात्मा परमात्मनोः।
प्रणष्टः, सर्वं संकल्पः समाधिः सोऽभिधीयते॥

यह पाँच सोपान युक्त पंच प्राण एकत्र कारी गाणपत्य नामक सोपान

उत्तीर्ण हुए जब पंचप्राण, पंचमन, पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, पंचतत्व, यह पाँचई पंचीकर्ण एकत्र हो जाते हैं तब आत्मा परमात्मा दोनों का योग होता है। इसका नाम है गाणपत्य पंच सोपान, इससे उत्तीर्ण होने से जीव आगे सोपान अर्थात् आगे १० सोपान पर गति करता है, जो शिव की उपासना है।

चतुर्थ शैव १० सोपान अर्थात् प्राणी जब क्रमशः शैव १० सोपान शिव की उपासना करता है तब अपनी १० इन्द्रिय निग्रह कर लेता है तब भजनारूढ होता है अर्थात् सेवा का स्वरूप प्राप्त करके विज्ञान जो नवअंगों युक्त नवधा भक्ति भी कही गई है तब सेवा में प्रवेश करता है जो विज्ञान भक्ति का पूर्वार्ध भक्ति ही है। जिसके परीक्षक शिव हैं इस प्रकार जब भक्ति रूपी सेवा विज्ञान की योग्यता जीव प्राप्त करता है तब *"भक्ति मोरि तेहि शंकर देहीं"* परन्तु *"शंकर भजन बिना नर भक्ति न पावे मोरि"*

शिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भक्ति रामपद होई॥

इस प्रकार शैव १० सोपान उत्तीर्ण होने पर शंकर भगवान् कृपा कर के भक्ति प्रदान करते हैं तब सर्वोच्च वैष्णव नामक सोपान चार श्रेणी में विभक्त है जो अन्तिम मुक्ति द्वार का सोपान है। *"साधन धाम मोक्ष कर द्वारा"* अर्थात् मनुष्य शरीर का यही अंत बताया गया है यहाँ वहीं साधन का शेष स्थान है अर्थात् यही वैष्णव नामक सोपान से सर्व काल के लिये जीव कोटि से मुक्त होकर ईश्वर कोटि में दिव्य धाम में पहुँच जाता है।

पाँचवाँ वैष्णव नामक सोपान, अर्थात् जब जीव शैव १० सोपानों

से उत्तीर्ण होकर इस उपाय नामक उच्चश्रेणी वाले चार सोपानों में प्रवेश करता है तो भगवान् की चार अंग युक्त, सेवा श्रद्धा, तपस्या, और भक्ति, यह चारहू मिल कर पराभक्ति महारानी प्राप्ति होती है तब यह जीव कृतार्थ हो जाता है और संसार दुःख जरा मरण से मुक्त हो जाता है।

भक्ति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृतिमूल अविद्या नासा॥

यह भक्ति महारानी की *"न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः"*। परन्तु इस अपूर्व कल्याण देने वाली भक्तिमहारानी को प्राप्ति करने का एकमात्र उपाय और मार्ग प्रदर्शक गोस्वामी तुलसी दास जी की रचित काव्य कला मानस है। जिसका महत्व कहा जाता है।

जो यह कथा सनेह समेता। कहिहहि सुनिहहिं समुझि सचेता।
होइहहि रामचरण अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥

परन्तु इस मानस पर पहुँचने के लिए अनेक जन्मों की सुकृति आवश्यक है। *"अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो यान्ति परां गतिम्"*। अथवा *"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये"*। यह *"मानसकल्पतरो मूलम्"*। के सन्निकट बिना पुण्य पुराकृत भूरि के प्राणी जा नहीं सकता, मानस के तट पर और सर्वोत्तम मनुष्य शरीर होते हुए भी *"गये न मज्जन पाव अभागा*। परन्तु इसके लिये भी गोस्वामी जी—

जौ नहाइ चह यहि सर भाई। सो सतसंग करै मन लाई।
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एको बारा॥

देखिए संसार में जिस किसी का कल्याण हुआ है तो सत्संग से ही हुआ है।

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि यतन जहाँ जेहि पाई।

"सो जानब सत्संग प्रभाऊ"। मति, गति, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य इत्यादि जहाँ भी जो कुछ मिला है। वह सत्संग से ही मिला है।

वाल्मीकि नारद घटयोनी। निज निज मुखन कही निज होनी॥

वाल्मीकि नारद अगस्त्य सब अपनी-अपनी जीवनी में सत्संग का प्रभाव वर्णन किए हैं अर्थात् सत्संग से ही इन्होंने अपने जीवन का कल्याण करते हुए महान ऐश्वर्य को प्राप्त होकर जगत पूज्य हो रहे हैं।

प्रिय सज्जनों विचार करने से दुःख की बात है कि हम सब अपनी ही भूल से कितनी दुर्गति में पड़े हैं और कितनी आपत्तियों को सहन कर रहे हैं जन्म मरण अर्थात् माता के गर्भ में योनि यातना, पुनः जन्म होते ही बाल यातना, से लेकर यावज्जीवन दैहिक, दैविक, भौतिक नाना यातना भोगते हुए मरणान्ते यम यातना, कुंभीपाकादि नरकों में इस प्रकार—

फिरत सदा माया के प्रेरे। काल कर्म स्वभाव गुण घेरे॥

परन्तु, यह जीव इस कर्म बन्धन से पहले—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी॥

परन्तु अब देखिए यह जीव की क्या दुर्दशा हो रही है।

सो माया वश भयो गोसाँई। बँध्यो कीर मर्कट की नाईं॥

भैय्या बालक वृन्द! यद्यपि माया का अर्थ ही झूठा है। फिर—*"छूट न राम कृपा बिनु"* छूटना अति ही कठिन है।

तब ते जीव भयो संसारी। ग्रंथि न छूटि न होइ सुखारी॥

ग्रन्थि अर्थात् जब से जीव स्त्री पाणि ग्रहण किया है। तभी से स्त्री पुत्रादि मोह बन्धन में संसारी हो गया। न स्त्री पुत्रादि की मोह ग्रंथि छूटती है, न सुख शान्ति पाता है। लोहा के पींजरा में बँधे हुआ तोता की तरह एवं कमर में बँधी हुई मोटी रस्सी से सदा नट के आधीन बानर की तरह यह जीव की दुर्दशा हो रही है। कारण कुछ भी नहीं है। केवल एकमात्र स्त्री का मोह ही लोहा का पिंजरा है और ममता ही मोटी रस्सी है। अपनी कामासक्ति ही नट है। *"विचारे नास्तिकिंचन्"* विचार करने से कुछ भी नहीं है। फिर जीव बँधा है। अर्थात् स्त्री ही एकमात्र बन्धन का कारण है। न स्त्री छूटती है, न जीव का बन्धन छूटता है। और न सुख शान्ति मिलती है।

श्रुति पुराण बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥

वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहासों मे बहुत उपाय, यज्ञ, होम, तर्पण, ज्ञान, वैराग्य योग इत्यादि बताया गया है। परन्तु यह मोह ग्रन्थि छूटती नहीं है। बल्कि अधिक से अधिक मजबूत होती जाती है। अर्थात् प्रथम स्त्री ही में ममता थी फिर स्त्री से पुत्र हुआ। उसमें ममता बढ़ी, पुनः पुत्र की बहू आई उसमें ममता बढ़ी, नाती हुआ उसमें ममता बढ़ी, फिर तो अधिक अधिक बन्धन बढ़ता ही गया। *"पुरुष कुयोगी जिमि उरगारी। मोह विटप नहिं सकै उपारी"*। अतएव—

जीव हृदय तम मोह विशेषी। ग्रन्थि छूट न ग्रन्थि परै नहिं देखी॥

स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्यादि मोह ममत्व रूपी घोर अज्ञानान्धकार के

कारण देख तो पड़ता ही नहीं, ग्रन्थि छूटे कैसे। परन्तु इस घोर अन्धकार विनाश होने के लिये मानसकार तीन उपाय बताते हैं। एक तो—"*श्री गुरु पद नख मणिगण ज्योती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती*"। दूसरा—

रामभक्ति चिन्तामणि सुन्दर। बसै गरुड़ जाके उर अन्तर॥

और तीसरा उपाय यह है।

रामनाम मणिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरौ, जौ चाहसि उजियार॥

इस प्रकार यह तीन उपाय मानस में बताये गये हैं।

भैय्या बालक वृन्द! इन उपायों से ग्रन्थि छूटने में कोई सन्देह नहीं होगा निश्चय ग्रंथि छूट जायगी और जीवन मुक्त हो जायगा। इसके अतिरिक्त, कहा जाता है।

राकाशशि षोडश उगहिं, तारागण समुदाय।
सकल गिरिन दव लाइए, रवि बिनु रात न जाय॥

परन्तु ऊपर कहे हुए मणियों के प्रकाश को प्राप्त करने के लिए, जन्मान्तरों की सुकृत्तियों की आवश्यकता है। यथा "*अनेक जन्म संस्कारात, सद्गुरुः सेवते बुधैः*"। अनेक जन्मों के सुकृत संग्रह होने से सद्गुरु के चरणों में मन लगता है और नखमणि का ध्यान होता है। नहीं तो जीव गुरु में मनुष्य भावना करके गुरु में काम क्रोधादि छिद्रान्वेषण करने लगता है। और भक्ति मणि में नाना प्रकार अविश्वास कर बैठते हैं। कारण कि '*न तस्य प्रतिमाऽस्ति*"। और *बिनु बिस्वास भक्ति* नहीं। भक्ति मणि प्राप्त हो नहीं होगी। तीसरा उपाय रहा रामनाम

मणि का परन्तु "*अल मल सब कहतु हैं राम कहत अलसाइ*"। राम राम कहते समय आलस्य तंद्रा घेर लेती है। परन्तु जैसा भी हो—

भाव कुभाव अनख आलसहू। राम जपत मंगल दिशि दशहू॥

आलस्य तन्द्रा भाव कुभाव कैसाहू केवल राम-राम रटो, यही एक मात्र, उपाय है। इसी को मानसकार बता रहे है "*राम भजे गति केहि नहि पाई*"। अतएव रामनाम भजन करके सभी गति पाये हैं "*श्वपच खलभिल्ल यवनादि हरि लोकगत नाम बल विपुल मति मल न परशी*"। केवल रामनाम के ही प्रभाव से महामहापापियों ने भी सुन्दर गति प्राप्त की है। यही त्रैलोक पावन राम नाम को "*महामंत्र जेहि जपत महेशू*"। यह रामनाम के रामतारक महामंत्र है जिसके जापक देवदेवेश महादेव शंकर भगवान हैं। मानसकार जो अपने ग्रंथ का नाम मानस रखते है। मानस का अर्थ, मा. न. अर्थात् मैं नहीं, स. अर्थात् वह, यह रामनाम, जिसको मानस का प्रथम छन्द लिखा जाता है। "*सोरठ*" अर्थात् सोरट, (क्या रटूँ) "*दोहा*" दोहा क्या, है दोहे जिसमें, अर्थात् रकार, मकार, राम, अथात् "*रामरामरमु, रामरामजपु, रामरामरटु जीहा*"। मन से राम राम मनन करो रमो, वाणी से रामराम जपो, कर्म से रामराम रटो, सोरठो

हे जिह्वे रससारज्ञे ! सर्वदा मधुर प्रिये।
मधुरं मधुराचरं श्री रामनामामृतं पिव॥

हे जिह्वे तुम रसस्वादी, मधुररस पीने वाली, देख मधुर से मधुर अतिशय मधुर रामनामामृत सर्व काल पिव।

भैय्या बालक वृन्द ! मानसकार ने सर्वप्रथम यही छंद लिखा है। "सोरठ" इसी को रटो—

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन ।
करौ अनुग्रह सोइ, बुद्धि राशि शुभ गुण सदन ॥

जिसके सुमिरण करने से सर्व सिद्धि होती है और सभी सिद्ध होते हैं।

साधक नाम जपहिं लव लाए। होहिं सिद्ध अणिमादिक पाए ॥

सबको अणिमा गरिमा आदि सर्वसिद्धि प्राप्त होती हैं सुमिरन करके श्रेष्ठ हस्ती मुख, अर्थात् गजमुख, होने से भी गणेश बुद्धि समूह एवं सर्व शुभगुण मन्दिर हुए। वही श्री रामनाम देव हमारे ऊपर कृपा करो। *"नाम प्रभाव जान गणराज"* गणेश नाम के प्रभाव को अच्छा जानते हैं। और रामनाम के ही प्रभाव से प्रथम पूज्य हैं।

भैय्या बालक वृन्द! वही रामनाम मानस में आदि से मध्य और अंत तक रक्खा गया है। आदि में तो *"जेहि सुमिरत"* कहा गया। मध्य में देखिये। अयोध्याकांड में *"रामनाम महिमा सुर कहहीं"* देवता लोग भी रामनाम की ही महिमा गा रहे हैं। अब अन्त में उत्तरकाण्ड में देखिये। *"कहि नाम बारेक तेपि पावन"* अतएव *"मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं स्वान्तस्तमः शान्तये"* मानस के रचयिता कवि अपना दृढ़ता एवं निश्चित किया हुआ अटल सिद्धान्त आपको बता रहे हैं।

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥

भैय्या पानी को मंथन करने से घी निकल सकता है, बालू को, कोल्हू में पेरने से तेल भी निकल सकता है? इन सब असंभवों का संभव हो

सकता है। परन्तु बिना राम नाम भजन किए संसार सागर से कभी भी कस्मिन् काल में भी निस्तार नहीं पा सकता। यह निश्चित किया हुआ अटल अकाट्य सिद्धान्त है।

भैय्या बालक वृन्द! *"आदौ मध्ये च प्रान्ते च हरि सर्वत्र गीयते"* आदि वर्ण बोध मे यही पढ़ा गया है। सबेरे उठो भगवान् का नाम लो, *"प्रातःस्मरामि रघुनाथ नाम"* मध्य मे पुराणादिकों में।

श्रीराम राम रघुनन्दन रामराम श्री राम भरताग्रज रामराम।
श्रीराम राम रण कर्कश राम राम श्रीरामराम शरणं भव रामराम॥

अतएव राम राम भजो, और अन्त मे देखिये। वेदान्त—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
सह देवमात्म बुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

जिन परमात्मा ने सृष्टि के आदि मे ब्रह्मा को उत्पन्न किए और ब्रह्मा ने वेदों का संप्रदान किया, उन बुद्धि के प्रकाशक परमात्मा की शरण को मैं मुमुक्षु प्राप्त होता हूँ। जिनको आदि में वर्ण बोध मध्य में पुराण, अंत में वेद सभी कह रहे हैं कि उन्हीं परब्रह्म परमात्मा श्री राम जी के नाम रूप लीलाधामादि किसी प्रकार शरण लो। *"भगतहि कृपा करहि रघुराई"* भैय्या—

श्रुति पुराण सद्ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भक्ति बिना सुख नाहीं।
कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा॥
फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥

सब असंभव का संभव हो सकता है। परन्तु भगवान् से प्रति-कूल जीव कभी भी सुखी नहीं हो सकता।

भैय्या बालक वृन्द ! जब यह बिल्कुल निश्चय सिद्धान्त हो चुका है, सर्व सम्मति से ठीक माना गया है। तो हम नहीं माने, नहीं करें। यह हम सबों की कितनी बड़ी भूल है। फिर भी अपनी भूल न मानते हुए *"कालहि कर्महि ईश्वहि मिथ्या दोष लगाइ"*। प्रभु तो राज राजेश्वर ईश्वर हैं, राज्य शासन की दण्ड विधि है। *"साम दाम दण्ड विभेद"* राजनीति है प्रजा अपराध करे, दण्ड विधान किया जायगा, नियम बना है। यदि राज्य शासन न हो तो प्रजा स्वभाव से ही नष्ट हो जायगी। *"राज कि रहहि नीति बिनु जाने"* और बिना राजनीति के राज्य भी नष्ट हो जाता है।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान यथारथ ॥

प्रभु श्रीरामजी सम्पूर्ण नीतिज्ञ हैं। राजराजेश्वर त्रैलोक चक्रवर्ति हैं। इतना बड़ा राज्य कैसे असंखला करेंगे। शासन सुरक्षण राजनीति है। राज्य प्रतिज्ञा अटल होती है। *"वाचा सार महीपतिः"* राजा की प्रतीज्ञा ही सार है, वही धर्म है, भगवान् श्रीरामजी प्रतिज्ञा करते हैं कि जो राज्य की अवज्ञा करेगा, राज्य नियम से प्रतिकूल होगा। *"काल रूप मैं तिन कहँ ताता"*। जीव को पाप कर्म का फल चौरासी लक्ष योनियों में नाना नरकों में नाना प्रकार ताड़ना देनेवाला मैं हूँ।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुशाशन मानै जोई ॥

वही हमारा अनन्य सेवक है, वही परम प्रिय है। जो हमारा शासन, हमारी आज्ञा पालन करता है। *"आज्ञा सम न सुसाहेब सेवा"*। आज्ञा से अधिक अन्य सेवा नहीं है।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रों तथा सज्जन वृन्द ! वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास सभी प्रभु की आज्ञा है। श्रुति, स्मृति, सभी प्रभु की आज्ञा हैं। उसी में विधि, निषेध, जो आपके लिये बताया गया है, वही आपका कर्त्तव्य है। भगवान् बता रहे हैं।

जौ परलोक यहाँ सुख चहहू। सुनि मम वचन मन्त्र दृढ़ गहहू ॥

भैय्या, यदि यह लोक परलोक में सुख चाहते हैं तो हमारा वचन दृढ़ता पूर्वक हृदय मे धारण करें, अर्थात् करें, देखिये, बहुत सुगम उपाय है।

सुलभ सुखद मारग यह भाई। भक्ति मोरि पुराण श्रुति गाई ॥

बहुत सुलभ और बहुत सुख देने वाली, हमारी भक्ति वेद, शास्त्र पुराणों में बताई गई है।

कहहु भक्ति पथ कवन प्रयासा। योग न मख जप तप उपवासा ॥

केवल "सरल स्वभाव न मन कुटिलाई। यथा लाभ सन्तोष सदाई" ॥ विचार करो, देखो, समझो, भक्ति मार्ग में क्या परिश्रम है। योग, यज्ञ, तप, उपवास करना नहीं है। एकमात्र कुटिलता को त्याग दो, स्वभाव सरल कर लो और जितना आया उतने ही में सुख से बर्ताव कर लो। "*न शोचति न काँक्षति*" अधिक के लिये न शोच करो न आकाँक्षा ही रखो। और—

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृण सम विषय स्वर्ग अपवर्गा ॥

स्वर्ग वैकुण्ठादि की भी कामना न करते हुये सदा सज्जन सन्तों का संग करो।

अस सज्जन मम उर बस कैसे । लोभी हृदय बसत धन जैसे ॥

भगवान् कहते हैं कि जो प्राणी ऊपर कहे हुए नियम के अनुसार बर्ताव करते हैं। वे परम सज्जन प्राणी मुझे इतने प्रिय हैं जैसे लोभियों को धन प्रिय होता है।

भैय्या बालक वृन्द ! प्रिय मित्रों, भगवान् के ही प्रियत्व में अपना कल्याण है। उनकी प्रसन्नता ही अपना मंगल है। और संसार तो "*क्षणे रुष्टाः क्षणे तुष्टाः*"। क्षण भंगुर है। केवल "*स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती*"। स्वार्थ से ही सब प्रेम करता है। परन्तु "*हेतु रहित जग युग उपकारी*"। बिना स्वार्थ के तो दो ही पर उपकार करते हैं एक तो भगवान् दूसरे संतजन, इन सब बातों को मन लगा कर पढ़ना, समझना और करना चाहिए। क्योंकि "*कर्म प्रधान विश्व करि राखा*"। संसार में कर्म ही प्रधान कहा गया है, जो जैसा कर्म करेगा वह वही का फल भोगेगा।

भैय्या बालक गण ! तथा प्रिय सज्जनो, जो प्राणी, मानसकार के इतने दृष्टान्त, दार्ष्टान्तों तथा सिद्धान्त को पढ़ते सुनते जानते हुए—

एतेहु पर करहिं जे अशंका । मोहि ते अधिक ते जड़ मतिरंका ॥

यदि उनका संदेह शंका भ्रम निवृत न हुआ तो वे मुझसे भी अधिक पाषाण हृदय जड़ मति अधिक-अधिक बुद्धि के दरिद्र हैं, गए बीती है "*मूरख हृदय न चेत, जौ गुरु मिलहिं विरंचि सम*"। जिनका हृदय शून्य है तो ब्रह्मा ही गुरु क्यों न हो परन्तु उनके हृदय में ज्ञान हो ही नहीं सकता।

भैय्या बालक वृन्द ! रामचरित मानस तो आप पढ़ते ही होंगे। मानस के नाना प्रकार के दृष्टान्त एवं दार्ष्टान्तों, तथा सिद्धान्तों के द्वारा

आपको पूरा पता लगा होगा। कि संसार के सभी पदार्थ स्त्री पुत्रादि भूठा सम्बन्धी है। सचा सम्बन्ध तो एक भगवान् से ही है, और बारम्बार मानस का पारायण किया करें, इससे और भी दृढ़ता होती जायगी। मानस में यह निश्चय किया हुआ है।

भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीयराम पद प्रेम, अवशि होहिं भव रस विरति ॥

तुलसीदास जी कह रहे हैं, जे प्राणी नियम से श्री भरत लाल के परम पावन चरित्र को श्रवण, मनन, पठन-पाठन करते रहेंगे, वे अवश्य, निश्चय करके संसारी विषय स्त्री पुत्रादि से वैराग्य लेकर ऐकांतिक श्रीराम जी के चरण कमलों के प्रेमी होंगे। और शंकर भगवान् कह रहे हैं—

उमा राम प्रभाव जिन जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना ॥

श्री राम जी के परम उदार *"अति कोमल रघुवीर स्वभाऊ"* स्वभाव को जानता है। उसको राम भजन के सिवाय कुछ अच्छा ही नहीं लगता—

राम चरण पंकज प्रिय जिनहीं। विषय भोग वश करै कि मनहीं ॥
रमाविलास राम अनुरागी। तजत वमन इव नर बड़भागी ॥

भैय्या बालक वृन्द ! मानस पढ़ने से आप श्रीरामजी के परम पावन उदार स्वभाव को जान लेंगे। फिर तो आप स्वयं ही अनुभव द्वारा निश्चय करके संसार से विरत होकर अन्त में यही कहेंगे। *"सुखी न भयो अबहिं की नाई"* तब अपनी भूल और त्रुटि याद होगी। दिशा भ्रम छूट जायगा, और यथार्थ मार्ग सामने आ जायगा, विषयानन्द से मुक्त होकर महानन्द सुख अनुभव होने लगेगा। मानसकार कह रहे हैं।

सुनहिं विमुक्ति विरति अरु विषयी । लहहिं भक्ति गति संपति निर्ताई ॥

विषयाशक्त गृहस्थ यदि मानस सर्वदा सुनेंगे । उन्हें बहुत धन सम्पत्ति मिलेगी परन्तु दैविक सम्पत्ति, "*दैवी सम्पद् विमोक्षाय*" जिस पति से—

सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं ॥

"*जहाँ सन्त सब जाहिं* । यदि विरक्त साधक मानस सुनेंगे तो उनको वह भक्ति मिलेगी जो "*जेहि खोजत योगीश मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव*" अतएव—

सो मणि यदपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ॥

मानस के श्रवण मनन से श्री राम जी की कृपा साध्य प्रेमाभक्ति मिलेगी । जिस भक्ति की शुक सनकादि याचना करते रहते हैं । "*प्रेम भक्ति अनपायनी, हमहिं देहु श्री राम*" ।

यदि मानस परायण विमुक्त प्राणी जो "*त्याग वैराग्य दुर्लभाः*" एवं सर्वारंभ परित्यागी है । वे विदेह मुक्त होंगे । कैवल्य परम पद प्राप्त करेंगे । जो—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । वेद पुराण निगम आगम बद ॥

वह परमपद परमधाम को प्राप्त होंगे । इसलिए—

भैय्या बालक वृन्द ! कविवर श्री तुलसीदास जी जीव मात्र, तथा वक्ता, श्रोता दोनों के अटल दृढ़ विश्वास के लिए, अपनी सत्य प्रतिज्ञा करके कह रहे हैं "*विनिश्चितम् वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे*" मैं मानस के माहात्म्य तथा यथार्थता का विशेष निश्चय करके सत्य कहता हूँ । जो राम

चरित मानस में लिखा है। यह मेरा वचन कस्मिन काल कभी भी अन्यथा नहीं है। सत्यं सत्यं पुनः सत्यम्।

भैय्या बालक वृन्द! सज्जनों, हमारे परम मित्रों आप रामचरित-मानस को अनुभव में लाइए। सारे भारत वर्ष से लेकर देश देशान्तर मानस का सत्य ही अनुभव किया है और सहस्र सहस्र प्राणी एक मुख सब सत्य ही कह रहे हैं।

भैय्या बालकों तथा सज्जनों! आप सबों ने भी यदि मानस के यथा-र्थता को समझ कर अनुभव किया तो निश्चयात्मक प्रतीति होगी और आप भी सत्य कहेंगे। शंकर भगवान् यही कह रहे हैं।

उमा कहौं मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना॥

परन्तु यह ध्रुव है।

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होई नहिं प्रीती॥

और *"प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढ़ाई"* इसलिए आप अनुभव करके स्वयं समझ लेगें तो दृढ विश्वास आप ही होगा।

भैय्या बालक वृन्द! मानस आप सदा सर्वदा पढ़ें, मानस में सबसे बड़ा अमूल्य रामनामामृत है। *"यहि महँ रघुपति नाम उदारा"* इसमें परम पावन श्री रामनाम ही संपुट किया गया है। जो *"रामनाम कलि अभिमत दाता"*। कलिकाल में सब प्रकार मनोरथों को पूर्ण करने वाला है जो रामनाम के माहात्म्य को *"राम न सकहिं नाम गुण गाई"* राम स्वयं नाम महिमा नहीं कह सकते हैं। जो रामनाम के प्रभाव से काक जी कहते हैं। *"सुखी न भयो अबहि की नाईं"* और जो राम नाम को उल्टा मरा मरा जपते हुए

कहा जाता है। *"वाल्मीक भय ब्रह्म समाना"* वाल्मीक ब्रह्म रूप हो गए। तुलसी दास जो स्वयं पूर्व में क्या थे वर्तमान में क्या महत्व प्राप्त किये हैं यह रामनाम ही की महिमा तो है। *"जो बड़ होत सो राम बड़ाई"* राम स्वयं अथवा रामनाम ही से संसार में सुख ऐश्वर्य बड़प्पन प्राणी प्राप्त किए हैं, *"सोइ रघुनाथ भक्ति श्रुति गाई"* वही राम की भक्ति श्रुति वेद पुराण गान करते हैं और हम को आदेश देते हैं कि *"रामहि सुमिरिय गाइय रामहि"* रामही को सुमिरण करो राम-राम नाम ही गान करो, राम ही का गान करो, रामनाम मनन करो, तुलसी दास का मानस तो राम नाम ही का खजाना है।

अन्यान्य कवि भी संसार में स्त्री पुत्रादि के बंधन से मुक्ति पाने के लिए एक मात्र रामनाम ही मार्ग बताया है। देखिये निर्गुण उपासक जगत गुरु श्री कबीर दास जी अपने बीजक में कह रहे हैं।

जगत है रात का सपना। समुझ मन कोई नहिं अपना।
कठिन है मोह की धारा। बहा सब जात संसारा॥
घड़ा ज्यों नीर का फूटा। पात ज्यों डार से टूटा।
नर ऐसी जान जिन्दगानी। सबेरा शोच अभिमानी॥
देखि मत भूल तनु गोरा। जगत में जीवना थोरा।
त्यागि मद मोह कुटिलाई। रहो निःसंग जग माई॥

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्ग पाणेः जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः॥

स्वजन परिवार सुत दारा। सभी एक रोज हो न्यारा।

निकलि जब प्राण जावैगा। कोई नहिं काम आवैगा ॥
देखि मति भूल यह देहा। करो तुम राम से नेहा ॥
कटै जग जाल की फाँसी। कहैं गुरुदेव अविनाशी ॥

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रो !

भजन करो मोरे भैय्या, जपो रघुरइया, जीवन तेरा दो दिन का।
बीच भँवर में नैया पड़ी है, दीखै न कोऊ खेवैय्या ॥ जीवन तेरा० ॥
बालापन में खेलि के खोए, यौवन युवति जोन्हैय्या ॥ जीवन तेरा० ॥
वृद्ध भए तन काँपन लागे, बेटा न नाति पतोहिया ॥ जीवन तेरा० ॥
यह देही पानी का बुल्ला, पवन लगत फूटि जैय्या ॥ जीवन तेरा० ॥
"गंगादास" राम गुण गावो, दूसर न कोऊ सुनवैया ॥ जीवन तेरा० ॥
भजन करो मोरे भैय्या, जपो रघुरइया जीवन तेरा दो दिन का ॥

भैय्या बालकों, तथा सज्जनों ! श्रीराम जी का भजन करो, दो ही दिन का जीवन है। बेटा, नाती, बहू, बेटी, कोई काम में नहीं आवेगा। कोई एक वयोवृद्ध माता जी कह रही हैं।

जनि करो राम पराये की आशा ॥ टेक ॥
बेटा तो पालेउँ बुढ़ाई की खातिर, आई पतोहिया टूटि गए नाता।
आम लगायो फल की खातिर, वही पुरवैया चुवन लागे लाटा ॥
जनि करो राम पराये की आशा ॥

मानस देखिये—

सुत मानहिं मातुपिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥

कोई किसी का नहीं है "स्वारथ मीत सकल जग माहीं" सारा संसार कुटुम्ब बन्धु स्वार्थ के ही प्रिय हैं।

भैय्या बालकगण! देखिए नीच जातियों में भी भगवान् को भजन का सिद्धान्त है। वे भी विषय भोग कुटुम्बियों के कपट व्यवहार को बताते हुए निषेध कर रहे हैं।

राग कहरवा

दुनियाँ माया माँ भुलानि बा, केउ केहू क नाहीं रे॥ टेक॥
पर धन लूटि लूटि घर आनेनि, खायन सबै कुटुम्बवा।
मरतो बार हाथ नहिं लेहलैं, घर से एकौ दनवाँ॥
एकै चाललैं मसनवाँ केउ केहू क नाहीं रे॥
पर तिरिया से नेह लगवलैं, घर तिरिया बेगनवाँ।
यम के दूत बाँधि जब लेहलैं, करिहैं कौन बहनवाँ॥
भूलिलैं सारी चतुरनवाँ, केउ केहू क नाहीं रे॥
काम क्रोध मद लोभ मोह महँ, खोइलैं सकल जीवनवाँ।
साधु संत से प्रेम न कइलैं, भजिलैं न भगवनवाँ॥
भोगिलैं नरक पतनवाँ, केउ केहू क नाहीं रे॥
बालापन में खेलि के खोइलैं, यौवन युवति यौवनवाँ।
बूढ़ भये तन काँपन लागे, ओढ़िलैं अब कफनवाँ॥

मरि कै जरी मै खतमवाँ, केउ केहू क नाहीं रे ॥
रामनाम को भजन न कइलैं, अन्तकाल पछितनवाँ ।
"गंगादास" कहँ सुनु मनुआँ, भजिले तूँ भगवनवाँ ॥
कटि जइहैं यम यतनवाँ, केउ केहू क नाहीं रे ॥
दुनियाँ माया माँ भुलानि बा केउ केहू क नाहीं रे ॥

भैय्या बालक वृन्द ! तथा सज्जन वृन्द ! संसार "*विष्णुमायामोहिताः सर्वे स्त्रीपुत्रधनादिषु*"। संसार सिनेमा के खेल में भूला हुआ है, यथार्थ में स्त्री पुत्र कोई किसी का नहीं है। भगवान् ही—

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
सर्वस्व मे रामचन्द्रो दयालु नान्य जाने नैव जाने न जाने ॥

सबके सर्वस्व है "*स्वारथ रहित सखा सबही के*"। अन्य किसी को अपना न जान मान कर यही परम दयालु प्रभु श्रीराम जी को ही अपना सर्वस्व जान मान कर, उन्हीं का भजन स्मरण करना चाहिए। वही हमको संसार बंधन, यमपाश, कुंभीपाकादि नरक यातना पुनः नाना प्रकार शूकर कूकर योनियातनाओं से मुक्त करेंगे।

भैय्या बालक वृन्द ! तथा सज्जनों, आप संसारी कुटिम्बियों की तो कपट चातुरी लीला बराबर देख ही रहे हैं। और फलस्वरूप में जीव को जो ताड़ना हो रही है, यह भी देख रहे हैं। देखिए नीच जातियों में भी इस बात का विचार है और परस्पर वे भी कह रहे हैं।

राग कहरवा

तोहके माया घेरे बाटै जैसे जाला मकरी ॥ टेक ॥
बेटवा बिटिया और मेहरारू एकौ काम न अइहैं ।
सोने का कड़ा नोट का बंडिल इहैं पर रहि जैहैं ॥
साथे जाइ न एकौ दमड़ी ॥ जैसे जाला मकरी० ॥
प्राण निकलि जब जैहैं तोहरा, तनिक देर नहिं लगिहैं ।
दुश्मन ऐसन बाँधि के तोहिका, घटवा पर लै जैहैं ॥
फुकिहैं धरिकै हो लकड़िया ॥ जैसे जाला मकरी० ॥
प्राण के निकलत देर न लगिहैं, लेइहैं सब धन लूटि ।
बाँस तानि के ऐसन मरिहैं, जाइ खोपड़िया फूटि ॥
जैसे फूटै हो कँकरिया ॥ जैसे जाला मकरी० ॥
रामनाम का करो भजनवाँ, होइ जइहैं कल्यान ।
आखिर एक दिन तोहरे माथे, काल बिराजे आन ॥
धैके खूबै हो रगरिहै ॥ जैसे जाला मकरी० ॥
तोहके माया घेरे बाटै जैसे जाला मकरी ॥

भैय्या बालक वृन्द ! तथा सज्जनो, ऊपर की लिखी बातों से तो पूरा समझ में आगया होगा । यह सब दुर्दशा आँखों की देखी हुई है और व्यवहार में यथार्थ ऐसा ही प्रत्यक्ष भी है । फिर अपनी भी तो यही दशा होगी, भैय्या हम सभों की क्या दुर्दशा हो रही है और होती

हो रहेगी, *"ब्रह्म सृष्टि अस अचल अनादी"*। परन्तु इसका जो प्रतिकार बताया गया है। उसपर भी ध्यान देना चाहिए, इन सब दुर्दशाओं को देखते हुए, जानते हुए भी न माने और—

श्रीरामोऽत्र विभीषणोऽयमनघो रक्षो भयादागतः,
सुग्रीवानाय पालयैनमधुना पौलस्त्यमेवागतम्।
इत्युक्ताऽभयमस्य सर्व विदितं यो राघवोदत्तवा-
नार्तत्राण परायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः॥

भगवान् श्रीरामजी को रक्षक जानकर उनकी शरण न लें। तो हम सबों से मूर्ख और कौन होगा। तब तो यही चरितार्थ होता है।

जाकर मन इन सन नहिं राता। ते जग वंचित किए विधाता॥

अथवा *"कर से डारि परश मणि देहीं, काँच किरच बदले शठ लेहीं"*॥ इसके सिवाय और क्या होगा।

भैय्या बालक वृन्द! मित्रों! इस भारत भूमि, पुण्य क्षेत्र में मनुष्य शरीर पाकर, हेतु रहित कृपाकारी प्रभु परम सुहृद्।

राम प्राणप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

सभी के अहैतुक मित्रत्व, स्वभाव से ही प्रियत्व कारी भगवान् श्रीरामजी की शरण न लेते हुए। अपनी अविवेकिनी दुर्बुद्धि द्वारा इस शरीर से प्राप्त होने वाली पारस मणि रूपी रामभक्ति, उसको मोह अन्धकार में फेंक-कर इन्द्रिय विलासिता विषय भोग रूपी क्षणिक, फूटी हुई एक काँच की टुकड़ी के समान *"अवगुण मूल शूल प्रद, प्रमदा सब दुःख खानि"*

हलाहल विप को अधरामृत, कहकर स्त्रियों के मुख की लार ही पिया गया। जिसके द्वारा नरककुण्ड में पतन हुआ योनियातना, गर्भयातना दुःख को भोगना पड़ा—*"सहसा करि पाछे पछिताहीं, कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं"* ॥ इस प्रकार दुर्विचारी प्राणी को वेद पुराण में मूर्ख ही कहा गया है।

भैय्या बालक वृन्द ! यदि जानते-बूझते हुए भी भगवान् की शरण आप नहीं लेते हैं।

शोचनीय सबही विधि सोई। जो न छाँड़ि छल हरिजन होई ॥

प्रिय मित्रों ! आप भले ही कहें मैं पढ़ा लिखा विद्वान् हूँ, परन्तु विचार करने से आप हैं अबोध बालक ! देखिए, रावण भी तो अच्छा पढ़ा लिखा था, कुलीन ब्राह्मण था, वेद वेदान्त का परम पण्डित भी था। परन्तु *"रामनाम बिनु गिरा न सोहा"* रामनाम भजन बिना वाणी की शोभा नहीं हुई। वरना, यह कहना हुआ—*"विद्या बिनु विवेक उपजाए"* विद्या पढ़ लिखकर भी विवेक नहीं हुआ तो सब व्यर्थ हुआ देखिए, कविवर हरीप्रसादजी का कथन है। कवित्त—

लिखन पढ़न जानै, जल में तिरन जानै,
तुरग चढ़न जानै, चातुरी बखानी है।
जानैं नाड़ी वैदक रसायन छू मन्त्र जानैं,
यन्त्र तन्त्र योग जानै, युवती लुभानी है ॥
चोरी जानै जुआ जानै, ज्योतिष विचार जानै,
नाच गान तान जानै, तोता की कहानी है।

जानै न ब्रह्म ज्ञान हरिहर न जानै भक्ति,
राम नहिं जानैं तो वृथा जिन्दगानी है ॥

भैय्या बालक सब कुछ जानते हुए भी ब्रह्म परमात्मा को न जाना और उनकी भक्ति न किया तथा रामनाम न जाना तो जीवन वृथा है।

एक विस्वा हारे जो न मानै गुरु लोगन को।
तीनि विस्वा हारे खाय खर्चै न दाम को ॥
पाँच विस्वा हारे चोरी चुगुली लवारी करै।
दश विस्वा हारे गए तीरथ न धाम को ॥
हरिहर न सेए संत बारह विस्वा हारे सोई।
सोरह विस्वा हारे जो न तजे कोह काम को ॥
उन्नीस विस्वा हारे जो न कन्या बेचि धन खाय।
बीस विस्वा हारे जो विसारे रामनाम को ॥

भैय्या सब कुछ में हार भई सो तो साधारण हार हुई परन्तु बीसों विस्वा हार तो उसी की हुई जो रामनाम से हार हुआ अर्थात् रामनाम न प्राप्त कर सका। रावण की सब प्रकार हार क्यों हुई उसके पास केवल राम नाम कवच नहीं था *"राम नाम जपतां कुतो भयम्"* *"जगज्जैत्रेक मंत्रेण राम नानाभिरक्षितम्"* सारा जगत एक राम नाम ही से रक्षित है अंगद कहे—

जौ तैं भयसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ॥

आखिर भया वैसा ही—

एक लख पूत सवा लाख नाती । तेहि रावण घर दिया न बाती ।

रावण सर्व परिवार के सहित संहार हो जाने के बाद रावण के शव के पास बैठकर मन्दोदरी क्या कह रही है अहह प्राण नाथ!

जगत विदित तुम्हारि प्रभुताई । सुत परिजन बल बरणि न जाई ॥

राम विमुख अस हाल तुम्हारा । रहा न कुल कोउ रोवन हारा ॥

परम उदारशिरोमणि भगवान् श्री राम जी की परम प्रिया पतिव्रता सीता का हरण किए और परब्रह्म परमात्मा त्रैलोक विजयी उनसे बैर कर लड़ाई ठाने तुम्हारे इतना उत्पात अनीति करते हुए फिर भी तुम्हें सायुज्य मुक्ति अर्थात् अपने मुखारविंद में स्थान दिये ।

जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं ।
जेहि नमत शिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहि करुणामयम् ॥
आजन्म ते पर द्रोहरत पापौघ मय तव तनु अयं ।
तुमहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम् ॥

तुम्हारा पाप मय शरीर होते हुए भी तुम्हें निज धाम दिए ऐसे निर्मायिक ब्रह्म परमात्मा राम को मैं नमस्कार करती हूँ ।

अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपा सिंधु नहिं आन ।
योगि वृन्द दुर्लभ गति, तोहिं दीन भगवान ॥

अहह: प्राणनाथ, श्री रघुनाथ जी के समान कृपा सागर करुणा वरुणालय और कोई नहीं है योगियों को दुर्लभगति सायुज्य मुक्ति भगवान् तुम्हारे सरीखे पापी को दिए, इस प्रकार उदार प्रभु को—

जो अस प्रभु न भजहिं भ्रम त्यागी। ज्ञान रंक मति मंद अभागी॥

ऐसे प्रभु को जो माया ममता मिथ्या भ्रम को छोड़कर भजन नहीं करते वह मनुष्य ज्ञान के दरिद्री मंद बुद्धि अभागे हैं, प्रभु से विमुख मनुष्यों के लिए कविवर गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी कवितावली में क्या कहते हैं।

तिनते खर शूकर श्वान भले, जड़ता वश तेन कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं, सो सही पशु पूँछ विषानन द्वै॥
जननी कत भार मुई दशमास, भई किन बाँझगई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकी नाथ, जिए जगमें तुम्हरो विनु ह्वै॥

भाइयों, जिन्हें श्रीराम जी से प्रेम नहीं है वे बिना सींग पूँछ के पशु ही हैं इनसे तो सूकर गदहा और कुत्ते ही अच्छे हैं। ये इनसे भी गए बीते हैं, ऐसे नीच संतान को माता दश मास बोझा ढोकर क्यों मरी, बन्ध्या क्यों न रही, गर्भपात क्यों न हो गया, जो जीव जानकीनाथ का सेवक होकर नहीं है, ऐसा मनुष्य जल जाना चाहिए "*नतरु बाँझ भलि बादि बियानी*"। प्रिय सज्जनों ऐसे ऐसे हजार-हजार लाख-लाख कोटि कोटि धिक्कार ग्रंथों में पुराणों में कवियों ने किया है—

चतुराई चूल्हे परै, भट्ठी परै आचार।
तुलसी रघुबर भजन बिनु, चारो वरण चमार॥
राम जपत छुद्री भलो, चुर चुइ परत जो चाम।
कंचन देह निकाम है, जेहि मुख आवै न राम॥

अब इससे और क्या धिक्कार करना चाहिए—

राम राम कहु मोरे सारे। कब लगि रहवे टाँग पसारे॥
राम राम कहु मोरी ससुरी। कब लगि रहबी कोने घुसुरी॥

अब देखिए साला ससुरी तक कहा जा रहा है, फिर भी मनुष्य ऐसा बेशर्म निर्लज्ज हो गया है, जो अपना कर्त्तव्य नहीं करते उन्हीं को संसार यातना भोगनी पड़ती है।

भैय्या बालक वृन्द! ऊपर लिखे हुए शास्त्र विहित कर्तव्य को बार-म्बार पढ़ो, समझो और करो, तभी अपना कल्याण होगा। मानस तो आप सब सदा पढ़ते ही होंगे। यह अपने सब मनोरथ को देने वाला कलिकाल में प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है।

राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥

राम कथा कलिकाल में सब कामनापूर्ण करती है। सज्जनों की दृष्टि में संजीवनी मूल है। तो मानस में—*"यहाँ न विषय कथा रस नाना"* भगवान् के गुणानुवाद के सिवाय किसी प्रकार का विषय नहीं इसमें वर्णन है। श्री तुलसीदासजी हम सबों अबोध बालकों के प्रति महान् कृपा करके जीवों के हितार्थ नहीं करते तो—

वेद मत सोधि सोधि सोधि कै पुराण सबै,
सन्त औ असन्तन को भेद को बतावतो।
कपटी कुराही क्रूर कलि के कुचाली लोग,
कौन रामनाम हूँ की चर्चा चलावतो॥

'बेनी' कवि कहैं मानो मानो हो प्रतीति यह,
पाहन हृदय में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर से पार उतारतो कौन,
जो पै श्रीरामायण तुलसी न गावतो॥

भैय्या बालकगण! यदि तुलसीदास मानस रामायण नहीं बनाते तो हम सभों सरीखे निरक्षर अबोध अज्ञान बालकों को कौन बिना पैसे की शिक्षा देतो, रामनाम की चर्चा कौन कराता और भारी भवसागर से पार कराता अर्थात् रामनाम रूपी नौका कौन बताता। *"घोर भवनीर निधि नाम निज नाव रे"*। और भी देखिए, निर्गुण उपासक जगद्गुरु श्रीकबीरदासजी भी अपने शिष्यों को उपदेश देते हुये रामनाम की ही नौका बता रहे हैं।

रामहिं नाम विश्राम है जीव को, और विश्राम कछु नाहीं दीपै।
स्वर्ग अरु नरक पाताल छूटै नहीं, जहाँ जीव जाइ तहँ काल पीपै॥
देखु भवसिन्धु में नाम नौका बनी, तासु के बीच जब जीव आवै।
तरै भवसिंधु सुखधाम पहुँचै सही, काल की चोट पुनि नाहिं खावै।

यदि जीव किसी उपाय से नामरूपी नौका में प्रवेश हो सके। तो यह घोर संसार सागर से निश्चय करके पार उतर जायगा और अपने सुख स्थान साकेत बैकुण्ठादि में पहुँच जायगा। सदा के लिए जन्म मरण का भय देने वाले काल से मुक्त हो जाता। *"काली सन्मुख गए न खाई"*।

भैय्या बालक वृन्द! तथा सज्जन वृन्द! मैं तो आप सभों से अति ही अबोध बालक हूँ। कहाँ तक लिखूँ? लेखक शिरोमणि श्रीगोस्वामी

तुलसीदासजी तो अपने रामचरित मानस में सभी कुछ चित्रण करके लिख गये हैं। उसी को सर्वदा पढ़ो समझो और करो।

कहहि सुनहि अनुमोदन करही। ते गोपद इव भव निधि तरहीं॥

कोई भी जीव मानस को कहने वाला सुनने वाला अनुमोदन करने वाले सभी भयंकर संसार सागर को गौ पाद के समान विना परिश्रम के ही तर जाते हैं। परन्तु—

भैय्या बालक वृन्द ! कहना लिखना कवियों का है। पढ़ना समझना और करना तो अपने ही सबों को है। भैय्या ! करें वा न करें यह तो मरजी आपकी है।

करहु जाइ जा कहँ जो भावा। हम तो आजु जन्म फल पावा॥

परन्तु मैं तो अपना जीवन कृतार्थ समझ रहा हूँ *"हित अनहित पशु पक्षिउ जाना"* हिताहित का ज्ञान तो पशु पक्षी को भी है। *"आपन करनी, पार उतरनी"* मैं तो पुण्यक्षेत्र भारतभूमि में जन्म पाने का फलस्वरूप जो—

सबहिं भाँति मोहि दीन बड़ाई। निज जन जानि लीन अपनाई॥

प्रभु ने अपनी शरण में मुझे अपना लिया।

भैय्या बालक वृन्द ! न तो गोस्वामी जी का आपसे कोई वैर विरोध था और न मेरे ही से आपका कोई वैर विरोध है कि आपको कुमार्ग में चलने को कहेंगे। आपको क्यों नीचे गिरावेंगे। सन्तों के लिये भगवान् की आज्ञा है *"संत सरल चित जगत हित"* इसलिए गोस्वामी जी इतना परिश्रम करके हम सब अनभिज्ञों के लिए *"कल्याणानां निधानम्"* कल्याण का मार्ग बनाया है। और मैं उसी को दोहरा रहा हूँ। इसका कारण यह है मैं क्यों दोहराता हूँ। तो—

पर उपकार वचन मन काया। संत सरल स्वभाव खगराया॥

यदि मैं सन्त नहीं हूँ, फिर भी वेश तो संत का ही किया हूँ। इस लिये दोहरा रहा हूँ।

भैय्या बालक वृन्द! गोस्वामी जी तो चार सौ वर्ष की शाखी दे रहे हैं।

एक दिन तुलसी वो रहे, घर घर माँगहिं चून।
कृपा भई रघुनाथ की, लुचई दोनों जून॥

परन्तु गोस्वामी जी को आप प्रत्यक्ष नहीं देखे हैं। वह आज चार सौ वर्ष की बात कह रहे हैं। परन्तु भैय्या! मैं तो आपके सामने प्रत्यक्ष वर्तमान हूँ। मैं आज की साक्षी दे रहा हूँ कि "*सुखी न भयो अबहिं की नाईं*" एवं—

जबसे प्रभु पद पद्म निहारे। मिटे दुसह दुःख दोष हमारे॥

भैय्या! जबसे मैं प्रभु के चरणों की शरण लिया हूँ, तभी से हमारे सारे पाप दुःख दोष सभी मिट गए। "*कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब विधि सीतानाथ*"।

कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषण भए भूषण सरिस, सुयश चारु चहुँ ओर॥

आज मेरे सारे दुरित दुर्गुण दोष नष्ट होकर संसार में परम यशस्वी कह रहे हैं। चारों तरफ सुयश कीर्ति गान करते हुए साधुशिरोमणि बने हैं। सुग्रीव की तरह "*तनु विषयों चिन्ता जरे छाती*" परन्तु "*सो सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ*" इसी प्रकार "*निज जन जानि राम मोहि, संत समागम*

दीन्ह जो *"सतसंगति दुर्लभ संसारा"* और *"संत समागम राम धन तुलसी दुर्लभ न दोय"* परन्तु *"सो सब आज सुलभ मोहि स्वामी"* वह सभी आज मुझे सुलभ हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में मनुष्य शरीर बहुत भाग्य से प्राप्त होता है। *"यह संघट तब होइ जब पुण्य पुराकृत भूरि"* मनुष्य शरीर का सर्व प्रथम कर्तव्य वर्णाश्रम धर्म, कहा जाता है।

वर्णाश्रम निज-निज धरम चलहिं वेद पथ लोग।
करहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय शोक न रोग॥

वर्णाश्रम धर्म पालन करने का फल है। स्त्री, पुत्रादि विषयाशक्ति से वैराग्य, वैराग्य का फल है आत्मा परमात्मा का ज्ञान, ज्ञान का फल है आत्मा परमात्मा की एकता योग, योग का फल है आत्मा की परमात्मा में भक्ति, भक्ति का फल है आत्मा का परमात्मा में प्रेम, प्रेम का फल है आत्मा के द्वारा परमात्मा की सेवा, सेवा का फल है, इष्टदेव आत्मा के प्रति परमात्मा की प्रसन्नता इष्टदेव परमात्मा की प्रसन्नता का फल है। आत्म मिलन, जो—*"पूर्णमदः, पूर्णमिदं पूर्णात्"* पूर्ण काम *"तब यह जीव कृतारथ होई"*। वही पूर्ण काम।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी॥

वही सुख सच्चिदानन्द परमानन्द है। और *"जीव पाव निज सहज स्वरूपा"* वही जीव अपने स्वस्वरूप को प्राप्त हो जाता है वही जीवन मुक्त है। *"सजीवन मुक्तो भवति"*।

भैय्या बालक वृन्द ! वहीं तक जीव को पहुँचना है। यथा—

सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होइ सखी जिमि जिव हरि पाई॥

और यही प्रभु भगवान् श्रीरामजी की आज्ञा है।

मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥

यह जीव प्रभु श्रीरामजी का दर्शन चरण कमलों को प्राप्त करते ही अपना स्वस्वरूप प्राप्त कर सकता है। और अपना यथार्थ "ईश्वर अंस जीव अविनाशी" हो सकता है।

भैय्या बालक गण! इसलिये मैं तो धन्य धन्य हो चुका हूँ कि प्रभु "*निज जन जानि लीन अपनाई*"। अपने चरणों की शरण में स्वीकार कर लिए हैं। अब तो यही आशा है।

रामचरण पंकज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥

वर्णाश्रम के जो ३८ सोपान बताये गए हैं, वह तो उत्तीर्ण होकर प्रभु के चरणों की शरण तक पहुँच गया हूँ, अब जो निवृत्ति के २८ सोपान बताये गये हैं। उनमें से वैराग्य के प्रथम सोपान पर अर्थात् नाम वैराग्य पर आरूढ़ हूँ। और आगे बढ़ाने को प्रभु की इच्छा जैसी होगी। प्रभु तो कह रहे हैं। "*ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्तिते*" अर्थात् "*उर प्रेरक रघुवंश विभूषण*" एवं "*योगक्षेमं वहाम्यहम्*" अर्थात् अब मेरे ऊपर उत्तरदायित्व नहीं है हाँ प्रार्थी हूँ, कृपा का दया का आकाँक्षी हूँ। "*जासु कृपा नहिं कृपा अघाती*" वही प्रभु की ही कृपा से मोह जाल से मुक्त होकर यहाँ तक आया हूँ। वही प्रभु की ही कृपा से चरणकमलों तक पहुँचने का साहस करता हूँ और बारम्बार अहर्निशि यही श्री चरणों में प्रार्थना करता हूँ। हे प्रभु—

मेरे राम मुझे अपना लेना॥ टेक॥

अपने चरणों का दास बना लेना॥

ठोकरें खाईं बहुत इस जग के झूँठे प्यार पर।
इस लिए आया हूँ सीतापति तुम्हारे द्वार पर॥
अब मुझे तारो न तारो यह तुम्हारे हाथ है।
यदि न तारोगे तो बदनामी तुम्हारी नाथ है॥
जरा नाम की लाज बचा लेना। मेरे राम मुझे अपना लेना॥
गीध गणिका गज अजामिल की खबर ली आपने।
भक्ति द्वारा भीलनी को मुक्त कीन्हा आपने॥
भक्त कितने आप पै जीवन निछावर कर गए।
नाम लेकर आपका पापी हजारों तर गए॥
उन्हीं पतितों के साथ मिला लेना। मेरे राम मुझे अपना लेना॥
काम क्रोधादिक लुटेरों का हृदय में वास है।
पातकों का बोझ है अधमो की संगति पास है॥
पवन माया का चला है, भ्रम भवँर रहता है साथ।
बीच भवसागर में बेड़ा बिन्दु का बहता है नाथ॥
जरा धार से पार लगा देना। मेरे राम मुझे अपना लेना॥

हमारे दीन के प्रभु, भैय्या श्रीरामभद्र! मैं संसार सागर के बीच भँवर में पड़ा हूँ, मुझे इस अपार भवसागर से पार करके अपने चरणों की शरण सेवा में लगा लीजिए।

क्या तुम्हें दीन गज ने पुकारा नहीं ।
क्या दुखी गीध था तुमको प्यारा नहीं ॥
क्या यवन पिंगला को उधारा नहीं ।
क्या अजामिल अधम तुमने तारा नहीं ॥
वेगि आओ, आओ आओ न देरी लगाओ० ॥

किसके चरणों पै नीचा ये शिर मैं करूँ ।
आह का किसके दिल पै असर मैं करूँ ॥
किसका घर है कि जिस घर में घर मैं करूँ ।
आँख का विन्दु किसकी नजर मैं करूँ ॥
वेगि आओ, आओ आओ न देरी लगाओ० ॥

दासगंगा के गोदी दुलारे, न रहो मेरे नयनों से न्यारे ।
प्रभु है तूँ मेरा, दास हूँ मैं तेरा, मत रुलावो ॥
आओ आओ न देरी लगाओ ।
राम सुनि ले मेरी, मैं शरण हूँ तेरी, वेगि आओ ॥

भैय्या हो ! रामलाल हो ! प्यारे हो ! गुरु के दुलारे हो ! सरकार हो ! गुरु के मनोरथ पूर्ण करने हारे ! प्राणों के प्यारे। नयनों के तारे ! मेरे हृदय के सहारे ॥ वेगि आओ० ॥
भैय्यारे ! प्यारेरे ! दुलारेरे ! अब मत सतावो ! मत रुलाओ० ॥

भवभीर, अर्थात् संसार की योनियातना, जन्मयातना, यमयातना अर्थात् जन्म मरण के दुःख से जीव को मुक्त कर देते हैं। ऐसा जानकर शरण में आया हूँ परन्तु मेरे प्यारे, तुम तो कुछ भी कष्ट मत करो, मैं तो जीव हूँ। *"जीव कर्मवश दुःख सुख भागी"*। कर्माधीन हूँ, सुख दुःख भोगता रहूँगा, अपने कर्माधीन जन्मता मरता रहूँगा, परन्तु भैय्या, तुमतो सुखी ही रहो, परन्तु—

इतना तो करना स्वामी जब प्राण तन से निकलें।
श्री गंगा जी का तट हो, मेरे मुख में तुलसी दल हो॥
मेरे प्यारे तुम निकट हो॥ जब प्राण तन से निकलें॥

और भैय्या! आगे के लिए भी और प्रार्थना यह है।

जेहि योनि जन्मौं कर्म वश, तहँ राम पद अनुरागहूँ।

मैं कर्माधीन जहाँ भी शूकर कूकर जिस योनि में जन्म लूँ, वहाँ तहाँ आपके चरणों में प्रेम करूँ। और भी—

कठिन कर्म लै जाइ जहाँ, जहँ लौं अपनी बरियाई।
तहँ तहँ छन जनि छोह छाड़ियो कमठ अंड की नाईं॥

मैं जहाँ भी जाऊँ परन्तु *"गुरु निठुर विसरी जनि जाही"*। मुझे भूल मत जाना।

अशरण शरण विरद संभारी। मोहि जनि तजहु भक्त भय हारी॥

भैया राम भद्र! भक्तभय हारी विरद को स्मरण करते हुए, मुझे सदा ही रक्षा करते रहना, मैं चरणों से दूर न होने पाऊँ। भैया, मैं भले ही तुम्हे भूल जाऊँ, परन्तु आप मत भूलना।

बार बार पद लागहूँ, विनय करौं कर जोरि।
भक्त कामना कामधुक्, सुयश होहिं प्रभु तोरि ॥मैं भूलूँ तो०॥
राम सीय शोभा सुखद, महिमा गुण आगार।
प्रभु के दासहिं नाम बल, चाहत चरण तुम्हार ॥मैं भूलूँ तो०॥
एक भरोसा नाम को, राम तुम्हरिहिं आस।
विनय यही श्री चरण में, लघु मति गंगादास ॥मैं भूलूँ तो०॥

भैया, रामभद्र! मैं सब प्रकार अनाश्रित, अनाथ, अरक्षित हूँ। अपढ़, अज्ञानी, अबोध हूँ। वैराग्य, ज्ञान, भक्ति हीन हूँ। सर्व साधन हीन केवल तुम्हारे नाम का ही बल सहारा है। यही प्रार्थना करता हूँ कि मैं तुम्हारी माया वश भले ही तुम्हें भूल जाऊँ, परन्तु प्यारे तुम मुझे मत भूल जाना।

कवित्त

काहू के अधार जप योग पूजा पाठ नेम,
काहू के अधार होम संध्या प्रात शाम की।
काहू के अधार देश देशन के पुण्य क्षेत्र,
काहू के अधार वेद भाषैं चारो धाम की॥
काहू के अधार काम क्रोध मोह देह गेह,
काहू के अधार निज मित्र सुत बाम की।
मोहिं तो भरोसो एक कोशलेश सीताराम,
प्रीति औ प्रतीति है गणेश रामनाम की॥

भैया रामभद्र ! मुझे तो तुम्हारी तथा तुम्हारे नाम ही की गति है। श्री गोस्वामी तुलसीदास जी हमारे सरीखे अनभिज्ञ अपढ़ मूर्खों के लिए सरल उपाय अपना अन्तिम मन्तव्य बता गए हैं। कि *"राम नाम लीजिए"* मैं तो उसी पर जीवन बलिदान किया हूँ।

कवित्त

अल्प तो अवधि जीव, तामें बहु शोच पोच,
करिबे कहँ बहुत है पै काह काह कीजिए।
पार ना पुराणन को, वेदहूँ को अन्त नाहिं,
वाणी तो अनन्त मन कहाँ कहाँ दीजिए॥
काव्य की कला अनन्त छंद को प्रबंध बहु,
राग तो रसीले रस कहाँ कहाँ पीजिए।
सब बातन की एक बात तुलसी बताए जात,
जन्म जो सुधारा चाहो तो श्री रामनाम लीजिए॥

भैया राम भद्र ! मैं तो यही श्री गोस्वामी जी की आज्ञा शिरोधार्य करके अपना जीवन आपके चरणकमलों में समर्पण किया हूँ।

राम जी, तुम्हरे लिए हम कीन साधु का वेप॥ टेक॥
सुख ऐश्वर्य सबहिं कुछ त्यागा, फिरत विराने देश।
शान शौक भूषण सब त्यागे, जटा बनाये केश॥ रामजी०॥

खान पान इन्द्रिय सुख त्यागे, पावा न अपना रमेश ।

बन बन में तुम्हें खोजत डोलूँ, सबसे पूछूँ सँदेश ॥ रामजी० ॥

दिन नहिं भूख रात नहिं निंदिया, सहतहूँ कठिन कलेश ।

"गंगादास" दुःखित भयो भारी, पावत नाहिं सरेश ॥रामजी०॥

भैय्या रामलाल ! सब कुछ पाया हूँ, केवल तुम्हें नहीं पाया । परन्तु—.

तुम बिनु राम सकल सुख साजा । नरक सरिस दुहुँ राज समाजा ॥

भैय्या तुम्हारे बिना सभी सुख निरर्थक है । केवल एक ही बल, आसा रक्खे हूँ । श्री गोस्वामीजी कहते हैं ।

रामनाम कामतरु जोई जोई माँग है,

तुलसीदास स्वारथ परमारथ न खाँग है ॥

रामनाम कल्पवृक्ष है, जो जो माँगोगे, स्वार्थ चाहे परमार्थ कुछ भी कम न होगा । तो भैया, स्वार्थ में तो यह माँगता हूँ ।

तव पद पंकज प्रीति निरन्तर । सब साधन कर फल यह सुन्दर ॥

नहीं तो कहा गया है । भैय्या तुम्हारे चरणों में प्रेम न हो तो ।

सो सुख कर्म धर्म जरि जाऊ । जहँन राम पद पंकज भाऊ ॥

इसलिये—

योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू । जहाँ न राम प्रेम परधानू ॥

अब करि कृपा देहु वर एहू । निज पद सरसिज सहज सनेहू ॥

प्रथम, स्वार्थ में तो यह माँगना है कि आपके चरणों में सहज प्रेम हो पुनः—

पुनि दूसर माँगौं कर जोरे। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरे॥

दूसरा, परमार्थ में यह माँगता हूँ सो हे नाथ मेरे मनोरथ को पूर्ण करो।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अकथ अनादि अनूपा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन॥

परमार्थ स्वरूप जो आप हैं वही आपका परम मंगलमय विग्रह अनादि अप्राप्त, तुम्हें मैं सदा सर्वदा नेत्रों से देखता रहूँ।

भैया! रामभद्र! प्राण प्यारे! हृदय दुलारे! नयनों के तारे! *"तुम हमें देखो न देखो, हम तुम्हें देखा करूँ"*। जीवन धन, *"राम चरण पंकज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं"*। जीवन तो तभी सफल है जब तुम्हारे चरण पा जाऊँ, नहीं तो *"प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू"*। परम पद भी मेरे लिये निरर्थक ही है। इसलिए सदा, *"तव नाम जपामि"*। नाम जपता हूँ।

भैया रामभद्र! तुम्ही को सदा सर्वत्र पुकार रहा हूँ।

राम रामा पुकारूँ वन वन में। राम प्यारे बसो मेरे मन में॥टेक॥
वन में पुकारूँ सपन में पुकारूँ। पुकारूँ मैं पल्लव लटन में॥
जल में पुकारूँ औ थल में पुकारूँ। पुकारूँ मैं तारा गगन में॥
पशु-पक्षी ऋषि-मुनि में पुकारूँ। पुकारूँ मैं हीरा रतन में॥
"गंगादास" तन मन में पुकारूँ। हरिॐ मैं अपनी पतन में॥
राम रामा पुकारूँ वन वन में। राम प्यारे बसो मोरे मन में॥

भैया रामभद्र ! मेरे उपाय तो सारे निरर्थक हो गए, मेरे यत्न से तुम बहुत दूर हो, मैं तो हार गया।

राम तुम्हैं कौने वन खोजन जाऊँ ॥ टेक ॥
घर वन में सब खोजत हारेउँ। खोज कबहुँ नहि पाऊँ ॥
पर्वत नदी ताल सब खोजेउँ। खोजि थकेऊँ सब गाऊँ ॥
बाग बगीचा फूलवारिन में। खोजत हूँ सब ठाऊँ ॥
हौं हत भाग्य अधम शठ जड़ मति। कैसे मैं तुम्हहि सोहाऊँ ॥
गंगादास तुमहिं बिनु प्यारे। वृथा मैं जन्म गँवाऊँ ॥
राम तुम्हैं कौने वन खोजन जाऊँ ॥

भैया मेरे उपाय से बहुत दूर हो प्यारे:—

जेहि पूँछौं सो मुनि अस कहई। ईश्वर सर्व भूतमय अहई ॥
सो तुम ताहि तोहिं नहि भेदा। वारि बीचि इव गावहिं वेदा ॥
देश काल दिशि विदिशहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अग जग मय सब रहित विरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटैं जिमि आगी ॥

भैय्या, अब प्रेम कहाँ से लाऊँ, कोई ऐसा भी कहते हैं।

पर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयोनिधि महँ बस सोई ॥

राम बैकुंठ में रहते हैं, कोई कहते हैं क्षीर समुद्र में रहते हैं।

राम तुम्हैं कौने बन खोजन जाऊँ ॥

जग पेखन तुम देखन हारे । विधि हरि शंभु नचावन हारे ॥
तेऊ न जानहिं मर्म तुम्हारा । और तुमहिं को जाननि हारा ॥

भैया ! तुम्हें विधि हरिहर भी नहीं जानते तो मैं कैसे जानू ।

राम तुम्हें कौने मन खोजन जाऊँ ॥

भया रामभद्र ! तुमहिं बिना जाने सभी निरर्थक हैं ।

काम से रूप प्रताप दिनेश से सोम से शील गणेश से माने ।
हरिचन्द से साँचे बड़े विधि से मघवा से महीश विषय रस साने ॥
शुक से मुनि नारद से वक्ता चिरजीवन लोमस से अधिकाने ।
ऐसे भए तो कहा तुलसी जो पै राजिव लोचन राम न जाने ॥

भैया रामभद्र ! सब कुछ होते हुए, सब कुछ जानते हुए भी, जब त तुम्हें नहीं जाने तो सभी झूठा है । भैया तुम्हें जानने के लिए तो गोस्वा जी यही बता रहे हैं । क्या तो "*सोइ जाने जेहि देहु जनाई*" अथवा—

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ । नाम जीह जपि जानै तेऊ ॥

तुम्हारा गूढ़ तत्त्व, अर्थात् तुम्हें जो जानना चाहें तो आप नाम को जप कर जान सकते हैं । तो भैया तुम तो अपने परम प्यारे भ को ही जनाओगे वही जानेंगे ।

तुम्हरी कृपा तुमहिं रघुनन्दन । जानत भक्त भक्त उर चन्दन ॥

भैया, तुम्हारी कृपा से तो तुम्हारे भक्त ही तुम्हें जानेंगे, हे राम जिनके हृदय में आप भक्ति रूप होकर सदा ही चन्दन की तरह शीत

करते रहते हो। परन्तु मेरे सरीखे अभागे अभक्तों को तो तुम्हारा नाम ही अर्थात् राम नाम ही एक मात्र आधार है।

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत मिटै सकल जग जाला॥

भैया रामभद्र! मैं तुम्हारे वही नाम की शरण लेता हूँ जो—

तीरथ अमित कोटि शत पावन। नाम अखिल अघ पुंज नशावन॥

हमारे सरीखे घोर पापियों के सारे पाप ताप को नाश करते हुए पावन करता है। भैया *"एक भरोसा नाम को राम तुम्हारिहि आस"* अतएव—

रति रामहिं सों, गति रामहि सों, मति राम सों रामहि को बल है॥

भैया रामभद्र, तुम्हीं से रति है, तुम्ही में मति है, तुम्हारी ही गति है, और तुम्हारा ही बल है। हा राम।

राम रामा पुकारूँ वन वन में, राम प्यारे बसो मेरी गोदी में।

दो० जिनहिं न चाहिय कबहुँ कछु, तुमसन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु उर, सो राउर निज गेह॥

राम प्यारे बसो मेरी गोदी में॥

सब कर माँगहिं एक फल राम चरण रति होउ।
तिनके मन मन्दिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ॥

राम प्यारे बसो मेरी गोदी में।

यश तुम्हार मानस विमल हंसनि जीहा जासु।
मुक्ताहल गुण गण चुगहिं राम बसहु हिय तासु॥

राम प्यारे बसो मेरी गोदी में ॥

स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिनके सब तुम तात ।
तिनके मन मन्दिर बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥
राम प्यारे बसो मेरी गोदी में ॥
राम सीय शोभा सुखद महिमागुण आगार ।
गंगादासहिं नाम बल चाहत चरण तुम्हार ॥
राम रामा पुकारूँ बन बन में । राम प्यारे बसो मेरी गोदी में ॥

भैया रामभद्र ! मैं तो सर्व प्रकार निर्गुण हूँ। ऊपर कहे हुए तो कोई उपाय मुझे नहीं देख पड़ रहे हैं। मैं कैसे अपनी आशा पूर्ण करूँ। "*निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं*" अथवा "*मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं*" निज बुधि बल हीन हूँ, इसलिए हृदय में दृढ़ता नहीं होती है। "*नाथ सकल साधन मैं हीना*" अथवा "*जानी नहिं कछु भजन उपाई*"। भैया तुम्हारी सत्य प्रतिज्ञा "*तिनहिं मोर बल*" श्री मुखारविन्द से कहा गया है, उसी पर जीवन बलिदान किया है। भैया, मुझे तुम्हारा ही बल है, तुम्हारा ही विचार है। "*यदिच्छसि तथा कुरु*" मुझे तो केवल "*एक भरोसा नाम को राम तुम्हारिहि आश*" भैया हो, रामलाल हो, प्यारे हो, दुलारे हो, "*रामनाम कलि अभिमत दाता*" जान कर नाम ध्वनि लगाता हूँ।

राम ध्वनि लागी मोरे राम ध्वनि लागी ।
राम चरण पंकज जब देखौं । तब निज जन्म सुफल करि लेखौं ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बियानी । राम विमुख सुत ते हित हानी ॥

जाइ जियत महि सो महि भारू। जननी यौवन विटप कुठारू ॥
राम ध्वनि लागी मोरे राम ध्वनि लागी ।

जे पद परसि तरी ऋषि नारी। दंडक कानन पावन कारी ॥
जे पद जनकसुता उर लाए। कपट कुरंग सङ्ग धरि धाए ॥
हर उर सर सरोज वश जोई। अहो भाग्य मैं देखब सोई ॥
राम ध्वनि लागी मोरे राम ध्वनि लागी ।

मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं। भक्ति न विरति ज्ञान मन माहीं ॥
नहिं सतसंग योग जप यागा। नहिं दृढ़ चरण कमल अनुरागा ॥
एक बानि करुणा निधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की ॥
राम ध्वनि लागी मोरे राम ध्वनि लागी ॥

हे विधि दीनबंधु रघुराया। मोसे शठ पर करिहहिं दाया ॥
अनुज सहित मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ॥
फिरहिं दशा विधि कबहुँ कि मोरी। देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥

भैय्या रामभद्र ! सदा सर्वदा यही ध्वनि लगी है कि प्यारे तुम्हें कब देखूँ, गोदी में खिलाऊँ, लाड़ लडाऊँ, भोग लगाऊँ, जन्म सफल करूँ, भैय्या, श्रीराम नाम का फल मुझे कब मिलेगा, मैं कब अपने श्री प्रिया प्रीतम को गोदी में प्यार करते हुए यह प्रार्थना करूँगा, भैय्या)

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ॥

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना॥
सो न देव कछु मोर निहोरा। निजपन राखेउ जन मन चोरा॥
आजु सफल तप तीरथ त्यागू। आजु सफल जप योग विरागू॥
सुफल सकल शुभ साधन साजू। राम तुमहिं अवलोकत आजू॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरश आस सब पूजी॥
सबहिं भाँति मोहिं दीन बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥
होहिं सहसदश शारद शेषा। करहिं कल्प कोटिक भरि लेखा॥
मोर भाग्य राउर गुण गाथा। कहि न सिराहिं सुनिय रघुनाथा॥
मैं कछु कहौं एक बल मोरे। तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे॥
बार बार माँगौं कर जोरे। मन परिहरै चरण जनि भोरे॥
अब करि कृपा देहु वर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

भैय्या रामभद्र! यह मनोरथ मेरा कब पूर्ण होगा, भैय्या अपने गुरु जी की गोद में कब खेलोगे।

अपने गुरु जी की गोदियाँ, भैय्या कब खेलिहौ ना।
गुरुजी सूखी गैलेना, तुम्हरे चरण के वियोगिया गुरुजी सूखी गैले ना॥
जैसे बाग में लकड़ी सुखानी, प्यारे लकड़ी सुखानी, मैं वैसे सूखूँ ना।
तुम्हरे चरण के बिछोहवाँ, भैय्या मैं वैसे सूखूँ ना॥तुम्हरे चरण०॥
जैसे बाग में कोइली कुहुँके, भैया मैं वैसे कुहूकूँ ना।

हा राम ! हा राम ! बोली मैं वैसे कुहुँकूँ ना ॥तुम्हरे चरण०॥
जैसे बादलकूँ देखि चातक पुकारें, भैय्या, मैं वैसे पुकारूँ ना।
हा श्यामसुन्दर श्यामसुन्दर तुम्हें मैं वैसे पुकारूँ ना ॥तुम्हरे चरण०॥
जैसे मेघकूँ देखि मोरवा टिहूँकें, भैया, मैं वैसे टिहूँकूँ ना।
तुम्हरे मेघ मुख मंडलवा देखि, मैं वैसे टिहुँकूँ ना ॥तुम्हरे चरण०॥
जैसे पावस मैंहे दादुर कलोलैं, भैय्या दादुर कलोलैं, मैं वैसे कलोलूँ ना।
तुम्हरे करुणा नयनवाँ देखि मैं वैसे कलोलूँ ना ॥ तुम्हरे चरण० ॥
'गंगादास'तुम्हें हाथ जोड़ी विनती करैं, हाथ जोड़ी पैयाँ परैं, कब खेलिहौ ना।
अपने गुरु जी की गोदियाँ, भैय्या, कब खेलिहौ ना ॥तुम्हरे चरण०॥

अहा, भैय्या रामभद्र ! गुरु जी की यह आशा कब पूर्ण होगी, अथवा यों ही मर जाऊँगा।

जौ पै प्रिय वियोग विधि कीन्हा। तौ कस मरण न माँगे दीन्हा ॥

भैय्या, रामभद्र ! रामलाल ! अहा प्राण प्यारे !

हा रघुनन्दन प्राण पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते ॥

हा रघुनन्दन ! हा प्राणप्यारे ! तुम्हारे बिना जीते हुए बहुत दिन व्यतीत हुए।

का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूक पुनि का पछिताने ॥
तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करै का सुधा तड़ागा ॥

भैय्या रामभद्र ! कृषी नष्ट हो जाने पर वर्षा होने से क्या लाभ है।

प्राणी पिपासा से मर गया, पीछे अमृत के तालाब में डुबा दो तो क्या लाभ है। भैय्या, जब मैं मर ही जाऊँगा तो आकर क्या करोगे।

कारण कौन नाथ नहिं आये। जानि कुटिल प्रभु मोहिं बिसराए॥
जौ करणी समुझैं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कल्प शत कोरी॥
जन अवगुण प्रभु मान न काऊ। दीन बन्धु अति मृदुल स्वभाऊ॥

भैय्या, रामभद्र! अज्ञानी हूँ, अविचारी हूँ, अपराधी हूँ, क्षमा करो।

मेरे राम हृदय से लगा लो मुझे।
मेरे राम चरणियाँ धरा लो मुझे॥
हम तुम्हें देखि श्रीराम जिया करते हैं।
धन प्राण दान चरणों पै किया करते हैं॥
जिस तरह मत्त गजराज हुआ करते हैं।
उसी तरह हमारे नयन बहा करते हैं॥
जरा नाम की लाज बचा लो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगा लो मुझे॥
नित प्रेम वेलि पै पानी दिया करते हैं।
कब फूलेगी यह बाग तका करते हैं॥
कोई पूँछे क्या गुरुदेव किया करते हैं।
राम! तुम्हें आने की रास्ता सफा किया करते हैं॥

जरा गुरु की लाज बचालो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगा लो मुझे॥

भैय्या रामभद्र! क्या गुरु को हृदय से नहीं लगाया जाता। भैय्या रामलाल! आओ मैं तुम्हें हृदय से लगाऊँ।

भैय्या रामभद्र! तुम तो प्राणहूँ के प्राण, जीवन हूँ के जीवन हो। गोस्वामीजी तो यही कह रहे हैं।

जानत प्रीति रीति रघुराई॥ टेक॥

नाते सब हाँते करि राखत राम सनेह सगाई॥
नेह निबाहि देह तजि दशरथ कीरति अटल चलाई।
ऐसेहु पितु ते अधिक गीध पर ममता गुण गरुआई॥
तिय विरही सुग्रीव सखा लखि प्राण प्रिया बिसराई।
रण परेउ बन्धु विभीषण ही को हृदय शोच अधिकाई॥
घर गुरुगृह प्रियसदन सासुरे भई जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि शबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई॥
सहज स्वरूप कथा मुनि वर्णत रहत सकुचि शिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत वानर बन्धु बड़ाई॥
प्रेम कनावड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई।
तुम्हरो ऋणी हूँ कहेउ कपि सों ऐसो को मानै सेवकाई॥
तुलसी राम सनेह प्रीति लखि हृदय भक्ति नहिं आई।

तौ तोहिं जनमि जाइ जननी जड़ तनु तरुणता गँवाई ॥

जानत प्रीति रीति रघुराई ॥

भैय्या रामभद्र ! तुम तो सब प्रीति रीति जानते हो। "सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाव कुभाव"। सब के हृदय में अन्तरात्मा होकर विराजमान हो और सब के भाव-कुभाव को जानते हो। भैय्या मैं तो सब प्रकार निर्गुण हूँ। कैसे कहूँ? क्या कहूँ?

नाथ सों अब केहि भाँति कहूँ ॥ टेक ॥

समुझौं अति करुणा अपार हिय ताते मौन रहूँ।
अघसागर प्रभु ! प्रबलदण्ड यदि होइ मोहिं तबहूँ ॥
नाहिंन कछु भय नरक परत मोहिं अति अघ अवगुण हूँ।
यमयातना जो होइ विविध विधि योनिन जाल बहूँ ॥
औरौं कठिन काल यमदंडन जो कछु दंड लहूँ।
सो सब सहौं कहौं न आन कछु तुमसन सत्य कहूँ
एकहि दुःख करि दुःखित दिवस निशि कैसे मैं दुःसह सहूँ ॥
तव वियोग अति प्रबल अनल हिय तेहिते दहत अहूँ।
दीनदयाल विरद जनहित तुव तेहिते धीर लहूँ ॥
प्रभु का दास कहत कर जोरे दीनन दीन जहूँ।
तुम्हरो नाम दयासागर प्रभु काहे न मैं निबहूँ ॥

नाथ सों अब केहि भाँति कहूँ ॥

भैय्या! तुम तो प्रभु हो, दयासागर हो, मैं क्यों नहीं निस्तार होऊँगा।

पापिहु जाकर सुमिरण करहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥
मरतहु जासु नाम मुख आवा। अधमौं मुक्ति होइ श्रुति गावा॥
विवशहु जासु नाम नर कहहीं। जन्म अनेक रचित अघ दहहीं॥

भय्या रामभद्र! मैं तो तुम्हारे नाम का ही शरण लिया हूँ, क्यों नहीं संसार सागर से निस्तार पाऊंगा।

यदि नाथ का नाम दया निधि है तो दया भी करेंगे कभी न कभी॥

भैय्या राम भद्र! यदि तुम्हारा नाम दया निधि है तो कभी न कभी दया करनी ही पड़ेगी। *"अरिहुक अनभल कीन्ह न रामू"* अथवा *"प्रभु अपने नीचहु आदरहीं"* भैय्या, हैं तो आपही का हूँ, भले ही नीचहूँ, पतित हूँ।

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराणा॥

यह तो छिपी हुई बात नहीं हैं वेद शास्त्र पुराण, इतिहास, सभी में कवियों ने *"रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम"* गान किया हैं।

स्वपच शवर खश यमन जड़, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥

भय्या रामभद्र! यह तुम्हारी पतितपावनि कीर्त्ति तो सारे लोक लोकान्तरों में ख्याति होरही है कि *"सुना प्रभु पतित पावन घने"* अथवा

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिनहिं न पाप पुंज समुहाहीं॥

राम राम कह कर जो जम्हाई लेते हैं पाप समूह उनका सामना तक नहीं करता, तो भैय्या मैं तो तोता मैना की तरह—

जिस अंक की सोभा सुहावनि है, जिस श्यामल रंग में मोहनि है।
वही रूप सुधा से सनेहियों के दृग, प्यासे मरेंगे कभी न कभी ॥
जहाँ गीध निषाद का आदर है, जहाँ व्याध अजामिल का घर है।
वही रूप बना के वही घर में हम जा बैठेंगे कभी न कभी ॥
करुणानिधि नाम सुनाया जिन्हें, कर्णामृत पान कराया जिन्हें।
सरकार अदालत में ये गवाह सभी गुजरेंगे कभी न कभी ॥
हम द्वार पै आपके आके पड़े मुद्दत से यही ज़िद पर हैं अड़े।
अघसिंधु तरे जो बड़े से बड़े तो ये "बिन्दु" तरेंगे कभी न कभी ॥
यदि नाथ का नाम दयानिधि है तो दया भी करेंगे कभी न कभी ॥

रामराम रामराम रामराम राम,
रामराम रामराम रामराम राम।
रामराम रामराम रामराम राम,
रामराम रामराम रामराम राम।
रामराम रामराम रामराम राम,
रामराम रामराम रामराम राम।
रामराम रामराम रामराम राम,
रामराम रामराम रामराम राम।
रामराम रामराम रामराम राम,

रामराम रामराम रामराम राम।

रामराम रामराम रामराम राम,

रामराम रामराम रामराम राम॥

सदा सर्वदा राम नाम ही रट रहा हूँ तो क्या मैं निष्पाप नहीं होऊँगा। हो न हो। *"राम निकाई रावरी है सबही को नीक"*

भैया रामभद्र! यदि तुम्हारा सुन्दर उदार स्वभाव सभी के लिए मंगल है तो क्या मेरे लिये अमंगल हो जायगा।

भैय्या! मैं तो सदा सर्वदा तुम्हारी ही जय जय कार मनाता हूँ। तुम्हारा ही नाम राम राम रटता हूँ।

राम भजो सियरामा, जय जय सियारामा।

जय रघुवंश वनज वन भानू। गहन दनुजकुल दहन कृशानू॥

जय सुर विप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥

विनय शील करुणा गुण सागर। जयति वचन रचना अति नागर॥

सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय शरीर छवि कोटि अनंगा॥

करौं काह मुख एक प्रशंसा। जय महेश मन मानस हंसा॥

अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता। क्षमहुँ क्षमामन्दिर दोउ भ्राता॥

राम भजो सियरामा, जय जय सियारामा।

भैय्या रामभद्र! अज्ञानी हूँ, सदा पातकी हूँ, सदा अनुचित ही करता हूँ। क्षमा करो, क्षमा करो क्षमा करो।

भैय्या पापात्मा जीव! सुमन तुम आर्त्त स्वर से अपने प्रभु को पुकारते ही *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"*। प्रभु को मिलने में विलम्ब होने से घबराओ मत—

राम नाम रटते रहो, जब लगि घट में प्रान।
कबहूँ दीन दयाल के, शब्द परैगी कान॥

भैय्या सुमन! जब तक तू राम नाम भजन नहीं करोगे तब तक न तो तुम्हारे हृदय का अन्धकार ही दूर होगा, और न विषय से ही निवृत्ति होगी। परन्तु मरना जरूरी है, कहा जाता है।

न बचै कोउ पंडित वेद पढ़े न बचै कोउ ऊँचे चिनाए अटा।
न बचै कोउ जंगल वास किये न बचै कोउ शीश बढ़ाए जटा॥
दिन चारि छलावन यों तुलसी नर नाहक को सब ठाठ ठटा।
भला जो चहो तो सियराम रटो नहिं आइ अचानक काल डटा॥

भैय्या सुमन! इस काल बली से कोई नहीं बचेगा।

अंड कटाह अमितलय कारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी॥

तुम एक ही नहीं, अनन्त ब्रह्माण्ड काल के आधीन है काल सदा सर्वदा दुरत्यय है। वह अचानक ही आकर हमारे सारे उद्योगों को समाप्त करके हमको लेकर चला जायगा। हमको और कुछ करने का एक निमेषहूँ का समय न होगा। इसलिये—

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करोगे कब्ब॥

बस पलक मात्र का ही समय है जो करना हो अभी करो, पलक पड़ते पड़ते काल आकर तुम्हारा संसार रूपी शरीर को फोड़ फाड़कर महाप्रलय कर देगा। फिर तो तूँ माटी का ढेर बन जायगा फिर करोगे कब ? अतएव।

श्वाँस श्वाँस प्रति राम कहु वृथा श्वाँस मत खोय।
न जाने केहि श्वाँस से, आवन होय न होय॥

न जाने किस समय श्वाँसा बाहर जाकर अन्दर न आवै, तो जीवन निरर्थक न करते हुए श्वाँस श्वाँस प्रति राम राम कहो, भैय्या माता के गर्भ में भगवान से हम यह चुकती किए हैं कि प्रत्येक श्वाँस में आप का नाम लूँगा। श्वाँस श्वाँस राम कहो, श्वाँस वृथा मत जाने दो, आप देखते ही हैं श्वाँसा बारम्बार बाहर जाता है भीतर आता है, अगर बाहर जाकर भीतर न आवै तो क्या अपने वश की बात है। वह तो जैसे इलेक्टरी बत्ती का सुइज बन्द होते ही बत्ती बुझ जाती है। ऐसे ही श्वाँस बन्द होते ही तुम्हारे सब कर्त्तव्य समाप्त हो जायँगे फिर राम: नाम कब करोगे। भैय्या !

रे मन ये दो दिन का मेला रहेगा।
कायम न जग का झमेला रहेगा॥
किस काम का ऊँचा जो महल तूँ बनाएगा।
किस काम का लाखों का जो तोड़ा कमाएगा॥
रथ हथियों का झुंड भी किस काम आएगा।

तूं जैसा यहाँ आया था वैसा ही जायगा ॥
तेरे सफर में सवारी के खातिर काँधे पे ठठरी का ठेला रहेगा ॥
रे मन ये दोदिन का मेला रहेगा कायम न जग का झमेला रहेगा ॥

कहता है ये दौलत कभी आएगी मेरे काम।
पर यह तो बता धन हुआ किसका भला गुलाम ॥
समझा गए उपदेश हरिश्चन्द्र कृष्ण राम।
दौलत तो नहीं रहती है रहता है केवल नाम ॥
छूटेगी सम्पति यहाँ की यहीं पर तेरी कमर में न धेला रहेगा ॥
रे मन ये दोदिन का मेला रहेगा कायम न जग का झमेला रहेगा ॥

साथी हैं मित्र गंग के जल बिन्दु पान तक।
अर्धांगिनी बढ़ेगी तो केवल मकान तक ॥
परिवार के सब लोग चलेंगे मसान तक।
बेटा भी हक निबाहेगा तो अग्नि दान तक ॥
इससे तो आगे भजन ही है साथी हरि के भजन बिनु अकेला चलेगा ॥
रे मन ये दोदिन का मेला रहेगा कायम न जग का झमेला रहेगा ॥

भैय्या प्राणी ! यह स्त्री पुत्र वा तुम्हारा निज शरीर सदा तैय्यार नहीं रहेगा। अन्त मे तुम्हारे हाथी घोड़े कोठा मगात धन सर्वस्व यहाँ का यहाँ ही रह जायगा और तुम्हारे लिए जय मसान में हवा खाने के

सफर में चलोगे तो घर के जीर्ण सीर्ण रद्दी पुराने बाँस के फट्टे की ठठरी बनाई जायगी और चार आदमी लेकर मसान तक पहुँचा देंगे, बस तुम्हारी यात्रा समाप्त होगई। हाथी, घोड़ा, दौलत किस काम को हुई इस-लिए *"भजन करो मोरे मैय्या, जपो रघुरैया जीवन तेरा दो दिन का"*।

मैय्या मन! तुम्हारे जीवन की अवधि दो दिन की ही है *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"*। राम राम भजन करो।

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग यामिनी,
देह गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी ॥
सोवत सपनेहूँ सहै संसृति सन्ताप रे,
बूड़ेउ मृग वारि खाये जेंवरी को साँप रे ॥
कहैं वेद बुध तूँ तो बूझि मन माहिं रे,
दोष दुःख सपने के जागे ही पै जाहिं रे ॥
तुलसी जागे ते जाइ ताप तिहुँ ताप रे,
राम शुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥

मैय्या प्राणी! स्वप्न का दुःख तो जागने ही से निवृत्त होता है। हम मोह रूपी रात्रि में सोए हैं स्वप्नवत् स्त्री पुत्रादि देख रहे हैं। नाना प्रकार दुःख अनुभव कर रहे हैं इससे छुटकारा तो तभी होगा, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होंगे और ममता रूपी नींद छूट जायगी भगवान् के भजन सेवा रूपी कार्य में लग जायेंगे। दुःख की निवृत्ति एवं सुख शान्ति तभी होगी।

जो पै रहनि राम से नाहीं ॥ टेक ॥
तौ नर खर कूकर शूकर सम वृथा जियत जग माहीं ॥
काम क्रोध मद लोभ नींद भय भूख प्यास सबही के।
मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पिय के ॥
सुर सुजान सुपूत सुलच्छन गनियत गुण गरुआई।
बिनु हरि भजन इँदारुणि के फल तजत नहीं करुआई ॥
कीरति कुल करतूति भूति भल शील स्वरूप सलोने।
तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने ॥
जो पै रहनि राम से नाहीं ॥

भैय्या मन ! यदि राम से प्रेम नहीं है, तो यह जीवन गदहा, शूकर, के समान है। वृथा संसार में जीवित है। भैय्या—"*राम भजे हित होइ तुम्हारा*"।

भैय्या मन ! देखो, विचारो और रामराम भजन करो, तुम देखो, तुम्हारे लिए ग्रंथकारों ने क्या क्या धिक्कार दिया है। शाला बहनचोद क्या इससे अधिक होगा।

भैय्या मित्रों ! यह तो मैं एक दिग्दर्शन मात्र करा रहा हूँ यह भी "*स्वान्तः सुखाय*" या "*करन पुनीत हेतु निज बाणी*"। यही बात तो श्री वेदव्यासजी अपने अठारह पुराणों में भूरि भूरि वर्णन किये हैं। आदि कवि श्री वाल्मीकि जी शतकोटि रामायण रचना करके धर गए हैं और बाकी जो कुछ था वह "*नाना पुराण निगमागम सम्मतम्*" सब एकत्र करके

श्री गोस्वामी तुलसीदासजी लिखकर अपने वाहर ग्रन्थों में धर गये हैं। जिसमें सर्वोपरि रामचरित मानस है। जो वर्त्तमान काल में वेद मन्त्र कह कर पूज्य हो रहा है। कहा जाता है—

जे यह कथा सनेह समेता। कहिहहिं सुनहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं रामचरण अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥

पुनः अधिक से अधिक फल दायक, निश्चय किया जाता है।

सो०—भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीयराम पद प्रेम, अवशि होहिं भवरस विरति॥

इत्यादि कहा जा रहा है और यह भी कहा गया है।

मज्जन फल देखिय तत्काला। काक होहिं पिक बकहु मराला॥

और यदि पढ़ते सुनते हुए भी किसी अभागे को वैराग्य न हुआ तो उनके लिए यह कहा जा रहा है।

कहत सुनत सतिभाव भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥
सुमिरत भरतहि प्रेम राम को। जेहि न सुलभ तेहि सरिस बाम को॥

भरतलाल के सतभाव को कहते सुनते हुए कौन को श्रीसीताराम के चरणों में प्रेम न होगा अर्थात् सभी को होगा और भरत को श्रीरामजी के चरणों का प्रेम कहते सुनते हुए और स्मरण करते हुए भी प्रेम राम में न हुआ तो—"*कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती*"। अर्थात् उससे विधाता ही विमुख है और क्या कहा जा सकता है। भैय्या प्राणियों! आप तुलसीदास कृत रामायण तो पढ़ते ही हैं अगर न पढ़ते हों तो आज से ही शुरू करें।

कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषण भए भूषण सरिस, सुयश चारु चहुँ ओर ॥
जो सुख सुयश लोकपति चहहीं।
करत मनोरथ सकुचत अहहीं ॥
सो सुख सुयश सुलभ मोहिं आजू।

आज मेरे लिए सब सुख सब ऐश्वर्य सुगम हुआ है मैं सदा परमानन्द हूँ परन्तु इस सुख का मार्ग मुझे मानस रामायण से मिला है।

हमें निज धर्म पर चलना बताती रोज रामायण।
सदा शुभ आचरण करना बताती रोज रामायण ॥
जिन्हें संसार सागर से उतर कर पार जाना है।
उन्हें सुख से किनारे पर लगाती रोज रामायण ॥
कहीं छवि विष्णु की बाँकी कहीं शंकर की झाँकी है।
हृदय आनन्द झूले पर झुलाती रोज रामायण ॥
सरल कविता की कुंजों में बना मन्दिर है हिन्दी का।
जहाँ प्रभु प्रेम का दर्शन कराती रोज रामायण।
कभी वेदों के सागर में कभी गीता की गंगा में।
कभी रस बिन्दु में मन को डुबाती रोज रामायण ॥
हमें निज धर्म पर चलना बताती रोज रामायण।

भैय्या सुमन ! रामायण तुम्हें क्या बता रही है।

मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद गिरा नयन बह नीरा॥
तनु पुलकित हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जपु लोचन नीरू॥

भैया मन ! पुलकित रोमाञ्चित होकर रोते हुए और अपने हृदय में विराजमान श्रीराम लक्ष्मण जानकी का स्मरण करते हुए प्रेम मग्न होकर जिह्वा से रामराम रामराम बोलो।

राम बोल मोरी रसना घड़ी घड़ी॥ टेक॥
वृथा बिताती है क्यों जीवन सुख मन्दिर में पड़ी पड़ी।
अहनिशा श्री रामनाम ध्वनि श्वाँस श्वाँस से लड़ी लड़ी॥
जाग उठेंगे तेरी ध्वनि पर यह काया की कड़ी कड़ी।
वर्षा दे प्रभु नाम सुधारस बिन्दु बिन्दु से झड़ी झड़ी॥
राम बोल मोरी रसना घड़ी घड़ी॥

भैया ! तुलसी कृत रामायण तो यही बता रही है और भी तुलसी कृत रामायण में रामनवमी आती है। वह क्या कहती है देखो—

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। शुक्लपक्ष अभिजित हरि प्रीता॥

यह हमारे लिए क्या क्या स्मरण कराती है और कहती है।

हिन्द में प्रति वर्ष यह आती है नौमी राम की।
राम का सुमिरण करा जाती है नौमी राम की।

किस तरह माँ बाप का सत्कार करना चाहिए ।
किस तरह भाई से अपने प्यार करना चाहिए ॥
किस तरह दीनों के प्रति उपकार करना चाहिए ।
किस तरह इस देश का उद्धार क'ना चाहिए ॥
राम के यह गुण को बता जाती है नौमी राम की ।
राम सुमिरण को बता जाती है नौमी राम की ॥
चक्रवर्ती राजपद को त्यागने में तीव्र त्याग ।
निषाद भील गीध से मिलने में था श्रद्धानुराग ॥
वन में चौदह वर्ष बस जाने में था उत्तम विराग ।
बज रहा था जिस्म की रगरग में सचाई का राग ॥
याद यह बातों को दिला जाती है नौमी राम की ।
राम का सुमिरण करा जाती है नौमी राम की ॥
प्रेम करने में भरत दृग विन्दु का आदर्श लो ।
शरण जाने में विभीषण भाव का उत्कर्ष लो ॥
दास बनने में सदा हनुमान का सा हर्ष लो ।
मन्त्र यह प्रति पक्ष लो प्रति मास लो प्रति वर्ष लो ॥
यह सन्देश शुभ सुना जाती है नौमी राम की ।
राम का सुमिरण करा जाती है नौमी राम की ॥

इस अपार संसार सिन्धु में रामनाम आधार है।
जिसने मुख से श्रीराम कहा उस जन का बेड़ा पार है ॥

इस भवसागर में तृष्णा नीर भरा है,
फिर कामादिक जल जीवों का पहरा है।
यदि कहीं कहीं पर भक्ति सीप होती है।
तो उसके अन्दर राम नाम मोती है ॥
इन्हीं मोतियों से नर देही का सुन्दर शृङ्गार है।
जिसने मुख से श्रीराम कहा उस जन का बेड़ापार है ॥

कलिकाल महानद अगम विषय जलधारी।
उठती है माया लहर भँवर भ्रम भारी ॥
इसमें जब नर हरिनाम नाव पाता है।
वो पलभर में ही पार उतर जाता है ॥
रामनाम रस विन्दु कुशल केवट ही खेवनहार है।
जिसने मुख से श्रीराम कहा उस जन का बेड़ापार है ॥

भैया सुमन ! इस रामनाम की महिमा तो मानस रामायण से ही मनुष्य सीखता है व जानता है। सो मानस अवश्य करके पारायण करना चाहिए, मानस कल्पतरु है।

श्री राम भजन में जब तक मन तू न मगन होगा।
जग जाल छूटने का तब तक यतन न होगा ॥

व्यापार धन कमाकर तू लाख भाग सजले ।
होगा सुखी न जब तक संतोष धन होगा ॥
जप यज्ञ होम पूजा व्रत और नेम तू कर ले ।
सब व्यर्थ हैं जो मुख से श्रीराम भजन न होगा ॥
संसार की घटा से क्या प्यास बुझ सकेगी ।
चातक दृगों का जब तक न घनश्याम घन होगा ॥
तूँ तौल कर जो देखे आँखों का प्रेम मोती ।
एक बिन्दु पर त्रिलोकी भर का वजन न होगा ॥

अहा क्या कहना है भैय्या ! "*रामहि केवल प्रेम पियारा*" त्रैलोक की संपदा से प्रभु प्रसन्न नहीं होते हैं। परन्तु भक्तों के एक बिन्द प्रेमाश्रु से बिक जाते हैं भक्तों के आधीन होकर "*अहं भक्त पराधीन*" कहते हुए साकेत वैकुंठ से दौड़े आते हैं। भैय्या सुमन ! यह प्रेम भक्ति भी तो आप को रामायण ही बता रही है।

प्रेम भक्ति जल बिनु रघुराई । अभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई ॥

अपने प्यारे श्रीराम जी से रो रो कर प्रेम भक्ति माँगो। प्रेम भक्ति तो सरकारी ही देन है अन्यत्र नहीं मिलती, "*राम कृपा काहू एक पाई*" बारम्बार याचना करो बारम्बार माँगो चरणों में पड़ो, प्रार्थना करो।

न शुभ कर्म धर्माधिकारी हूँ भगवन् ।
तुम्हारी दया का भिखारी हूँ भगवन् ॥

न विद्या न बल है न सुन्दर सुमति है।
न जप है न तप है न सद्ज्ञान मति है॥
न भवदीय चरणों में श्रद्धा सुरति है।
दुराशा मई दुश्चरित प्रकृति की है॥
अधमहूँ अकल्याण कारी हूँ भगवन्,। तुम्हारी दया का० ॥

जो अनमोल नर जन्म था मैंने पाया।
उसे तुच्छ विषयादिकों में गँवाया॥
न परलोक का दिव्य साधन कमाया।
किसी के न यह लोक में काम आया॥
वृथा भूमि का भार भारी हूँ भगवन्॥ तुम्हरी दया का०॥

किसी का न उपदेश कुछ मानता हूँ।
न अपने सिवा और को जानता हूँ॥
कथन शुद्ध सिद्धान्त मय छानता हूँ।
सभी से सदा दंभ हठ ठानता हूँ॥
कठिन क्रूर दण्डाधिकारी हूँ भगवन्॥तुम्हारी दया का०॥

विकृत वृत्ति है पूर्व कृत कर्म फल में।
परा आवरण शुद्ध चेतन विमल में॥

बँधी आत्म सत्ता अविद्या प्रबल में।
मन मृग फँसा मृगतृषा बिन्दु जल में॥
महा दीन दुर्बल दुखारी हूँ भगवन् ॥तुम्हारी दया का०॥

भगवन् मैं कोई शुभ कर्म नहीं किया हूँ फिर भी वाचालता वश धृष्टता से तुम्हारी दया की भीख माँगता हूँ। प्रभु कृपा करो! प्रभु कृपा करो!! प्रभु कृपा करो!!!

अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करौ जग याचक बानी॥

"श्रवण सुयश सुनि आयउँ" अर्थात् *"मंगल सदहि न जिनके नाहीं"*।

भैय्या रामभद्र! *"तुमहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं"* *'एक भरोसा नाम को राम तुम्हारी ही आस"*।

भैय्या सुमन! तुम तो रामनाम का आश्रय लेकर अपनी जिह्वा को उत्साहित करते रहो। हे जिह्वे—

रामनाम रटते रहो, जब लगि घट में प्रान।
कबहूँ दीनदयाल के, भनक परैगी कान॥

चातक की तरह बल्कि उससे भी अधिक रट लगाए रहो।

रुचिर रसना तूँ राम, राम क्यों न रटत।
सुमिरत सुख सुयश बढ़त, अघ अमंगल घटत॥
बिनु श्रम कलि कलुष जाल, कटु कराल कटत।
दिनकर के उदय जैसे, तिमिर तोम फटत॥

योग याग जप विराग, तप सुतीरथ अटत ।
बाँधिवे को नौ गयन्द, रेणु की रजु बटत ॥
परिहरि सुरमणि सुनाम, गुंजा लखि लटत ।
लालच लघु तेरो लखि, तुलसी तोहिं हटत ॥
रुचिर रसना तूँ राम, राम क्यों न रटत ॥

हे रुचिकर मधुर स्वाद जानने वाली रसना तूँ *"मधुरं मधुराक्षरम्"* जो *"स्वाद तोषसम"* सदा के लिए संतोष दायक स्वाद देने वाला राम राम रट कर क्यों सन्तुष्ट नहीं होती । इसकी परीक्षा स्वरूप जब नौरस षटरस सभी फीका लगने लग जाय तो जानना कि मैं रामनाम का स्वाद पा रही हूँ । हे जिह्वे ! तूँ देख तुलसीदास जी क्या कह रहे हैं ।

रामराम रामराम रामराम जपत,
मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत ॥

कहु केहि लहे फल रसाल बंबुर बीज बपत,
हारहिं जनि जन्म जाइ गाल गूल गपत ।
काल कर्म गुण स्वभाव सबके शीश तपत,
राम नाम महिमा की चर्चा चले चंपत ॥

साधन बिनु सिद्धि सकल विकल लोग लपत ।
कलियुगं वर वणिज विपुल नाम नगर खपत ॥

नाम सो प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत ।
पावन किए रावणारिपु तुलसीहु सो अपत ॥
रामराम रामराम रामराम जपत ॥

भैय्या सुमन ! तुम मन लगाकर रामरामराम की ध्वनि लगाओ, रामनाम के भजन से तुम्हें सुख शान्ति मिलेगी। मंगल, आनन्द उदय होगा और कलिकाल के सभी पाप, ताप, छलछिद्र, काम, क्रोधादि नष्ट हो जायेंगे। देखो निर्गुण उपासक जगद् गुरु श्री कबीरदास जी भी तो यही कह रहे हैं। यथा—

जियरा जाहुगे हम जानी ॥ टेक ॥
राज करन्ते राजा जइहैं रूप धरन्ते रानी ॥
चाँदी जइहैं सूर्यौ जइहैं जइहैं पवन औ पानी ।
मानुष जन्म अहै अति दुर्लभ तुम समुझो अभिमानी ॥
लोभ लहर की नदी बहत है बूड़ोगे बिनु पानी ।
योगी जइहैं जंग मचइहैं औ जइहैं बड़ ज्ञानी ।
कहैं कबीर एक संत न जइहैं जिन रामनाम चित्त ठानी ॥
"न मे भक्तः प्रणश्यन्ति" एवं "ताते नाश न होइ दास कर"।
जियरा जाहु गे हम जानी ॥

भैय्या सुमन ! राजा, प्रजा, यती, सती, योगी, जंगम, ज्ञानी, विज्ञानी सभी चले जायेंगे।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा ॥

सभी संसार लोक लोकान्तर काल का ग्रास बन जाता है। परन्तु जो बड़भागी जन का श्रीरामनाम आश्रय लिये हैं उन्हीं के लिए "*श्रीराम नाम जपतां कुतो भयम्*" अथवा "*कालौ सन्मुख गए न खाई*"। "*जगज्जैत्रैक मंत्रेण राम नामाभि रक्षितम्*"। केवल रामनाम ही सारे संसार का रक्षक है वही रामनाम की शरण जो लिया है वही त्रिकाल रक्षित है। "*जग में राम भजा सो जीता*"।

भैय्या सुमन! इसको पढ़ो, समझो और करो, देखो मनुष्य शरीर अति ही दुर्लभ है। "*नर समान नहि कौनिहुँ देही*"। भैय्या! यह नर शरीर पाते हुए भी मोह अज्ञानता वश इसमें अभिमान लोभ की तरंगे उठ रही हैं यह सदा शुष्क जल न होते हुए भी मृग तृष्णा जल में हम डूब रहे हैं। हे प्राण! हे मन! "*तुम राम भजन करु प्राणी*" तुम राम भजन करो, अज्ञानता अन्धकार को दूर करो। "*रामनाम मणि दीप धरु*" भैय्या सुमन! देखो विचारो—

अपने घट में दियना बार रे।
ध्यान का तेल सुरति की बाती ब्रह्म अग्नि उद्गार रे ॥
झूठा जान जगत का नाता बारम्बार विचार रे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो रामनाम चित धार रे ॥
अपने घट में दियना बार रे ॥

भैय्या सुमन! आगे पढ़ो, अपनी यही सेवा है।

लगन यह राम सो लागी, प्रीति कर सकल छल त्यागी।
करो पद बंदिगी सेवा, तजो सब इष्ट अरु देवा ॥

मिलन है रूप अर रेखा, सकल घट वस्तु निज देखा।
जाहि सुर शंभु अज ध्यावैं, वेद बुध ताहि सब गावैं॥
नाम इक रूप है सोई, लखावे ताहि नहिं कोई।
मिलैं जब तत्त्व का भेदी, मिलावे चक्र की छेदी॥
पिया जब प्रेम का प्याला, हुआ रस चाख मतवाला।
अमर रस भक्ति का भीना, झुके चहुँओर है मीना॥
फटी जब नयन की झाईं, लखा प्यारा गगन साईं।
गुरुदेव शब्द कहि भाषा, निरखि पद शीश पर राखा॥

"*प्रभु पद पंकज कपि कर शीशा*" भैया सुमन! वही प्रभु के चरण कमलों तक तुम्हें भी पहुँचना है। प्रभु के चरणों में पहुँच जाने से तुम्हारा सब काम पूरा हो जायगा।

लगन अपनी उनसे लगाए हुए हैं।
जो सब दिन से दिल में समाए हुए हैं॥

उठावेंगे हाथों से मुझको न क्यों कर।
जो गोदी में पहीं खिलाए हुए हैं॥
निकालें भी उनको ता कैसे निकालूँ।
तो अंग अंग के भीतर समाए हुए हैं॥

वो रूठें भी हमसे तो चिन्ता नहीं है।
हम उनके हृदय को मनाए हुए हैं॥

लगन अपनी उनसे लगाए हुए हैं।
जो सब दिन से मन में समाए हुए हैं॥

भैय्या सुमन! यही प्रेम है, अपने प्यारे से प्रेम लगाए रहो। कबीरदास जी के प्रेम स्वरूप को बता रहे हैं वैसे ही तुम भी बनो, देखो प्रेम में क्या आनन्द है। यथा—

छका कोई संत मस्ताना माता रहे, ज्ञान वैराग्य सुधि लिया पूरा।
श्वाँस उश्वाँस में प्रेम प्याला पिया, गगन गर्जे तहाँ बजे तूरा॥
पीठ संसार से नाम सता रहे, यतन भक्ति लिए तहाँ खेलैं।
कहैं गुरुदेव यह प्रेम का खेल है, परम सुखधाम तहाँ प्राण मेलैं॥

आठहू प्रहर मतवाल लागी रहै, आठहू प्रहर की छाक पीवै।
आठहू प्रहर मस्तान माता रहै, राम की गोद लै साधु जीवै॥
साँचही कहत अरु साँचही गहत हैं, काँच को त्यागि कै साँच लागा।
कहैं गुरुदेव यह साधु निर्भय भया, जन्म अरु मरण का भरम भागा॥

छका सो छका फिर देह धारै नहीं, कर्म कपाट सब दूर किया।
श्वाँस उश्वाँस का प्रेम प्याला पिया, राम दरियाव तहँ बैठ जीया॥
चढ़ी मतवाली हुआ मन सावटा, स्फटिक ज्यों फेरि जनि फूटि जावै।
कहैं गुरु देव जिन प्रेम प्याला पिया, बहुरि संसार में नाहिं आवै॥

खड्ग के घाव को ढालकी ओट है, प्रेम के घाव गड़ तोरि मारी ।
कहैं गुरुदेव चित चेतु मन बावरे, प्रेम के घाव हैं बहुत भारी ॥

तर्क संसार से फरक फारक सदा, गरक गुरु ज्ञान में युक्त योगी ।
अर्घ अरु ऊर्ध्व के बीच आशन किया, प्रेम प्याला पिया अमृत भोगी ॥
प्रेम दरियाव तहँ जाइ डोरी लगी, महल बारीक का भेद पाया ।
कहैं गुरुदेव सोइ सन्त निर्भय भया, राम सुखधाम तहँ प्राण लाया ॥

भैय्या सुमन ! *"रामहिं केवल प्रेम पियारा"* ॥

योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू । जहाँ न राम प्रेम परधानू ॥
सो सुख कर्म धर्म जरि जाऊ । जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । सीयराम पद सहज सनेहू ॥
राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभा बड़ आदर तासू ॥
प्रभु पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर फल यह सुन्दर ॥
वेद पुराण सन्त मत एहू । सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥

भैय्या सुमन ! हे जिह्वे !

सुमिरु सनेह से तू नाम रामराय को ।
सम्बल असम्बल को सखा असहाय को ॥

साग है अभागहु को गुण गुण हीन को ।
ग्राहक गरीब को दयालु दानी दीन को ॥

कुल अकुलीन को सुनेउ है वेद साखी है।
पाँगुरे को हाथ पाँव आँधरे को आँखी है॥
माई बाप भूखे को आधार निराधार को।
सेतु भवसागर को हेतु सुखसार को॥
तुलसी तिलोक तिहुँ काल तोसे दीन का।
रामनाम ही की गति जैसे जल मीन को॥

राम राम राम जीह जौलौं तूँ न जपिहै।
तौ लौं तूँ कहूँ जाइ तिहूँ ताप तपिहै॥
सुरसरि तीर बिनु नीर दुःख पाइ है।
सुर तरु तरे तोहि दारिद सताइ है॥
जागत बागत सुख सपने न सोइ है।
जनमि जनमि युग युग जग रोइ है॥
छूटिबे को यतन विशेष बाँधे जाँयगो।
होइहैं विष भोजन जो सुधा सानि खाँयगो॥
पतित पावन रामनाम सो न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी को उसरो॥

राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
रामनाम नव नेह मेह को मन हठि होहु पपीहा॥
सब साधन फल कूप सरित सर सागर सलिल निरासा।
रामनाम रति स्वाति सुधा शुभ सीकर प्रेम पिपासा॥
गरजि तरजि पाषाण बरषि पवि प्रीति परखि जिय जानै।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर पर परमिति पहिचानै॥
रामनाम गति रामनाम मति रामनाम अनुरागी।
होइगे, हैं, जो होइहैं आगे तेइ त्रिभुवन बड़भागी॥
एक अंग मग अगम गवन करि विलम न छिन छिन छाहैं।
तुलसी हित अपनो अपनी दिशि निरुपधि नेम निवाहैं॥

भैय्या सुमन! "*चातक रटनि घटत घटि जाई*" चातक का नियम कभी न भी पूरा हो सके परन्तु तुम्हारा तो "*बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई*" प्रेम सदा बढ़ने ही से भला होगा "*नित नव प्रेम राम ते होई*" दिन प्रति नवीन नवीन प्रेम बढ़े। प्रेम मग्न होकर उच्चस्वर से राम राम रटो कभी मौन होकर राम नाम जपो, और कभी एकान्त चित्त होकर मन ही में राम नाम मनन करो, स्मरण करो, रमो, इस प्रकार सर्वदा "*राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे*" भैय्या सुमन! जैसे मिश्री अपने स्वरूप को जल में लीन करके जलाकार हो जाती है ऐसे ही तुम राम में रम जावो और राम को अपने मनमें रमा लो तुम भी राम में मिलकर रामाकार हो जावो।

मन वचन कर्म से अर्थात् मन से मनन करो राम में रमो, वचन से जप करो, कर्म से उच्चस्वर से रटो।

भर्जनं भव बीजानामर्जनं सुख संपदाम्।
तर्जनं यम दूतानां राम रामेति गर्जनम्॥

मन से मनन करने से मन में जो जन्म मरण का बीज का अंकुर है वह भुन जाता है। अतएव पुनः संसार में जन्म नहीं होता। वचन से जप करने से दैवी संपत्ति ब्रह्मानन्द सुख दोनों संग्रह होकर आप ही आप मिलता है जो "*दैवी संपद् विमोक्षाय*" संपद और सुख मोक्ष को देने वाला होता है। और उच्चस्वर से राम नाम रटने से वा गर्जन करने से यम दूत ताड़ना पाकर भाग जाते हैं। "*यह लोके सुखी भूत्वा परलोके विजयी भवेत्*" भैय्या सुमन! राम नाम के सहारे से इह लोक में यावज्जीवन नाना प्रकार सुख संपत्ति भोगते हुए अंत समय परलोक में यम दूतों पर विजय, अर्थात् यम यातना से निर्भय होते हुए साकेत वैकुण्ठादि में पहुँच जावोगे। "*यत्गत्वा न निवर्तन्ते*" अर्थात् "*जहाँ सन्त सब जाँहि*" जहाँ जाने से पुनरावर्ति अर्थात् मर्त्य लोक में योनि यातना जन्म यातना में नहीं आना होता। बारम्बार माता की योनि में वीर्य बोया जाता है, और शरीर रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है पुनः मृत्यु रूपी कुल्हाड़ी से काटा जाता है वह जन्म मरण का बीज राम-नामाग्नि से जल जाता है।

रकारोऽनलबीजस्याद्ये सर्वे वाडवादयः।
कृत्वा मनो मलं सर्वं भस्मं कर्म शुभाशुभम्॥

पुनः जन्म मरण नहीं होता जीवन मुक्त हो जाता है। भैय्या

सुमन, राम नाम ही की गति, रामराम ही में गति और राम नाम ही से अनुराग प्रेम करो यही अपना परम कल्याण है। यही अपना परम कल्याण है। यही साधन है—

नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू। रामनाम अवलंबन एकू॥

यह महा भयंकर कराल कलिकाल में ज्ञान वैराग्य भक्ति किसी प्रकार का कुछ कर्म नहीं है एकमात्र रामनाम ही का अवलम्ब है।

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः।

कलौयुगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः॥

यह घोर कलियुग में अन्य धर्मों में किसी प्रकार जीव का कुछ अधिकार ही नहीं है। केवल दो अक्षर रामनाम ही हृदय से स्मरण करो, वाणी से जप करो, अथवा उच्चस्वर से गान करो, यही एकमात्र जीव के लिए मुक्ति का मार्ग है।

रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं। संतत सुनिय रामगुणग्रामहिं॥

भैय्या सुमन! तुम कुमन मत बनो, सुमन ही रहो और सुमन तभी हो जब हमारी बात मानो और हमारी बात मानोगे तभी तुम्हारा सब प्रकार भला होगा। तुम्हारी सब इच्छा पूरी होगी, देखो पढ़ो समझो और कहो—

भलो भली भाँति है जो मोरे कहे लागि है।

मन रामनाम से सुभाय अनुरागि है॥

रामनाम के प्रभाव जानि जूड़ी आगि है।

सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि है॥

रामनाम सों विराग योग जप जागि है।
वाम विधि भालहूँ न कर्म दाग दागि है॥
रामनाम मोदक सनेह सुधा पागि है।
पाइ परितोष न तूँ द्वार द्वार वागि है॥
रामनाम कामतरु जोइ जोइ माँगि है।
तुलसी दास स्वारथ परमारथ न खाँगि है॥

रामनाम कर अमित प्रभावा। वेद पुराण उपनिषद् गावा॥
रामनाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

भैया सुमन ! अब तो अच्छे से समझ लिए होंगे अब रामराम कहो।

रामराम रामराम रामराम राम।
रामराम रामराम रामराम राम॥
रामराम रामराम रामराम राम।
रामराम रामराम रामराम राम॥
रामराम रामराम रामराम राम।
रामराम रामराम रामराम राम॥

दोहा–एक भरोसो नाम को, राम तुम्हारेहि आस।
विनय यही श्री चरण में, लघुमति गंगादास॥

शुभमस्तु ! मंगलमस्तु !! शान्तिरस्तु !!!

भैय्या सुमन ! तूँ रास्ता का पथिक है ।

सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम जपु रे बटोहिया।
भ्रमत भ्रमत बहु काल तोहिं बीति गए अजहूँ तो निजघर चेतु रे बटोहिया ॥
करुणानिधान उपकारी बिनु हेतु प्रभु नर तनु कृपा करि दीन्ह रे बटोहिया ।
माया मोह जग जाल साथी दिन पाँच चार इनहिं बिहाइ प्रभु भजु रे बटो० ॥
पाइ सब जग जाल प्रभु के मिलन हेतु धीरे धीरे मन ताहि मेटु रे बटोहिया ।
कौशिलाकुमार सिय संग गलबाहँ दिए मृदु मुसुकान उर आनु रे बटोहिया ॥
जनक लड़ैती छबिखानि स्वामिनी सिय तिनहिं रिझाइ मति माँगु रे ब० ।
प्रेम लाइ "गंगादास" रामनाम डोरी गहि नेह की नगरि चलु बसु रे बटो० ॥

सवैया

क्षण भङ्गुर जीवन है जग में, मन "मञ्जुल" पुण्य कमाते चलो ।
फिर औसर ऐसा मिलेगा नहीं, परलोक का पन्थ बनाते चलो ॥
सत्सङ्ग करो पर पीर हरो, हरि को सुमिरो हर्षाते चलो ।
निशियाम सदा सियराम सिया, सियाराम सिया बस गाते चलो ॥

श्रीराम हृदयम्

श्रीराम उवाच

ततो रामः स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम् ।
शृणु तत्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्म परात्मनाम् ॥१॥
आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् ।
जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ।
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नमः ॥२॥
बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् ।
आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥३॥
सभास बुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि ।
साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्याजीवत्वं च तथाऽबुधैः ॥४॥
आभासस्तु मृषा बुद्धिरविद्या कार्यमुच्यते ।
अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः ॥५॥
अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते ।
तत्वमस्यादि वाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥६॥
ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः ।
तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥७॥

एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते ।
मद्भक्ति विमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षःस्यात्तेषां जन्म शतैरपि ॥८॥

इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो,
मयैव साक्षात् कथितं तवानघ ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया,
दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥९॥

इति श्री मदध्यात्म रामायणान्तर्गत श्री राम हृदय स्तोत्रम्

श्रीराम गीता

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगन्मङ्गल मङ्गलात्मना, विधाय रामायण कीर्तिमुत्तमाम् ।
चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो, राजर्षिवर्यैरभिसेवितं यथा ॥१॥
सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना, रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः ।
राज्ञः प्रमत्तस्यनृगस्य शापतो, द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघवः ॥२॥
कदाचिदेकान्त उपस्थितं प्रभुं, रामं रमालालितपादपंकजम् ।
सौमित्ररासादित शुद्ध भावनः, प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत् ॥३॥
त्वं शुद्ध बुद्धोऽसि हि सर्व देहिना, मात्मास्यधीशोऽसि निराकृतिः स्वयम् ।
प्रतीयसे ज्ञान दृशां महामते, पादाब्जभृंगाहितसंगसंगिनाम् ॥४॥
अहं प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजं प्रभो, भवापवर्गं तव योगिभावितम् ।
यथांजसा ज्ञानमपारवारिधिं, सुखं तरिष्यामि तथानुशाधि माम् ॥५॥
श्रुत्वाऽथ सौमित्रि वचोऽखिलं तदा, प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः ।
विज्ञानमज्ञानतमःप्रशान्तये, श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः ॥६॥
आदौ स्ववर्णाश्रम वर्णिताःक्रियाः, कृत्वा समासादित शुद्ध मानसः ।
समाप्य तत्पूर्वमुपात्त साधनः, समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥७॥

क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता, प्रियाप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः ।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं, पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः ॥८॥
अज्ञानमेवास्य हि मूल कारणं, तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते ।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी, न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम् ॥९॥
नाज्ञानहानिर्न च राग संक्षयो, भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत् ।
ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता, तस्माद्बुधो ज्ञान विचारवान्भवेत् ॥१०॥
ननु क्रिया वेद मुखेन चोदिता, तथैव विद्या पुरुषार्थ साधनम् ।
कर्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता, विद्या सहायत्वमुपैति सा पुनः ॥११॥
कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ, तस्मात्सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा ।
ननु स्वतन्त्रा ध्रुव कार्यकारिणी, विद्या न किञ्चिन्मनसाऽप्यपेक्षते ॥१२॥
न सत्यकार्योऽपि हि यद्वदध्वरः, प्रकाङ्क्षतेऽन्यानपि कारकादिकान् ।
तथैव विद्या विधितः प्रकाशितैर्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये ॥१३॥
केचिद्वदन्तीति वितर्क वादिनस्तदप्यसद्दृष्ट विरोध कारणात् ।
देहाभिमानादभिवर्धते क्रिया, विद्यागताहं कृतितः प्रसिद्ध्यति ॥१४॥
विशुद्ध विज्ञानविरोचनान्विता, विद्यात्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते ।
उदेति कर्माखिल कारकादिभिर्निहन्ति विद्याखिलकारकादिकम् ॥१५॥
तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतः सुधीर्विद्या विरोधान्न समुच्चयो भवेत् ।
आत्मानुसन्धान परायणः सदा, निवृत्त सर्वेन्द्रिय वृत्ति गोचरः ॥१६॥

यावच्छरीरादिषु माययाऽऽत्मधीस्तावद् विधेयो विधिवाद कर्मणाम् ।
नेतीति वाक्यैरखिलं निषिध्य तज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत्क्रियाः ॥१७॥
यदा परात्मात्म विभेद भेदकं, विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम् ।
तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा, सकारका कारणमात्म संसृतेः ॥१८॥
श्रुति प्रमाणाभिविनाशिता च सा, कथं भविष्यत्यपि कार्य कारिणी ।
विज्ञानमात्रादमला द्वितीयतस्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥१९॥
यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते, कर्ताऽहमस्येति मतिः कथं भवेत् ।
तस्मात्स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते, विद्या विमोक्षाय विभाति केवला ॥२०॥
सा तैत्तिरीय श्रुतिराह सादरं, न्यासं प्रशस्ताखिल कर्मणां स्फुटम् ।
एतावदित्याह च वाजिनां श्रुतिर्ज्ञानं विमोक्षाय न कर्म साधनम् ॥२१॥
विद्या समत्वेन तु दर्शितास्त्वया, क्रतुर्न दृष्टान्त उदाहृतः समः ।
फलै पृथक्त्वाद्बहुकारकैः क्रतुः, संसाध्यते ज्ञानमतो विपर्ययम् ॥२२॥
स प्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधी रज्ञप्रसिद्धा नतु तत्त्व दर्शिनः ।
तस्माद्बुधैस्त्याज्यमविक्रियात्मभि विधानतः कर्मविधि प्रकाशितम् ॥२३॥
श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीति वाक्यतो गुरोऽप्रसादादपि शुद्धमानसः ।
विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः सुखी भवेन्मेरुरिवा प्रकम्पनः ॥२४॥
आदौ पदार्थावगति र्हि कारणं, वाक्यार्थ विज्ञान विधौ विधानतः ।
तत्त्वं पदार्थौ परमात्मजीवका, वसीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ॥२५॥

प्रत्यक् परोक्षादिविरोधमात्मनोर्विहाय संगृह्यतयोश्चिदात्मताम् ।
संशोधितां लक्षणया च लक्षितां ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाद्वयो भवेत् ॥२६॥
एकात्मकत्वाज्जहती न संभवेत्, तथाऽजहल्लक्षणता विरोधतः ।
सोऽयं पदार्थाविव भागलक्षणा, युज्येत तत्त्वं पदयोरदोषतः ॥२७॥
रसादिपंचीकृतभूतसंभवं, भोगालयं दुःख सुखादि कर्मणाम् ।
शरीरमाद्यंतवदादिकर्मजं, मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः ॥२८॥
सूक्ष्मं मनोबुद्धि दशेन्द्रियैर्युतं, प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् ।
भोक्तुः सुखादेरनुसाधनं, भवेच्छरीरमन्यद्विदुरात्मनो बुधाः ॥२९॥
अनाद्य निर्वाच्यमपीह कारणं, माया प्रधान तुपरं शरीरकम् ।
उपाधिभेदात्तु यतः पृथक् स्थितं, स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात् ॥३०॥
कोशेष्वयं तेषु तु तत्तदा कृति, र्विभाति संगात्स्फटिकोपलो यथा ।
असंग रूपोऽयमजो यतोऽद्वयो, विज्ञायतेऽस्मिन्परितो विचारिते ॥३१॥

बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते, स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः ।
अन्योऽन्यतोऽस्मिन् व्यभिचारतो मृषा, नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥३२॥
देहेन्द्रिय प्राणमनश्चिदात्मनां सङ्घादजस्रं परिवर्तते धियः ।
वृत्तिस्तमोमूलतयाज्ञलक्षणा, यावद्भवेत्तावदसौ भवोद्भवः ॥३३॥
नेति प्रमाणेन निराकृताखिलो, हृदा समास्वादितचिद् घनामृतः ।
त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसं, पीत्वा यथाऽम्भः प्रजहाति तत्फलम् ॥३४॥

कदाचिदात्मा न मृतो न जायते, न क्षीयते नापि विवर्धतेऽनवः ।
निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः, स्वयम्प्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः ॥२५॥
एवं विधे ज्ञानमये सुखात्मके, कथं भवो दुःखमयः प्रतीयते ।
अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशते, ज्ञाने विलीयेत विरोधतः क्षणात् ॥२६॥
यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमादध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः ।
असर्पभूतेऽहि विभावनं यथा, रज्ज्वादिके यद्वदपीश्वरे जगत् ॥२७॥
विकल्पमायारहिते चिदात्मकेऽहङ्कार एषः प्रथमः प्रकल्पितः ।
अध्यास एवात्मनि सर्वकारणे, निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥२८॥
इच्छादि रागादि सुखादिधर्मिकाः, सदा धियः संसृतिहेतवः परे ।
यस्मात् प्रसुप्तौ तदभावतः परः, सुख स्वरूपेण विभाव्यते हि नः ॥२९॥
अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितो, जीवः प्रकाशोऽयमितीर्यते चितः ।
आत्मा धियः साक्षितया पृथक् स्थितो, बुद्ध्या परिच्छिन्नपरः स एव हि ॥४०॥
चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियां प्रसङ्गतस्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत् ।
अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयते, जडाजडत्वञ्च चिदात्मचेतसोः ॥४१॥
गुरोः सकाशादपि वेद वाक्यतः, सञ्जात विद्यानुभवो निरीक्ष्य तम् ।
स्वात्मानमात्मस्थमुपाधि वर्जितं, त्यजेदशेषंजडमात्मगोचरम् ॥४२॥
प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृद्विभातोऽहमतीव निर्मलः ।
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः, सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः ॥४३॥

सदैव मुक्तोहमचिन्त्यशक्तिमानतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ।
अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधै, र्विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः ॥४४॥
एवं सदात्मानमखण्डितात्मना, विचारमाणस्य विशुद्धभावना ।
हन्यादविद्यामचिरेणकारकै, रसायनं यद्वदुपासितं रुजः ॥४५॥
विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो, विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः ।
विभावयेदेकमनन्य साधनो, विज्ञानदृक्केवल आत्मसंस्थितः ॥४६॥
विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं, विलापयेदात्मनि सर्व कारणे ।
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते न वेद बाह्यं न च किञ्चिदान्तरम् ॥४७॥
पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तयेदोङ्कारमात्रंसचराचरं जगत् ।
तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको, विभाव्यतेऽज्ञानवशान्न बोधतः ॥४८॥
अकारसंज्ञ पुरुषो हि विश्वको ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात् ।
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः, समाधि पूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत् ॥४९॥
विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम् ।
ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं, द्वितीय वर्णं प्रणवस्य चान्तिमे ॥५०॥
मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे, विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणम् ।
सोऽहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तिमद्विज्ञानदृङ्मुक्त उपाधितोऽमलः ॥५१॥
एवं सदा जातपरात्मभावनः, स्वानन्द तुष्टः परिविस्मृताखिलः ।
आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशकः साक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत् ॥५२॥

एवं सदाभ्यस्तसमाधियोगिनो निवृत्त सर्वेन्द्रियगोचरस्य हि ।
विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा, दृशो भवेयं जितषड्गुणात्मनः ॥५३॥
ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनिस्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्त बन्धनः ।
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो, मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः ॥५४॥
आदौ च मध्ये च तथैव चान्ततो, भवं विदित्वा भयशोककारणम् ।
हित्वा समस्तं विधिवादचोदितं, भजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ॥५५॥
आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं, भवत्यभेदेन मयात्मना तदा ।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः, क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथानिलः ॥५६॥
इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो, जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः ।
निराकृतत्वाच्छ्रुति युक्तिमानतो, यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादयः ॥५७॥
यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं, तावन्मदाराधनतत्परो भवेत् ।
श्रद्धालुरत्यूर्जित भक्ति लक्षणो, यस्तस्य दृश्योऽहमहर्निशं हृदि ॥५८॥
रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहं, मयाविनिश्चित्य तवोदितं प्रिय ! ।
यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान्, स मुच्यते पातकराशिभिः क्षणात् ॥५९॥
भ्रातर्यदीदं परिदृश्यते जगत्, मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा ।
मद्भावनाभावित शुद्ध मानसः, सुखी भवानन्दमयो निरामयः ॥६०॥
यः सेवते मामगुणं गुणात्परं, हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम् ।
सोऽहं स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन्, पुनाति लोकत्रितयं यथारविः ॥६१॥
विज्ञानमेतदखिलं श्रुतिसारमेकं, वेदान्तवेद्य चरणेन मयैव गीतम् ।
यः श्रद्धया परिपठेद् गुरुभक्ति युक्तो, मद्रूपमेति यदि मद् वचनेषु भक्तिः ॥६२॥

॥ इति श्री रामगीता ॥

श्री करुणाष्टकम्

हे रामचन्द्र ! करुणाकर ! दीनबन्धो !,
हे राघवेन्द्र ! रघुनन्दन ! राजराज ! ।
हे जानकीश ! जनरंजन ! कोशलेश !,
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥१॥

हे रावणान्तक ! दयाकर ! वारिजाक्ष !,
ब्रह्मादिदेवमुकुटार्चितपादपद्म ! ।
हे लक्ष्मणाग्रज ! दयाकर ! शान्तमूर्त्ते !,
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥२॥

हे राजपुत्र ! सुखसागर ! श्री निवास !,
हे वेदवेद्य ! पुरुषोत्तम ! ज्ञानगम्य ! ।
हे सत्यसंध ! भरताग्रज ! शीलसिन्धो !,
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥३॥

हे भक्तवत्सल ! कृपाकर ? राक्षसारे !,
हे अंजनी तनय हृत् कमलाधिरूढ़ ! ।
हे शत्रुतापन ! भवार्तिहरावतार !,
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥४॥

हे तातसत्यपरिपालक ! पाद पद्म,
दारुण्य मार्ग गमनोत्सुक ! धर्मनिष्ठ ! ।
हे शेष सेव्य विमलानन पूर्णचन्द्र !
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥५॥

हे ब्रह्मनिष्ठ ! गुणकर्म ! विभिन्नमूर्ते !
हे मोघ बोधित ! प्रबोधित बोधरूप ! ।
हे भावगम्य ! सनकादि मनः प्रबोध !
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥६॥

हे चित्रकूट गिरि गूढ गुहानिवास !
हे धर्मपाल ! मुनिमानस राजहंस ! ।
हे इन्दिरारमण ! शायकचाप हस्त !
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥७॥

हे मैथिली विरह भंजन ! सेतुकारिन् !
हे रावणानुज मनोरथ कल्पवृक्ष ! ।
हे देव ताप परिमोचन ! विष्णुमूर्ते !
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥८॥

इति श्री करुणाष्टकम्

श्री भक्त-सर्वस्वम्

हे मैथिली हृदय पंकज भृङ्गराज !

हे स्वीय भक्तजन मानस राजहंस ! ।

हे सूर्यवंश विशु वैभव रामचन्द्र !

त्वत्पाद पंकजरजशरणं ममास्तु ॥ १ ॥

हे मैथिली हृदयपंकज कंज नाथ !

हे भक्तवत्सल कृपाकर राघवेन्द्र ! ।

हे दीनरक्षक शरण्य सुखस्वरूप !

त्वत्पाद पंकजरजशरणं ममास्तु ॥ २ ॥

हे मैथिली हृदय भूषण कान्तिकान्त !

हे नील पद्म रुचिरांघ्रि युग स्वयम्भो ।

हे विश्वनाथ रघुनाथ वरेण्यकीर्ते !

त्वत्पाद पंकजरजशरणं ममास्तु ॥ ३ ॥

हे मैथिली हृदय मन्दिर शुभ्रमूर्ते !

हे वायुपुत्र परिसेवित पादपद्म ! ।

हे आशुतोष जगदीश्वर भक्ति लभ्य !

त्वत्पाद पंकजरजशरणं ममास्तु ॥ ४ ॥

श्री राम-मंगलशासनम्

मङ्गलं कोशलेन्द्राय महनीय गुणाब्धये,
चक्रवर्ति तनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ १ ॥

वेद वेदान्त वेद्याय मेघश्यामल मूर्तये,
पुंसां मोहन रूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥ २ ॥

विश्वामित्रान्तरंगाय मिथिलानगरी पतेः,
भाग्यानां परिपाकाय भव्य रूपाय मङ्गलम् ॥ ३ ॥

पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया,
नन्दिताऽखिल लोकाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ ४ ॥

त्यक्त साकेत वासाय चित्रकूट विहारिणे,
सेव्याय सर्व यमिनां धीरोदयाय मङ्गलम् ॥ ५ ॥

सौमित्रिणा च जानक्या चाप बाणासिधारिणे,
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम् ॥ ६ ॥

दण्डकारण्य वासाय खरदूषण शत्रवे,
गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायास्तु मङ्गलम् ॥ ७ ॥

सादरं शबरी दत्त फलमूलाभिलाषिणे,
सौलभ्य परिपूर्णाय सत्वोद्रिक्ताय मङ्गलम् ॥ ८ ॥

हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्ट दायिने,
वालि प्रमथनायास्तु महाधीराय मङ्गलम् ॥ ९ ॥

श्रीमते रघुवीराय सेतूल्लंघित सिन्धवे,
जित राक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम् ॥१०॥

विभीषण कृते प्रीत्या लंकाभीष्ट प्रदायिने,
सर्व लोक शरण्याय श्री राघवाय मङ्गलम् ॥११॥

ब्रह्मादि देव सेव्याय ब्रह्मण्याय महात्मने,
जानकी प्राणनाथाय रघुनाथाय मंगलम् ॥१२॥

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्व देव नमस्कृते,
वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥१३॥

यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताऽकल्पयत्पुरा,
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥१४॥

अमृतोत्पादने दैत्यान्घ्नतो वज्रधरस्य यत्,
अदितिर्मङ्गलं प्रादात्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥१५॥

त्रिविक्रमाप्रक्रमतो विष्णोरतुल तेजसः,
यदासीन्मङ्गलं राम ! तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥१६॥
ऋतवः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ताः,
मङ्गलानि महाबाहो ! दिशन्तु शुभमङ्गलम् ॥१७॥
मयार्चिता देवगणाः शिवादयो महर्षयो भूतगणाः सुरोरगाः ।
अभिप्रयातस्य वनं चिराय ते हितानि काङ्क्षन्तु दिशश्चराघव ॥१८॥

समाप्तम्

भजन नं० १

भजन बिना कैसे तरिहौ प्राणी ॥

रामनाम मुख गान न कीन्हो, सुने न सद्गुरु बानी ।

नयनन सन्त दरश नहिं देखे, खोये सब जिन्दगानी ॥भजन बिना०॥

काम, क्रोध, मद, लोभ मोह में, अन्धा भयो गुमानी ।

हरि कीर्तन हरिभजन स्मरण, बुद्धिबल सबहिं भुलानी ॥भजन बिना०॥

तीर्थाटन स्नान गङ्गजल, स्वपनेहुँ नहिं अनुमानी ।

योग यज्ञ जप दान विविध विधि, सन्ध्या कर्म सिरानी ॥भजन बिना०॥

ज्ञान भक्ति वैराग्य कर्म सब, कीन्हेउ नहिं अभिमानी ।

"गंगादास" कान लगि कहते, राम भजहु सुख मानी ॥भजन बिना०॥

भजन नं० २

भजन कर मोरे मन सीताराम ॥

गोड़वा कहैं हम तीरथ करबै, हँथवा कहैं हम देबै दान ।

अँखियाँ कहैं हम रामजी को देखबै, कनवाँ कहैं हम सुनबै पुरान ॥

जिभिया कहै हम रामनाम रटबै, रामजी लागे हैं हमारो अभिमान ।

"गंगादास" जोरि कर बिनवत, रामजी वो राखो अपने गुरुजी का मान ॥

भजन नं० ३

दिवाने मन भजन बिना दुःख पइहौ ॥

पहिला जन्म भूत का पइहौ, सात जन्म पछितइहौ ।
काँटा पर का पानी पइहौ, प्यासन ही मरजइहौ ॥दिवाने मन०॥
दूजा जन्म सुआ का पइहौ, बाग बसेरा लइहौ ।
टूटे पंख बाज मँड़राने, अधफर प्राण गँवइहौ ॥दिवाने मन०॥
बाजीगर के बानर होइहौ, लकड़िन नाच नचइहौ ।
ऊँच नीच सों हाथ पसरिहौ, माँगी भीख न पइहौ ॥दिवाने मन०॥
तेली के घर बैला होइहौ, आँखिन ढाँप ढँपइहौ ।
कोस पचास घरही में चलिहौ, बाहर होन न पइहौ ॥दिवाने मन०॥
पाँचवाँ जन्म ऊँट का पइहौ, अतुलित बोझ लदइहौ ।
बैठे से तो उठन न पइहौ, घुरचि घुरचि मरि जइहौ ॥दिवाने मन०॥
धोबी के घर गदहा होइहौ, काटी घास न पइहौ ।
लादी लादि आपु चढ़ि बैठे, लै घाटे पहुँचइहौ ॥दिवाने मन०॥
पच्छिन में तो कौआ होइहौ, करर करर गोहरइहौ ।
उड़ि के जाय बैठ मैला पर, गहरी चोंच लगइहौ ॥दिवाने मन०॥
रामनाम से प्रेम न कीन्हो, अन्तकाल पछितइहौ ।
कहैं "कबीर" सुनो भाई साधो, नरक निशानी पइहौ ॥दिवाने मन०॥

भजन नं० ४

छका सो छका फिर देह धारे नहीं, कर्म कपाट सब दूर किया ।
श्वाँस उश्वाँस से प्रेम प्याला पिया, राम दरियाव तहँ बैठ जिया ॥
चढ़ी मतवाली अरु हुआ मम साँवता, स्फटिक ज्यों फेरि नहिं फूट जावै ।
कहैं "गुरुदेव" जिन वास निर्भय किया, बहुरि संसार में नहिं आवै ॥
राम जपु राम जपु राम जपु० ॥

भजन नं० ५

मैय्या राम बिना कछु नाहीं ॥ टेक ॥
रामहिं आगे रामहिं पीछे, रामहिं बोले माहीं ॥
उत्तर रामहिं दक्षिण रामहिं, पूरब पश्चिम रामा ।
स्वर्ग पाताल महीतल रामा, राम सकल विश्रामा ॥
उठत रामहिं बैठत रामहिं, जागत सोवत रामा ।
राम बिना कछु और न दरशै, सकल राम के कामा ॥
सकल चराचर पूरण रामा, निरखौं शब्द शनेही ।
कायम सदा कबहुँ ना विनशै, बोलनहारा येही ॥
एक राम को भजै निरन्तर, एक राम मिलि गावै ।
कहैं "गुरुदेव" राम के परशे, आपा ठौर न पावै ॥

भजन नं० ६

नाम ही ज्ञान पुनि नाम ही ध्यान है, नाम ही भक्ति वैराग्य भाई ।
नाम ही सूर्य अरु नाम ही तेज है, नाम से योग की युक्ति पाई ॥
नाम ही शील अरु साँच पुनि, नाम ही याग जप तप कीन्हा ।
कहत "गुरुदेव" कर्त्तव्य कछु ना रहा रोम ही रोम जब नाम चीन्हा ॥
राम जपु राम जपु राम जपु० ।

भजन नं० ७

राम ही नाम विश्राम है जीव को, और विश्राम कहूँ नाहिं दीपै ।
स्वर्ग अरु मर्त्य पाताल छूटे नहीं, जहाँ जीव जावै तहाँ काल पीसै ॥
देखु भवसिन्धु में नाम नौका बनी, तासु के बीच जब जीव आवै ।
तरै भवसिन्धु सुखधाम पहुँचै सही, काल की चोट फिर नाहिं खावै ॥
राम जपु राम जपु राम जपु० ॥

भजन नं० ८

आठहू प्रहर मतवाल लागी रहै, आठहू प्रहर में छाक पीवै ।
आठहू प्रहर मस्तान माता रहै, ब्रह्म आनन्द में साधु जीवै ॥
साँच ही कहत अरु साँचही गहत हैं, काँच को त्यागि कर साँच लागा ।
कहैं "गुरुदेव" यों साधु निर्भय भया जन्म अरु मरण का भरम भागा ॥
राम जपु राम जपु राम जपु०

भजन नं० ६

और व्यापार तो बड़े व्यापार हैं, प्रेम व्यापार की राह न्यारी।
साँप के डँसे की सात सौ जड़ीं हैं, प्रेम के डँसे की जड़ी नाहीं॥
खड्ग के घाव को ढाल की ओट है, प्रेम के घाव को ओट नाहीं।
कहैं "गुरुदेव" चित चेत मन बावरे, प्रेम का घाव है बहुत भारी॥
राम जपु राम जपु राम जपु० ॥

भजन नं० १०

प्रेम करना सहज न समझो, कठिन प्रेम का करना है।
करना चाहो प्रेम राम से, फिर क्या मौत से डरना है॥
प्रेमबाज मजबूत वही जो, कभी मौत से नाहिं डरे।
लाखों आपद् पड़ें शीश पर, कभी न दिल से आह करे॥
शरद होय चाहे गरम होय, चाहे चारों ओर से आग जले।
प्रेमी जन उनहीं को कहिये, बेधड़क उसमें कूद पड़े॥
चढै बरै या जरै उसी में, फिर भी उसमें गिरना है।
करना चाहो प्रेम राम से० ॥
प्रेम किया है ब्रज की गोपिन, वर पाये सुन्दर घनश्याम।
उसी प्रेम में आनन्द लूटे, रकम रकम के लिये आराम॥

प्रेम किया प्रह्लाद भक्त ने, सुमिरण करके आठो याम।
"गंगादास" कर जोर कहें, वह विना प्रेम नहिं मिलहहिं राम ॥
करना चाहो प्रेम राम से० ॥

भजन नं० ११

राम तुम्हें कौने वन खोजन जाऊँ ॥ टेक ॥
वन घन में मैं खोजत हारेउँ, पावत नहिं कोउ ठाऊँ।
पर्वत नदी ताल सब खोजेउँ, खोजि थकेउँ सब ठाऊँ ॥
बाग बगीचा फूल वनन में, खोज कतहुँ नहिं पाऊँ।
हौं हतभाग्य अधम शठ जड़मति, कैसे तुमहिं सोहाऊँ ॥
"गंगादास" अभाग्य तुम्हारेहि, जीवन वृथा गँवाऊँ ॥

भजन नं० १२

राम तुम्हें कौनि भाँति अपनाऊँ ॥
विषय विलास भोग तृष्णारत, मन लोलुप भरमाऊँ।
काम क्रोध मद लोभ मगन मन, सन्तत दिवस बिताऊँ ॥
जो मन मुदित चरण चिन्ता कर, सो मन रहत न ठाऊँ।
हारि परेउँ पुचुकारि प्यार करि, मन तरंग नहिं पाऊँ ॥
तुमहीं करौ उपाय दयानिधि, जानत भाव कुभाऊँ।

परधन परदारा चिन्तित चित, चंचल चपल स्वभाऊ ॥
रामनाम ध्वनि करत आलसी, ऐसो दुष्ट स्वभाऊ ।
"गंगादास" के गोद दुलरुआ, तुमहिं हृदय लिपटाऊँ ॥
राम तुम्हें कौनि भाँति अपनाऊँ ॥

भजन नं० १३

धीरे धीरे चले जात दोनों भैय्या ॥ टेक ॥
मिथिला नगरिया की चिकनी डगरिया ।
चले जात दोनो भैय्या धीरे धीरे ॥
दाँये बाँये गौर श्याम, ठुमुकि ठुमुकि धरत पाँव ।
चितवत महला अँटरिया धीरे धीरे० ॥ १ ॥
संग लिये बाल सखा, देखत हैं धनुष मखा ।
चितवत चित्रा चितरिया धीरे धीरे० ॥ २ ॥
राजा सब देखि देखि, हारे मन रूप पेखि ।
बैठे हैं ऊँची मचरिया धीरे धीरे० ॥ ३ ॥
"गंगादास" अति आनन्द, गोद लषन रामचन्द ।
सुखी भैली सारी नगरिया धीरे धीरे० ॥ ४ ॥
चले जात दोनों भैय्या, धीरे धीरे ।
मिथिला नगरिया की चिकनी डगरिया
चले जात दोनो भैय्या धीरे धीरे ॥

बारह मासा १४

आवा भैया सबै किसनवाँ, गाई बारह मासा ना ॥ टेक ॥
चैते मीठी ईमली बैशाखै मीठे माँटा ना ।
जेठै मीठी गूलरी असाढ़ै मीठे लाटा ना ॥ आवा भैया० ॥
सावन मीठे गुरु घनियाँ और बघारा चना ना ।
भादौं मीठी बेड़नी जब होय घीया का रेला ना ॥ आवा भैया० ॥
कारैं मीठी काँकरी जब होवै अति पतियाना ना ।
कार्त्तिक मीठी कोदई जब होय दूध का रेला ना ॥ आवा भैया० ॥
अगहन मीठी जोन्हरी जब होय तेल का घाटा ना ।
पूसै मीठे बस मुँगौरा तीन दिना का बासी ना ॥ आवा भैया० ॥
माघै मीठी खीचरी जब होय दही का रेला ना ।
फागुन मीठे होरहा और नये घड़े का पानी ना ॥ आवा भैया० ॥
आवा भैया सब मिलि गावा बोला अमृत बानी ना ।
रामनाम का करौं भजनवाँ सफल होय जीवाना ना ॥ आवा भैया० ॥
रामनाम तो सब दिन मीठा खाई बारह मासा ना ।
श्रीगुरुदेव के चरण कमल में प्रेम से नावो माथा ना ।
आवा भैया सबै किसनवाँ गावा बारह मासा ना ॥

संक्षिप्त रामायण—१

श्लोक—आदौ राम तपोवनादि गमनं हत्वा मृगं काञ्चनम् ।
वैदेही हरणं जटायु मरणं, सुग्रीवसम्भाषणम् ॥
वालीनिर्दलनं समुद्रतरणं, लंकापुरी दाहनम् ।
पश्चाद्रावण कुम्भकर्ण हननमेतद्धि रामायणम् ॥

संक्षिप्त रामायण—२

राग कहँरवा

राम भए योगिया लषण वैरगिया राम गुदरिया उनके ना
जड़ा रतन जवहिरा राम गुदरिया उनके ना ॥
सोहै सहज सिंगरवा, राम सुरतिया उनके ना ॥
दशरथ मरण कैकेई अपयश प्रजा भई अनसाज ।
राम लषण सीतहिं वन दीन्हेनि भरत के दीन्हेनि राज ॥
पहिरे वल्कल कै चिरिया, राम सुरतिया उनके ना० ॥
सोहै सहज सिंगरवा, राम सुरतिया उनके ना ॥
हाथी छाड़ेनि घोड़ा छाड़ेनि, छाड़ेनि कनक अटारी ।
राज खजाना राजसिंहासन, छाड़ेनि सुन्दर फुलवारी ॥
चललैं वन की डगरिया, राम सुरतिया उनके ना० ॥

कठिन वियोग प्रजा अकुलानी, रहत न धीरज प्राण ।
बाल सखा परिकर मातु सब, विकल होत बिनु प्राण ॥
जरैं विषम तिजरिया, राम सुरतिया उनके ना० ॥
शृंगवेरपुर में जब पहुँचे, करि गंगा स्नान ।
गुह निषाद को सखा बनौलैं, मगन भए भगवान ॥
पहुँचे मुनि की नगरिया, राम सुरतिया उनके ना० ॥
त्रिवेणी में करि स्ननवाँ, पूजे शम्भु सुजान ।
चित्रकूट में जाइ विराजे, पर्णकुटी भगवान ॥
आए भरत गोहरियाँ, राम सुरतिया उनके ना० ॥
भरत पधारे अवधपुरी को, आप पंचवटि जाइ ।
सूपर्णखा को कीन्ह कुरुपवा, गई लंका सो धाइ ॥
पूँछै रावण खबरिया, राम सुरतिया उनके ना० ॥
सीता हरण कीन्ह दशकंधर, महामूढ़ अज्ञान ।
ताको वंश ध्वंसि करि डारे, राज विभीषण दान ॥
दिहलैं लंका की नगरिया, राम सुरतिया उनके ना० ।
सीता सहित अवधपुर आये, भरत मिले भगवान ।
राम विराजे राज सिंहासन, चरण गहे हनुमान ॥
सुखी भैलैं सब नगरिया, राम सुरतिया उनके ना० ॥

अमर नाग नर लोक वेद सब, सुन्दर सुयश बखान ।
"गंगादास" के गोद खेलाई, राजत राम सुजान ॥
शोभै चामर छतरिया, राम सुरतिया उनकै ना० ॥
लड़ा रतना जवाहिरा, राम सुरतिया उनकै ना० ।
सोहै सहज सिंगरवा, राम सुरतिया उनकै ना ।

संक्षिप्त रामायण-३

रघुपति राघव राजाराम जय सीताराम,
जय सीताराम पतित पावन॥ टेक ॥
दिव्य धाम श्री अवधपुरी में, कनक भवन अति सुन्दर धाम ॥
जय सीताराम जय सीताराम पतित पावन० ॥१॥
तेहि महँ कल्पवृक्ष के नीचे, दिव्य सिंहासन शोभित राम ।
जय सीताराम जय सीताराम० ॥२॥
रतन जटित अति रुचिर मनोहर, कोटि सूर्य परकाशित राम ।
जय सीताराम जय० ॥३॥
तेहि महँ सहस्र कमल दल ऊपर, सीताराम विराजित राम ।
जय सीताराम जय० ॥४॥
शोभाधाम राम सुखसागर, सर्व गुण आगर सीताराम ।
जय सीताराम जय० ॥५॥

सीता ब्याहि अवधपुर आए, घर घर मंगल गाए राम ।
जय सीताराम जय० ॥२४॥

मातु पिता की आज्ञा पालि, तापस वेष बनाए राम ।
जय सीताराम जय० ॥२५॥

भक्तन के हित वनहिं सिधाए, लक्ष्मण के संग सीताराम ।
जय सीताराम जय० ॥२६॥

चित्रकूट में जाय विराजे, बहु विधि चरित रचाए राम ।
जय सीताराम जय० ॥२७॥

ऋषिन मुनिन के नयन सफल करि, पञ्चवटी प्रभु आए राम ।
जय सीताराम जय० ॥२८॥

सूपर्णखा रावण की बहिनी ताहि कुरूप कराए राम ।
जय सीताराम जय० ॥२९॥

खरदूषण त्रिशिरादि चतुर्दश असुर सैन्य संहारे राम ।
जय सीताराम जय० ॥३०॥

कंचन मृग मारीचहिं मार्‌यो, तेहि निज धाम पठाए राम ।
जय सीताराम जय० ॥३१॥

सीता हरण कीन्ह दशकन्धर, यती वेष में आयो राम ।
जय सीताराम जय० ॥३२॥

सीता विरह अतिहि दुःख पायो, नर लीला दरशाये राम ।
जय सीताराम जय० ॥३३॥

जूठे फल शवरी के खाए, नवधा भक्ति सुनाए राम ।
जय सीताराम जय० ॥३४॥

महाबली बाली संहारे, सुग्रीवहिं निस्तारे राम ।
जय सीताराम जय० ॥३५॥

सागर में प्रभु सेतु बँधायो, कपि दल पार उतारे राम ।
जय सीताराम जय० ॥३६॥

वीश भुजा दश मस्तक छेदे, निशिचर गण संहारे राम ।
जय सीताराम जय० ॥३७॥

रावण मारि विभीषण थाप्यो, सिया सहित पुर आए राम ।
जय सीताराम जय० ॥३८॥

सीताराम सिंहासन बैठे, राज तिलक प्रभु धारे राम ।
जय सीताराम जय० ॥३९॥

राजाराम जानकी रानी, त्रिभुवन में सुख छायो राम ।
जय सीताराम जय० ॥४०॥

जो नर भक्ति सहित यह गावैं, राम धाम सुख पावैं राम ।
जय सीताराम जय० ॥४१॥

"गंगोदास" के गोद खेलैया राम लषण मन भाये राम ।
रघुपति राघव, राजाराम जय सीताराम, जय सीताराम पतित पावन सीताराम ॥

पद

तोहि राम मिलेंगे कपट के पट खोलरे ॥

घट घट में वह प्यारा रमता,
कटुक वचन मत बोल रे ॥ तोहि राम मिलेंगे० ॥१॥
धन यौवन का गर्व न करियो,
झूठा पंच रंग चोल रे ॥ तोहि राम मिलेंगे० ॥२॥
रामनाम मणि दियना बारो,
आज्ञा से मत डोल रे ॥ तोहि राम मिलेंगे० ॥३॥
भाव भक्ति से हृदय कमल में,
राम मिलहि अनमोल रे ॥ तोहि राम मिलेंगे० ॥४॥
"गंगादास" परम सुख पावत,
रामलषण जी की केलि रे ॥ तोहि राम मिलेंगे० ॥५॥
कपट के पट खोल रे तोहि राम मिलेंगे ॥

संक्षिप्त रामायण—४

रामचन्द्र साकेतनाथौ, हाः राम ! हे राम ! हाः राम प्यारे ।
कौशलेन्द्र अंकविहारी ! हाः राम ! हे राम ! हाः प्राणप्यारे ।

प्रार्थना

अगाध भवसिंधु संसार माया, दुस्तर अगम थाह कोई न पाया।
हाः हाः उबारो भवभार भारी! हाः राम! हे राम! हाः प्राणप्यारे॥
माता, पिता, पुत्र, मायाँ, समाई, संगी, सखा, बंधु स्वारथ मिताई।
निःस्वार्थ करुणाकर दुःखहारी! हाः राम! हे राम! हाः प्राणप्यारे॥
जाऊँ कहाँ कौन जग में न कोई, पाऊँ सुफल कैसे विषबेलि बोई।
कोई न कोई सब खोई हमारी! हाः राम! हे राम! हाः प्राणप्यारे॥
अब ऐसी करुणा करदे मुरारे! हो पंच इन्द्री जग से किनारे।
केवल करै कर्म ऐसा खरारी! हाः राम! हे राम! हाः प्राणप्यारे॥
चंचल चरण मम तव धाम शोभित! जिह्वा, श्रुति तव गुनगन निवेदित।
देखें तुम्हें मम नयनाभिखारी, हाः राम! हे राम! हाः प्राणप्यारे॥
इतना निवेदन है प्राण तनमन! निकले कभी जब यह प्राण मम धन।
रसना रटे नाम आनंदकारी! हाः राम हे राम! हाः प्राणप्यारे॥
तुम सामने हो कर को बढ़ाते, सीतापते राम मन मुस्कराते।
भव डूबते मम कर धर उठारी, हाः राम! हे राम! हाः प्राणप्यारे॥
जाऊँ जहाँ पास है दास दरखास! आऊँ न भवपास दे बास पद पास।
पाऊँ 'रारस चंद' विश्राम भारी! हाः राम! हे राम! हाः प्राणप्यारे॥

कीर्तन

रघुनंदन जन दुःखहारी, सीताराम सीताराम।
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम। रघुनंदन ॥
कानन कुण्डल गलमें माला, माथे पै मणिमुकुट विशाला।
हाथ में शर धनुधारी, सीताराम सीताराम ॥
विश्वामित्र की यज्ञ संभारी मगमें प्रभु ताड़का संहारी।
भक्तन के भयहारी, सीताराम सीताराम ॥
जनकपुरी में प्रभु पगुधारा, राजनका सब गर्व निवारा।
शिवधनु तोड़नहारी, सीताराम सीताराम ॥
गौतम रिषि की नारी तारे, पितु आज्ञा सुन वनहि सिधारे।
रोवत प्रजा दुःखारी सीताराम सीताराम ॥
चित्रकूटमें भेंटे भाई, हर्षित होकर कंठ लगाई,
चकित भये नरनारी, सीताराम सीताराम ॥
पञ्चवटी में कुटी बनाई, सूर्पणखा की नाक कटायी
मायामृग वधकारी, सीताराम सीताराम ॥
गोद में गीध जटायु दुःखारी, रोवत धूर जटान सों झारी।
पितु सम क्रिया सुधारी, सीताराम सीताराम ॥

माँग माँग शबरी फल खाये, ऐसे स्वाद कबहुँ नहिं पाये ॥
प्रेमके परखन हारो, सीताराम सीताराम ॥
शरण विभीषण जबहीं आयो, सकुचि लंक दै कंठ लगायो ।
शरणागत भय हारी, सीताराम सीताराम ॥
रावण मार राम घर आये, नरनारिन मिल मंगल गाये ।
हर्षित सब महतारी, सीताराम सीताराम ॥

छोटे छत्ता में छोटे छोटे

छोटे छोटे बाल संग लीन्हे करवाल छोटी,
छोटी ढाल छोटे तून बान औ कमान हैं ।
छोटी शीश चौतनी सुरंग अंग छोटी पगा,
कटि पट पीत छोटी-छोटी पदत्राण हैं ॥
छोटे कंठ कठुला लटकन हार छोटे-छोटे,
छोटी-छोटी पैजनी विराजें छबिमान् हैं ।
"गंगादास्" हृदय विहारी चहुँ बन्धु छोटे,
धाय-धाय खेलैं सबै सुखमानिधान हैं ॥
दो०—जासु नाम भव भेषज, हरन घोर त्रयशूल ।
सो कृपालु मोहिं तोपर, सदा रहउ अनुकूल ॥

आरती

आरती जनक दुलारी की, कि दशरथ अजिर विहारी की ॥टेक॥
चन्द्रिका चमक रही न्यारी, मुकुट पर जीवन वलिहारी,
छटा अलकन की अति कारी।
केशरिया तिलक, मोहनी झलक, गिरे नहिं पलक-
निरख मन जन मन हारी की कि दशरथ अजिर० ॥१॥
कुसुम्भी दक्खिनिया सारी, लसत पीताम्बर मन हारी-
युगल छवि आज बनी प्यारी।
कटक केयूर, पगन नूपुर, नयन भरपूर-
लखहु छवि कौस्तुम धारी की कि दशरथ अजिर० ॥२॥
रतन मणि सिंहासन चमके, व्यजन शिर छत्र चमर दमके।
साज अंग अंग, सजे श्री रङ्ग, किशोरी संग-
करहु झाँकी पिय प्यारी की कि दशरथ अजिर० ॥३॥
चरण नख पद्मराग लाजै, चलत नूपुर किंकिण बाजै-
गरब लखि मन्मथ के भाजै।

कनक मणि थार, आरती भार, सहचरी धार-
उतारति अधम उधारी की कि दशरथ अजिर० ॥४॥
देव धरि मनुज रूप आवैं, दरश लखि लोचन फल पावैं,
अप्सरा किन्नर यश गावैं।
राम रघुवंश, भानु अवतंश, करहु दुःख ध्वंस-
हाथ गहि प्रेम पुजारी की कि दशरथ अजिर विहारी की ॥५॥